पटना विश्व विद्यालय की

रामदीन लिक्चरर्स १९३२—३३

हिन्दी साहित्य और इतिहास

राय बहादुर पंडित शुकदेवविहारी मिश्र

(मिश्रबन्धु में से एक)

अवैतनिक रीडर पटना युनिवर्सिटी कृत

पटना युनिवर्सिटी

१९३४

PRINTED BY N MUKHERJI, B A
AT THE ART PRESS
20, BRITISH INDIAN STREET, CALCUTTA
PUBLISHED BY THE PATNA UNIVERSITY,
PATNA

भूमिका ।

पटना विश्व विद्यालय मे कुछ दिनो से प्रति दूसरे वर्ष, हिन्दी के लाभार्थ, रामदीन रीडर के नियुक्त होने की प्रथा है । इस कार्य्य के लिये पहली बार प्रसिद्ध विद्वान पडित अयोध्या सिह उपाध्याय की नियुक्ति १९३०-३१ के लिये हुई थी, तथा दूसरी बार १९३२-३३ के लिये विश्व विद्यालय ने यह गौरव मुझे प्रदान करने की उदारता दिखलाई, अर्थात् उस वर्ष के लिये मैं, हिज़ यक्सलेसी चैंसलर महोदय की आज्ञा से, विश्व विद्यालय का अवैतनिक रामदीन रीडर नियत हुआ । मेरा विषय था "हिन्दी साहित्य का भारतीय इतिहास पर प्रभाव ।" मुझे ६ से १२ तक व्याख्यान देने का अधिकार था । मैं ने आठ व्याख्यान दिये । प्रस्तुत पुस्तक ही इन व्याख्यानो के रूप मे पढी गई थी। ये व्याख्यान पटना विश्व विद्यालय के ह्वीलर सेनेट हाल मे ३, ४, ६, ७, २८, २९, ३० और ३१ मार्च १९३३ को दिये गये । इनमे एक एक करके निम्न महाशय सभापति थे :—

(१) श्रीयुत सच्चिदानन्द सिह, बैरिस्टर-ऐट-ला, एम० एल० सी०, भूतपूर्व यक्जेकेटिव् कौंसिलर, बिहार उड़ीसा ।

(२) श्रीयुत माननीय जस्टिस कुलवन्तसहाय, जज हाईकोर्ट पटना ।

(३) श्रीयुत काशीप्रसाद जायसवाल, बैरिस्टर-ऐट-ला, बाकीपूर पटना ।

(४) श्रीयुत माननीय ठाकुर निर्सू नारायण सिह, सभापति लेजिस्लेटिव् कौंसिल, बिहार उड़ीसा ।

(५) श्रीयुत पंडित देवदत्त त्रिपाठी, संस्कृत और हिन्दी प्रोफेसर, पटना कालेज ।

(६) श्रीयुत राय बाहादुर कमलाप्रसाद, रेजिस्ट्रार पटना विश्व विद्यालय ।

(७) श्रीयुत राय बहादुर सूर्य्यभूषणलाल, हेड मास्टर पटना सेकेण्डरी ट्रेनिङ्ग स्कूल।

(८) श्रीयुत गोरखनाथ सिह, प्रोफेसर पटना कालेज।

विश्व विद्यालय के उच्च अधिकारियो ने ऐसे ऐसे योग्य महानुभावो को मेरे व्याख्यानो के लिये सभापति नियत करके मुझे बहुत ही सम्मानित एवं बाधित किया है। सभापति महोदयो ने मेरे तुच्छ व्याख्यानो को प्रशंसित करके मुझे और भी अनुगृहीत किया। मैं सभापति महोदयो तथा उपरोक्त उच्च अधिकारियो के प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूं। रेजिस्ट्रार महोदय ने एक दिन सभापति होने के अतिरिक्त नित्यप्रति अपनी उपस्थिति से मेरे व्याख्यानो की शोभा बढ़ाई तथा पटना मे मुझे हर प्रकार की सुविधा दी, जिन कृपाओ के लिये मैं उनका बहुत आभारी हू। इन व्याख्यानो में विद्यार्थियो के अतिरिक्त सर्व साधारण भी सम्मिलित होते थे तथा असिस्टैंट रेजिस्ट्रार साहब ने भी नित्यप्रति पधारकर मुझे बाधित किया।

प्रस्तुत पुस्तक पटना विश्व विद्यालय ने ही छपवाई है। उक्त विषय पर पुस्तक मे कैसे कथन है सो उसीसे प्रकट हो जावेंगे। इस पर भूमिका मे कुछ कहने की आवश्यकता नहीं। इसमें साहित्य तथा इतिहास, इन दोनो के परस्पर आदान-प्रदान का विवरण है। किस प्रकार के कथन इसमे क्यो हुये है, सो ग्रन्थ ही में कहा जा चुका है। यहांपर मुझे दो विषयों का कथन आवश्यक समझ पड़ता है, अर्थात् शब्दो के रूपों तथा वैदिक कथनो के आधार का।

हिन्दी मे शब्दो के लिखने मे संस्कृत के शुद्ध रूपो का व्यवहार होता है तथा हिन्दी मे प्रचलित रूप भी कहा जाता हैं। मैं ने इन दोनों का व्यवहार पुस्तक में किया है। उदाहरणार्थ कहा जाता है कि संस्कृत व्याकरणानुसार त्रिपिटक, त्रिदेव, वल्लभ, वराह, सम्राट्, जगत् बृहदारण्यक, शार्ङ्गधर आदि रूप शुद्ध हैं, किन्तु हिन्दी में येही शब्द

तृपिटक, तृदेव, बल्लभ, बराह, सम्राट, जगत, वृहदारण्यक, शार्ङ्गधर आदि रूपों मे भी लिखे जाते है। बहुतेरे वैयाकरण इन प्रयोगो को अशुद्ध कहकर प्रयोगकर्त्ताओ पर अल्पज्ञता का दूषण लगाते है, किन्तु हम सदा से हिन्दी के ऐसे प्रयोगो को शुद्ध मानते आये है तथा बहुतेरे इतर महाशयो का भी यही मत है।

यहां एक भारी सिद्धान्त का प्रश्न उठता है। यह सत्य है कि प्राचीन काल मे अर्द्ध शिक्षित देशवासियो ने अल्पज्ञता के कारण ऐसे प्रयोग किये, जिनसे पडित लोग बहुत अप्रसन्न हुये। दूसरी शताब्दी बी० सी० के प्रसिद्ध वैयाकरण पतंजलि ऋषि इन्है अपभ्रंश अथवा म्लेक्ष या अपशब्द कहते है। फिर भी देशमे पठित लोगों की संख्या का पड़ता बहुत कम था और पूर्ण पंडितो की अपेक्षा अर्द्ध शिक्षित जनता बहुत अधिक थी, सो वैयाकरणो की ठांस रहते हुये भी ऐसे ही अपभ्रंश शब्दो का प्रचार बढ़ता गया, यहांतक कि समय पर अपभ्रंश भाषा ही चलने लगी, जो हिन्दी का पूर्व रूप है। प्रश्न एक ओर शुद्धता का था और दूसरी ओर व्यापकता का। यदि हिन्दी को राष्ट्र भाषा बनाना है, तो व्यापकता की वृद्धि आवश्यक है। देवनागरी लिपि कुछ बहुत कठिन नही है, तथापि देश सरलातिसरल लिपि चाहता है, जिससे पंजाब मे देवनागरी के स्थान पर गुरमुखी लिपि चलने लगी, तथा हमारे यहां भी व्यापारियो मे कैथी और हुडीवाली लिपियो का प्रचार हुआ। यदि देवनागरी में केवल सुन्दरतार्थ-प्रतिष्ठित शिरोभाग की रेखा न होती, तो शायद गुरमुखी, कैथी और हुडीवाली के स्थानो पर हमारे ही अक्षरो का प्रयोग होता और इनकी व्यापकता मे क्षति न आती। अतएव प्रकट है कि जो लोग पुराने अनुभवो से लाभ नही उठाते और अपने चलनो को लोकमतानुसार नही बदलते, वे सांसारिक होड़ मे पीछे छूटकर संसारी अगुणज्ञता की शिकायत मात्र किया करते हैं, अथच उनके हाथ कुछ नहीं लगता। इसलिये हमारा कर्त्तव्य है

कि हिन्दी की व्यापकता बढ़ाने को सिद्धान्त रूप से अपभ्रंश का निरादर न करके उसको अपनावैं, क्योकि आखिर तो स्वयं हिन्दी भाषा ही संसार की अपभ्रंश प्रियता का "फल है। व्यापकता के सामने प्राचीन नियम कोई वस्तु नही है। फिर वही रूप शुद्ध है जिसे संसार शुद्ध माने। पतञ्जलि के पीछेवाले कुछ व्याकरण तथा टीका ग्रन्थो मे डलयोरभेदः, रलयोरभेदः, वबयोरभेदः आदि वचन आये हैं। हिन्दी मे डल या रल के विनियम का तो प्रचार नही है, किन्तु व ब तथा य ज के अभेदत्व का बडा बल है। ऐसी दशा मे सास्कृत व के स्थान पर हिन्दीवाले जो ब प्राय लिखते है वही शुद्ध है। तृवेदी, तृशंकु आदि रूप सारल्य के कारण बराबर लिखे जाते है और शुद्ध है। हलन्त शब्दों का भी चलन हिन्दी मे बहुत कम है।

वेद भगवान के विषय मे हमने बहुत कथन नही किये हैं, किन्तु रुद्र शिव आदि के सम्बन्ध मे वैदिक विचारों पर कुछ प्रकाश डालना पड़ा है। इस विषय पर बहुत से पण्डित विरुद्ध मत प्रकट कर सकते है। हमने वेदों से जो निष्कर्ष निकाले हैं वे स्वयं अपने वेदाध्ययन से अथवा भाण्डारकर आदि प्रसिद्ध विद्वानो के कथनानुसार ऐसा किया है। इसमे गडबड़ यह पड़ता है, कि वैदिक समाज बहुत पुराना होने से उस काल की चाल ढालो, विचारों, नियमो आदि का ज्ञान हम लोगो के पास वेदो से इतर आधार पर अप्राप्त है। उधर वेदो को प्राचीन काल ही से इतना भारी माहात्म्य मिला कि नवीन ऋषिगण अपने नव्य कथन वेदानुमोदित बतलाने का भगीरथ प्रयत्न करते रहे। इन कारणो से परम प्राचीन काल से संहिताओ के अर्थों में भारी खीचतान होने लगी। पाश्चात्य पण्डितो के भी अनुसार तैत्तिरीय परम प्राचोन उपनिषदो मे से है और समयानुसार जो चार कक्षाये हैं उनमे इसे पहली में स्थान मिला है। फिर भी स्वयं तैत्तिरीय उपनिषत् संहिता की व्याख्या के पांच अधिकरण मानता है, अर्थात् अधिलोक, अधिज्यौतिष, अधिविद्य, अधिप्रज और

अध्यात्म। उपनिषत् के ही शब्दो मे अधिलोक मे पृथ्वी पूर्वरूप है, द्यौ उत्तर रूप, आकाश सन्धि और वायु सन्धान, अधिज्यौतिष मे अग्नि पूर्वरूप है, आदित्य उत्तर रूप, जल सन्धि और वैद्युत सन्धान, अधिविद्य मे आचार्य्य पूर्वरूप है, अन्तेवासी (शिष्य) उत्तररूप, विद्यासन्धि और प्रवचन सन्धान, अधिप्रज में माता पूर्वरूप है, पिता उत्तररूप, प्रजा सन्धि और प्रजनन सन्धान, तथा अध्यात्म मे अधराहनु पूर्वरूप है, उत्तराहनु उत्तररूप, वाक् सन्धि और जिह्वा सन्धान। पृथ्वी नीचे है, द्युलोक ऊपर और आकाश सन्धि स्थल। सन्धान व्यापक या मिलानेवाले को कहते है। प्रवचन बातचीत या उपदेश है, प्रजा औलाद्, अधराहनु निचली ठोढ़ी, और उत्तराहनु उपरली ठोढी। समष्टि व्यष्टि भेद से इसमे राजा, प्रजा, पृथ्वी, प्रजापालन आदि के भी वर्णन आ जाते है। यदि प्रत्येक ऋचा मे इतने अर्थ न भी निकलैं, तो प्रायः बहुतेरी ऋचाओ में एकाधिक अर्थ निकलते हैं। वेदों के कथन कुछ ऐसे छायावादी से ढंगपर चलते भी हैं, कि लोग उन्हें कई प्रकरणो मे ले जा सकते हैं। रुद्र शब्द को रुद्र देवता मान सकते हैं या कोई भी रुलानेवाला कह सकते हैं। अग्नि शब्द प्रायः महामन्त्री के अर्थ मे आया है और मरुत सेनापति के। प्रसंगानुसार रुलानेवाले बहुत हो सकते है। इसी प्रकार बुद्धिमान या बलवान भी बहुतेरे है। समाभेद रूपक, लक्षणा, व्यंजना आदि के बल से अर्थ कही का कही न केवल जा सकता है वरन् ले जाया भी गया है। एक महाशय ने प्रायः पूरे यजुर्वेद मे राज्य का ही वर्णन करके उसे राज्य शास्त्र का ग्रन्थ बना डाला है।

संस्कृत भाषा भी ऐसी कुछ अनिश्चित है कि अर्थ प्रसंग ही से बहुधा लगता है। उसमे मूल शब्द बहुत थोडे है। प्रायः सबके सब शब्द धातुओ से बने है, जो अनेकार्थवाची है, सो एक ही शब्द के अनेकार्थ हो जाते है। निपात (मैत्रावरुण विश्वामित्र, ढूढ्य आदि) और अव्यय (अल्प, मनाक, ईषत् आदि) शब्द बहुत थोड़े हैं। प्रायः

सभी शब्द अनेकार्थवाची धातुओ से उपसर्गो, प्रत्ययो आदि के सहारे से बने है। समास, विभक्ति, सन्धि आदि के कारणों से भी विविध दशाओ मे एक ही शब्द के बहुत रूप हो जाते हैं और कहीं मूल शब्द के उन रूपो मे विविध अर्थ होते हैं। एक ही वाक्याश से विविध भावो के बोधक अनेकानेक शब्द निकलते है। एक हरि शब्द के अर्थ विष्णु, सूर्य्य, सांप, मेढक, जल आदि है। प्रसंग वश उचित अर्थ निकालिये। अकेलाशब्द निर्भ्रान्त एक अर्थ बतलाने मे अशक्त है। नतस्य प्रतिमास्ति=तस्य प्रतिमा या प्रतिम नास्ति। इतने हो सन्धि के गडबड़ मे अर्थ न जाने कहां का कहां पहुंच गया। यह जानना कठिन है कि वास्तव मे ऋचा क्या कहती है? वैदिक व्याकरण पाणिनीय से बहुत सरल है, किन्तु फिर भी वेदो के अर्थ निश्चित करना पाठक की इच्छा एवं पाण्डित्य पर ही बहुधा निर्भर हो जाता है। अर्थ प्रसंग का मुखापेक्षी है और अपनी अपनी बुद्धि के अनुसार लोग प्रसंग पर घर जानी मन मानी किया करते हैं। संहिता काल का समाज कैसा था, इस का बोध समय के साथ ज्ञानानुभव वृद्ध समाज की दशाओ पर विचार करके वैदिक अर्थ से किया जाता है। कोई दूसरा इलाज भी नही है। पुराने से पुराने काल मे ही इन अर्थों पर जैसी कुछ खींचतान हुई, सो तैत्तिरीय उपनिषत् से ही प्रकट है। जब प्रत्येक ऋचा के पांच पांच अर्थ लग सकते है, तब उनमे से दृढ कौन है, इसका कहना गोशृङ्ग पर धरे हुये सर्षप के प्रपातस्थल का पहले ही ज्ञान प्राप्त कर लेने के समान कठिन है। इसी लिये आठवी शताब्दी बी० सी० वाले यास्क ऋषि के पूर्ववर्ती कौत्स ऋषि ने कहा था कि वैदिक ऋचाओ का अर्थ सोचना सर्वथा असम्भव कार्य्य है, क्योकि वे परस्पर विरोधी, अस्पष्ट, अपूर्ण, असम्भव भावो से भरपूर और अनिश्चित अर्थप्रद वाक्यों से भरी हुई है। इस अवाञ्छनीय दशा को देखकर ही यास्क ऋषि ने निरुक्त शास्त्र की रचना की, जिससे कि वैदिक ऋचाओं के

शुद्ध अर्थ प्राप्त हो। फिर भी इतनी कठिनाई पड़ ही गई कि आठवी शताब्दी बी० सी० पर्य्यन्त जितना ज्ञान उपस्थित हो चुका था, उसके सहारे से छायावादी, अन्योक्ति गर्भित तथा अपूर्ण वैदिक ऋचाओ के अर्थ लगे, जिनमे प्रसंग और दूर की कौड़ी को पूरा अवकाश था। इन कारणो से वैदिक ऋचाओ के सहारे बहुत ही दृढ़ कथन मतभेद से खाली नहीं है। इसी लिये जहांतक हो सका है, हमने बहुत ही दृढ़ प्रसंगो के सहारे पर अपने वैदिक कथन किये है। आशा है कि इनमे मतभेद न निकलेगा।

जिस विषय पर प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना हुई है, उसके सम्बन्ध मे स्थान स्थान पर हमने मिश्रबन्धु विनोद, भारतवर्षीय इतिहास तथा सुमनोजलि नामक ग्रन्थो के हवाले दिये है। पहला ग्रन्थ मिश्रबन्धु त्रय (प० गणेशविहारी मिश्र, राय बहादुर प० श्यामविहारी मिश्र और मुझ) कृत है, तथा अन्तिम दोनो ग्रन्थ उपरोक्त नामावली मे अन्तिम मिश्रवन्धुद्वय कृत है। पहले मे हिन्दी साहित्य का इतिहास प्राय· १६०० पृष्ठों मे कहा गया है। दूसरे मे मुसलमान विजय पर्य्यन्त भारतीय इतिहास प्राय. १००० पृष्ठो मे है, जिसमे हिन्दू काल का ही कथन होने से हिन्दू सभ्यता, धर्म और धार्मिक साहित्य का भी विशेष विवरण है। तीसरे ग्रन्थ का प्रथम भाग केवल १३८ पृष्ठो का है, जिसमे हिन्दू धर्म का थोड़े मे व्यापकप्राय कथन है। जो विषय इन तीनो ग्रन्थो मे विस्तार पूर्वक है, वही प्रस्तुत ग्रन्थ में थोडे में कहे गये है, केवल यहां पर राजनीतिक एवं तुलनात्मक तथा धार्मिक विषयो के विवरण कही कही उनसे कुछ विशेष हैं। कुल मिलाकर ग्रन्थ अपने विषय के कारण उनसे स्वतन्त्र है। जो महाशय पूर्ण शुद्धता के साथ ग्रन्थ पढना चाहै, वे शुद्धि पत्र के अनुसार ठीक कर लेने की कृपा करैं। शुद्धिपत्र मे बिन्दु, अर्द्ध रकार आदि पर विशेष ध्यान नही दिया गया है, क्योकि इनकी शुद्धि प्रसंग से सुगमता पूर्वक हो सकती है। शेष अशुद्धियां ठीक कर दी गई है।

अन्त मे हम अपने सहनशील पाठको से प्रार्थना करते है कि हमारे अन्य फीके ग्रन्थो के समान अपनी उदारता मात्र से इसे भी अपनाकर हमारा उत्साह बढ़ावें।

विनीत,
शुकदेवविहारी मिश्र।
(मिश्रबन्धु मे से एक)

गोलागंज, लखनऊ
१९३३

सूचीपत्र।

———

शुद्धि पत्र ।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६	२३	वर्षो	वर्षों
७	१४	हरप्प्या	हरप्पा
६	७	कुर	कुरु
१४	६	२४०००	२४००
२३	११	अग्नि	आकाश
२३	२१	किसी	बादरायण
२७	२२	यत्र यत्र	यत्र तत्र
२७	१८	११७	११७ ।
२८	२	कार्तवीय	कार्तवीर्य,
३०	१६	वेदनाय	वेदनाये
३०	२२	अलब्ध, पुण्योपार्जन	अलब्ध पुण्योपार्जन
३१	१, १६	अष्ठ्रांगिक, स्म्यग्द्रष्ठि	अष्टांगिक, सम्यग्द्रष्टि
३३	२१	हीनवान	हीनयान
४०	१६	महसूद	महमूद
४७	१२	साहायता	सहायता
५२	१४	है	हैं
५२	२६	जीव्रिकाथे सिद्धति	जीविकार्थे सिध्यति
५३	अन्तिम	ख	खिद्यन्ति,
५६	६	वेणु	वेणु,
५७	२२	ब्राह्मण	प्रायः ब्राह्मण
५८	१७	संवभूव	संबभूव
५८	२६	कूम	कूर्म
६१	१३	पजा	पूजा

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६३	२३	पजन	पूजन
६४	७	बी० सी०	ईसवी
६६	२, ३	दूसरी शताब्दी बी०सी०	पहली शताब्दी ईसवी
७६	१	प्रवत्तक	प्रवर्त्तक
७७	२२	सव	सर्व
७६	१४	है	हैं
८८	६	कृत्ति	कृति
६१	२४	दिलखाने	दिखलाने
६७	६	१४७३	१४७६
१०१	२४	दृष्ट्रि	दृष्टि
१०२	४	मी	भी
१७६	२	तिलक	तिल
१६७	३	बाले	वाले
२१०	२१	साम्राज्य	साम्राज्य
२४६	१२	वन्दे	बन्दे
२७६	६	दरिवाव	दरियाव
२७६	२६	रूस	रूम
२६७	३	ललिता	ललित

नोट—पाई, मात्रा, अर्द्ध रकार, अनुस्वार आदि टूटने टाटने की अशुद्धिया यहा नही लिखी गई है, क्योकि प्रसंग द्वारा पाठक उन्हें सुगमता पूर्वक समझ सकते है और टाइप टूटने आदि से ऐसी अशुद्धिया हो ही जाती है, सो भी किसी प्रति मे रहती हैं और किसी में नही। व ब की भी कई भूलें बहुत साधारणी समझी जाकर यहां नही लिखी गई है।

लेखक।

हिन्दी साहित्य का भारतीय इतिहास पर प्रभाव।

विषय प्रवेश।

यह विषय बड़ा गहन है, और इसके कथन मे अव्याप्ति एवं अतिव्याप्ति का प्रश्न बहुत सुगम नही है। यदि इसका बहुत ही सकुचित भाव लिया जावे, तो इतना ही कहा जा सकता है कि हिन्दी द्वारा इतिहास की कौन कौन सी घटनाएं ज्ञात हुई? हमारा साहित्य इतने सकुचित भाव मे भी इतिहास पर प्रभाव डाल सका है, किन्तु बहुत भारी नही। भारतीय इतिहास से हिन्दी साहित्य का जब से सम्बन्ध चला, तभी से हमारे यहां मुसलमानो के आक्रमण प्रारम्भ हुये। भारतीय मुसलमानो का इतिहास बहुत करके उन्हीं के लेखो पर अवलम्बित है, किन्तु उनसे हिन्दुओ तथा हिन्दू नरेशो से जैसा कुछ सम्बन्ध रहा है, उसके विषय मे हिन्दी साहित्य को भी बहुत कुछ कहना है। मुसलमान शासको से इतर जितने कुछ हिन्दू शासको, समाज आदि के विषय है, उनपर हमारा साहित्य बहुत कुछ प्रभाव डालता है। इतनी बाते अव्याप्ति की ओर झुकने से भी निकलती हैं। यदि अतिव्याप्ति की ओर जावे, तो पूरा का पूरा साहित्य इसी विषय के अन्तर्गत हो जावेगा, क्योकि इतिहास मे सभी कुछ आता है और प्रत्येक पुस्तक या कथन संसार मे कुछ न कुछ न्यूनाधिक प्रभाव डालता ही है। इन कारणो से इस विषय पर कोई चाहे जो कुछ कहता चला जावे, अतिव्याप्ति होती ही नही और सारगर्भिता पर ध्यान देने से चाहे जितनी बड़ी घटना

को साधारण कहकर टाल दिया जावे, फिर भी शुद्ध तार्किक दृष्टि से अव्याप्ति का खटका नही है। अतएव पहले इस बात का निर्णय हो जाना चाहिए कि अपने कथनो मे अव्याप्ति तथा अतिव्याप्ति पर ध्यान रखते हुए किस प्रकार के विषयो पर कितना और कैसा ध्यान दिया जायगा ?

इतिहास क्या है, इसके उत्तर मे कोष यह कहता है कि वह है ज्ञात पदार्थों का उद्घाटन, घटनाओ का वणन, किसी जाति अथवा संस्था की उन्नति का कथन, अथच कारणो एव कार्यों का दार्शनिक विवरण। इस लक्षण पर ध्यान देने से प्रकट है कि यह खूब व्यापक है। इतिहास कथन मे समय का विचार भी मुख्य है। फिर भी यहां पर हम लोगो को पूरे साहित्य से विशेष प्रयोजन है, अथच एक एक ग्रन्थ से कम। सुतराम् उचित समझ पडता है कि ग्रन्थो, लेखको, आदि के समय पर विशेष तर्क न हो। समय निरूपण पर भी हमारे लेखको ने प्रचुर परिश्रम किया है। हमारे विषय के लिये उनका हवाला दे देना ही बहुत होगा। अपने यहां कुछ ऐतिहासिक छन्द मिलते है जो विशिष्ट घटनाओं का स्मरण दिलाते है। उनके कथन करने मे उन घटनाओ का भी न्यूनाधिक उद्घाटन आवश्यक होगा। इसी प्रकार बहुत स्थानों पर ऐसा साहित्य मिलेगा जो प्रमुख घटनाओ का सजीव कथन करता है। वह इस ग्रन्थ मे स्थान पावेगा, क्योकि उससे न केवल ऐतिहासिक ज्ञान रक्षित रहा है, वरन् बहुधा वीरो के इस प्रकार से प्रोत्साहन द्वारा भविष्य मे शौर्य वर्द्धन हुआ है। बहुतेरे ग्रन्थ घटनाओ पर उतना ध्यान नही देते जितना शौर्य के प्रोत्साहन पर। इनका प्रभाव देश पर प्रत्यक्ष ही पड़ा है। ऐसे मौक़ो पर उनके वर्णन की न्यूनाधिक मात्रा का विचार हमारे लिये ऐतिहासिक गरिमा पर अवलम्बित होगा, न कि साहित्यिक पर। किसी की रचना साहित्यिक दृष्टि से चाहे जैसी हो, किन्तु हमारे लिये संसार

पर उसके प्रभाव की विशेष महत्ता होगी, क्योंकि हमारा विषय यही मागता है। साहित्य का प्रभाव संसार पर दो प्रकार से पडता है, अर्थात् (१) रचना की मुख्यता से, अथच रचयिता के चरित्र बल से। इन दोनो दशाओ मे इतिहास पर साहित्य का प्रभाव माना जावेगा क्योकि रचना तथा रचयिता दोनो इसके आलम्बन स्वरूप है। इस कथन का एक उदाहरण सिक्ख सम्प्रदाय के गुरुओ द्वारा दिया जा सकता है। उनकी रचनाएं केवल साहित्यिक दृष्टि से बहुत प्रौढ़ नही है, किन्तु उनका चरित्र बल देश दशा के लिये रचनाओ का इतना बड़ा समर्थक हुआ कि हिन्दी ससार का सर्वोत्कृष्ट ऐतिहासिक फल सिक्खो की उन्नति है। ऐसे भी कई ग्रन्थ है, जिनके सहारे हमारे हिन्दू भारतीय नरेशो तथा राज्यो के इतिहास बनाये गये है। ये आधार कई कारणो से बहुत दृढ नही है, किन्तु फिर भी इनसे भारतीय इतिहास को अच्छा खासा लाभ हुआ है।

रङ्गमञ्च।

विषय सम्बन्धी इतना विचार करके अब हम उसका विवरण उठाते है। किसी वस्तु का ऐतिहासिक फल जानने के लिये उस काल का रङ्गमञ्च भी समझना पड़ता है। तत्कालीन स्थिति का हमारा ज्ञान जितना सुन्दर होगा, किसी नवीन घटना के विषय मे हम उतना ही अच्छा निष्कर्ष निकाल सकेंगे। बिना वर्तमान दशा जाने हम नवीन उन्नतियों का उचित ज्ञान सम्पादित नही कर सकते, इसलिये रङ्गमञ्च का चित्र देख लेना हमारे लिये प्राय अनिवार्य है। इसके दो ढग है, अर्थात् ज्यो ज्यो नये प्रभाव पड़ते जावे, त्यो त्यो उन्ही के साथ प्राचीन दशा का उद्घाटन होता जावे, अथवा प्राचीन दशा का पूरा चित्र पहले दिखला कर हम नवीन शक्तियो का कथन करे। हम दूसरे ढग पर चलना ज्ञानवर्द्धन के

लिये श्रेष्ठ समझते है। इसके कथन मे भारत सम्बन्धी सभी प्रमुख स्थितियो का सूक्ष्म वर्णन किया जावेगा तथा जिन विषयो पर हिन्दी साहित्य का विशेष प्रभाव पडा है, उनके प्रारम्भिक वर्णन कुछ विस्तार से करने पड़ेगे। हमारे साहित्य का प्रभाव कविता के अतिरिक्त विशेषतया धार्मिक, सामाजिक तथा राजनीतिक रहा है। यो तो सामाजिक वर्णनो मे सभी कुछ आ सकता है, तो भी इसके मुख्य विभाग धार्मिक, सामाजिक तथा राजनीतिक है। अतएव इनका कथन पृथक करके शेष सामाजिक विषयो का विवरण यथा स्थान कर दिया जाया करेगा। कथन यहां सक्षिप्त गुण को लिये हुए होगे, अर्थात् थोडे शब्दो मे अधिक से अधिक बाते समझाने का प्रयत्न किया जायगा।

हिन्दी का समय मोटे प्रकार से मुसलमानों के राज्यारम्भ से चला है। इसके पूर्व हमारे यहां अवैदिक, वैदिक, ब्राह्मणिक, सौत्र, और पौराणिक नामक पांच विशेष ऐतिहासिक विभाग समझे जा सकते है। अब इन्ही का विवरण सूक्ष्मतया किया जावेगा। अपने यहा सबसे पुरानी पुस्तक ऋग्वेद है जो संसार साहित्य का बहुत करके प्राचीनतम ग्रन्थ कहा जा सकता है। पाश्चात्य पण्डितों का कथन है कि इजिप्ट के पैपिरस तथा चीन के शीकिंग और शूकिंग नामक केवल तीन ग्रन्थ सारे ससार मे ऐसे है जो ऋग्वेद से भी पुराने कहे जा सकते है। भारत के विषय मे ऋग्वेद प्राचीनतम ग्रन्थ है। इसी के सहारे से अवैदिक समय के भी इतिहास का पता चलता है।

अवैदिक समय।

अवैदिक काल मे यहा जिन प्राचीनतम निवासियो का भारत मे पता लगता है वे कोल कहलाते थे। उन्ही के नाम पर वह समय

कोलेरियन काल कहलाता है। भील और सन्थाल कोलो की शाखाये है। सौर भी इन्ही लोगो मे से समझ पड़ते है। कोलो के पीछे भारत मे द्राविडो का समय आता है। ये लोग कही बाहर से आये अथवा प्राचीन भारतीय थे, सो अभी तक ज्ञात नही हुआ है। खांड़ तथा गोड द्राविडो की शाखाये है। कोलो तथा द्राविड़ो के विषय मे ऐतिहासिको ने बहुत सी बाते जानी है, जिनका कथन यहां आवश्यक नही है। हम यहां वे ही बाते लिखेगे जो हमारे विषय से कुछ न कुछ सम्बद्ध हो। वेदो, विशेषतया ऋग्वेद, मे भारतीय आदिम निवासियो मे महिष, कपि, नाग, दैत्य, दानव, राक्षस, यातुधान, व्रात्य, महावृष, मूजवन, बाहलीक और तामिल नाम्नी जातियो के नाम आए है। इनमे से कुछ नाम अन्य प्राचीन ग्रंन्थो से भी प्राप्त हुए है। ऋग्वेद का कथन है कि उस काल ये लोग केवल चिल्लाना जानते थे और इनमे कोई भाषा न थी। इस कथन से केवल इतना प्रकट है कि आर्य लोगो का इनसे कोई सामाजिक सम्बन्ध न था, और वे इनकी भाषा नही समझते थे।

मानव शास्त्रवेत्ताओ ने मनुष्यो को पाच जातियो मे बांटा है, अर्थात् काकेशियन, मगोलियन या तातार, हबशी, मलय और अमरीकन। रंगो के अनुसार यही लोग क्रमश· गोरे, पीले, काले, बादामी और लाल है। गोरे लोग प्रधानतया योरोप, पश्चिमी और दक्षिणी एशिया तथा उत्तरी अफरीका मे है। मगोल लोग प्रधानतया चीन, जापान, बर्मा, स्याम आदि मे रहते है, हबशी लोगो का स्थान अफ्रीका है, तथा मलयो का मलक्का, मडागास्कर, न्यूजीलैड, आदि। अमेरिकन लोग जो लाल इंडियन कहलाते है, दोनो अमरीकावो मे रहते है। इन सब मे गोरी जाति प्रधान है, जिसकी तीन प्रधान शाखाये हैं, अर्थात् आर्य, सेमिटिक और हेमिटिक। हिब्रू लोगो, अरबों, और फिनिशिया, बैबिलोनिया तथा असीरिया वालों, की गिनती सेमिटिको मे है, और मिश्र वालो की

हेमिटिको मे। ये जातिया नूह के दोनो पुत्र शेम और हेम के नामो से निकली है। आर्य जाति ससार मे सर्व प्रधान है। इसी मे भारत-वासियो, जर्मनो, रूसियो, अगरेजो आदि की गणना है। सब योरोप वाले आर्य नही है। पाश्चात्य पडितो मे से कुछ का मत है कि आर्य लोग मध्य एशिया मे रहते थे, और कुछ लोग इन्हे पूर्वीय योरोप के निवासी मानते है। पडितवर मैक्समुलर का मत है कि एक वह समय था, जब हिदुओ, जर्मनो, रूसियो, यहूदियो, अफ़गानो, अगरेज़ो, फारसियो आदि के पूर्व पुरुष सैमिटिक और हैमिटिक जातियो से पृथक् किसी एक ही स्थान पर रहते थे। यह एक छोटी सी जाति थी और इसकी भाषा वह थी, जो तब तक सस्कृत, यूनानी, जर्मन आदि नही हुई थी, वरन् इन सबका मूल अपने मे रखती थी। योरोपीय पंडितो के अनुसार सासारिक जातियो का विभाग उपर्युक्तानुसार है। यही मत ठीक समझ पडता है।

ज्यो ज्यो आर्यों की सख्या और साहस मे वृद्धि होती गई त्यो त्यो यह लोग अपने प्राचीन निवास स्थान से आगे बढते गए। इन लोगों ने क्रमश भारत, पश्चिमी एशिया, और सबसे पीछे योरोप में फैलकर इन देशो मे आर्य सभ्यता का विस्तार किया। समग्र आर्य जाति की आदिम एकता की साक्षी स्वरूपा बहुत करके अब आर्य-भाषा ही है। संस्कृत, जेद, ॲगरेजी, यूनानी, लैटिन, फ़ारसी, अरबी आदि भाषाओ के मिलाने से प्रकट होता है कि इन सबकी मूल स्वरूपा कभी एक ही भाषा थी। इन सब मे साधारण बातो, औज़ारो, कामों, रिश्तो, आदि के लिये प्राय' एक ही से शब्द है। इन भाषाओ को बोलने वाली जातियाँ हजारो वर्षों से एक दूसरी से पृथक् है, सो एक दूसरी से शब्द नक़ल नही कर सकती थी। इसी से इनकी उन्नति का भी पता लगा है। उस काल के आर्य लोग मकानो में रहते, पृथ्वी जोतते, और चक्कियो से अनाज पीसते थे। वह भेड, गाय, बैल, कुत्ता, बकरा आदि को पालते और शहद से निकाला हुआ मद्य पीते थे।

वे तांबा, चादी, सोना आदि का व्यवहार करते तथा धनुष बाण और तलवार से लड़ते थे। उनमे राज्य-शासन प्रणाली का प्रारम्भ हो चुका था। वे आकाश अथवा आकाशवासी देवता का पूजन करते थे। मिश्र, शैल्डिया, भारत और चीन मे अति प्राचीन काल से यथेष्ट सभ्यता वर्तमान थी। भारत के अतिरिक्त, चीन, असीरिया, बैबीलोनिया, हीब्रू, फिनिशिया, फारस, मिश्र, बोहीमिया, मिडिया, आरमीनिया और मेसोपोटैमिया देशो के इतिहास प्राचीन है। आर्यो आदि का जो उपराक्त वर्णन है, वह भारतीय अवैदिक समय से असम्बद्ध है और भारतेतर ससार मे आर्यों के कथन करता हैं। वैदिक समय से पूर्व भारत मे जड़ पूजन की प्रधानता थी। उस काल वृक्षो, नदियो, पहाडो, भूत प्रेतो आदि की पूजा होती थी, तथा यहां शिश्न-पूजक भी थे, जैसा कि ऋग्वेद से प्रकट है। वैदिक साहित्य से इतर भारतीय अवैदिक काल की एक और सारगर्भित साक्षी हाल मे प्राप्त हुई है, अर्थात पुरातत्ववेत्ताओ ने महेजोदारो और हरप्पा मे पृथ्वी खोदने से अवैदिक कालीन भारतीय सभ्यता के सारगर्भित चिन्ह पाये है। ये स्थान सिन्ध और पंजाब में हैं। पुरातत्ववेत्ताओ का विचार है कि इन स्थानो से प्राचीन भारतीय सभ्यता का जो चित्र मिला है, वह ईसा के पूर्व (बी० सी०) तीसवी से चालीसवी शताब्दी तक का है। यदि भगवान रामचन्द्र का समय बाईसवी शताब्दी बी० सी० का माने, तो भी उपरोक्त सभ्यता उनके समय से हजार दो हज़ार बर्ष पुरानी निकलेगी। इन स्थानों से प्राप्त बहुत से पदार्थ शिमला मे एकत्र थे, जहां मैंने भी जाकर उन्हे ध्यानपूर्वक देखा था।

उनसे जान पडता है कि लोहे को छोडकर यहा सोना, चांदी, ताबे, शंख आदि के बहुतेरे पदार्थ बनते थे, अक्षरदार मोहरे होती थीं, अच्छी कारीगरी के चित्रादि खोदे जाते थे, तथा अनेक प्रकार के भूषण बनते थे। बैल की शायद पूजा भी होती थी। पक्के मकानादि बनते थे। यह सभ्यता उच्च श्रेणी की थी। किसी स्त्री का कंकण मैंने

अपने हाथ मे डालना चाहा तो अपनी छोटाई के कारण पंजे के आगे न जा सका। कहा जा सकता है कि पुरुष के हाथ स्त्री के हाथो से बड़े होते है सो इसमे कोई आश्चर्य नही है। मेरा प्रयोजन इस बात के कहने से केवल इतना है कि रामचन्द्र के समय मे कुम्भकर्ण, रावण आदि के जो भारी भारी शारीरिक विस्तार उल्लिखित है, वे बहुत करके अत्युक्ति मात्र है।

आर्य लोग उस काल कहां रहते थे और यहां कैसे आए यह भी एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। तिलक महाशय आर्यों का प्राचीनतम निवास उत्तरी ध्रुव मानते है। इस बात की पुष्टि मे आप तीन प्रधान् प्रमाण देते है, अर्थात् ज्योतिष सिद्ध करती है कि आर्क्टिक प्रांत उस काल निवास के योग्य था, ऋग्वेद् मे लबे से लबे दिनरात तथा शीताधिक्य का कथन है और हमारे प्राचीन ग्रन्थो मे छः छ' मास के अहर्निशि का वर्णन है। पडितो का विचार है कि पारसियो और आर्यो के पूर्व-पुरुष एक ही थे। ऋग्वेद् और उनके जेन्दावस्ता (पारसियो का प्राचीन और पुनीत ग्रन्थ) की भाषा तथा भाव बहुत कुछ मिलते भी हैं। जेन्दावस्ता मे निम्नलिखित कथन आए है :—

आर्यों का स्वर्ग आर्क्टिक प्रांत मे था, वहां सूर्य साल मे एक ही बार देखा जाता था। एक समय बर्फ इस आधिक्य से गिरा कि सारा देश ऊजड़ हो गया, तब शीताधिक्य के कारण आर्यों ने उसे छोडकर दक्षिण की ओर प्रस्थान किया।

तिलक महाशय का कथन है कि ऋग्वेद् के प्रथम मडल मे आया है कि आर्य लोग इन्द्रालय मे उपनिवेष बनाकर रहे। वहा वे सप्तधाम बनाकर बसे। उनकी तात्कालिक भाषा ब्रह्म भाषा थी। इन्द्रालय मध्य एशिया मे सफेद् कोह के उत्तर है। थोडे दिनो मे फैल कर ये लोग पूर्वी अफ़गानिस्तान, काश्मीर और पंजाब मे बस गए, और ये देश इनके कारण आर्य देश हो गये। शुक्ल यजुर्वेद् के आठव अध्याय से प्रमाणित है कि मुख्य नायक विष्णु आर्यों को

पहले तिब्बत के दक्षिण पश्चिम ले गए जहां गंगा का उद्गम था। वहा सब लोग कुछ काल रहे और तब विष्णु उन्हे अफगानिस्तान ले गए, जहां ११ नेता बस गए। ये लोग सुवस्तु (स्वात) मे दूसरी बार ठहरे। वहा से ११ नेता भारत आए। मनु के पीछे भी कई गोलो मे आर्य भारत आए। वायु पुराण का कथन है कि भूत, पिशाच, नाग और देव उत्तर से भारत को आए, और भूतगण भूतस्थान (भूटान) मे बसे। भविष्य पुराण का कथन है कि आर्य उत्तर कुर (साइबेरिया) मे रहते थे, जहां से वे मध्यभूमि (मध्यएशिया) मे आए।

वेदो मे आर्यो की बहुत सी छोटी छोटी बातो तक के कथन है, किन्तु यह साफ साफ नही लिखा है कि वे लोग कही बाहर से आकर भारत मे बसे। इससे प्रकट होता है कि आर्य लोग वेद् निर्माणारम्भ के समय इतने दिन पहले से भारत मे बसते थे कि वे अपना बाहर से आना भूल चुके थे। यह बात तिलक महाशय के इस सिद्धान्त को पुष्ट करती है कि आर्य लोग वैदिक समय से प्रायः २००० वर्ष पूर्व भारत मे आए थे।

अपने यहा समय गणना मे चार युगो तथा १४ मन्वन्तरो के कथन आते है। सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलि नामक चारो युग हैं। मन्वन्तर छः बीत चुके है, सातवां चल रहा है, और शेष सात आगे आवेगे। भविष्यवालों को छोड़कर शेष मन्वन्तरो के नाम है स्वायम्भुव, स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत, चाक्षुष और वैवस्वत। वेदर्षियो मे चाक्षुष मन्वन्तर के पहले वाले किसी व्यक्ति का नाम नही आता, यद्यपि चाक्षुष और वैवस्वतमन्वन्तरो के कई व्यक्ति वेदर्षि है, अर्थात् उन्होने वेद की ऋचाएं बनाई या देखी। यह बात भी उपरोक्त विचार का समर्थन करती है। कुछ पाश्चात्य विद्वानो का मत है कि आर्य लोग पजाब से पूर्व को गंगा और यमुना के निकट से आए। रिज़ डेविड्स का कथन है कि इन मार्गों के अतिरिक्त आर्य लोग सिन्धु नदी के

किनारे कच्छ होते हुए अवती गए और काश्मीर से पहाड के किनारे किनारे कौसल होते हुए शाक्य प्रदेश, तिरहुत, मगध, और बंग देश मे पहुचे। रिज डेविड्स महाशय बौद्ध साहित्य के अच्छे ज्ञाता थे।

वैदिक समय ।

आर्यों का भारतीय आगमन ऊपर कहा जा चुका है। उन्होने यहा आकर या अन्यत्र पहले तो गद्य-पद्यमय रचना की जिसे निविध्र कहते है। यह रचना अब सुरक्षित नही है, वरन् वेदो ही से इसके तात्कालिक अस्तित्व का पता लगता है। वेद चार है, ऋक्, यजुः, साम और अथर्व। ऋग्वेद सबसे पुराना है। यजुर्वेद मे ससार का सबसे प्राचीन गद्य मिलता है। यह ऋग्वेद से कुछ नया है। सामवेद मे गाने की चीजे एकत्र है। इसका प्रायः अष्टमांश अपना और शेष ऋग्वेद से सगृहीत है। अथर्व वेद पहले नही माना जाता था। इसका निर्माण चला ऋग्वेद के समय से ही था, किन्तु बनता यह कुछ पीछे तक रहा। ऐतरेय ब्राह्मण, ऐतरेयारण्यक, वृहदारण्यक तथा शत्पथ ब्राह्मण मे केवल तीन ही वेद कहे गए है। छान्दोग्य ब्राह्मण मे भी तीन ही वेद है, और अथर्व इतिहास माना गया है। विष्णु पुराण के चौथे अध्याय मे आया है कि द्वापर युग मे कृष्ण द्वैपायन व्यास ने वेद को एक से चार किया। विष्णु पुराण कहता है कि समय समय पर कई व्यास हुए है। व्यास के पहले भी अथर्वण ऋषि एक बार वेद का संपादन कर चुके थे। पैल, वैशम्पायन, जैमिनी और सुमन्तु ने क्रमशः ऋक्, यजुः, साम और अथर्व वेद सीखा। इन चार ऋषियो के शिष्यो के कई भेद हो गए जिनके कारण वैदिक शाखाये स्थिर हुईं। वेदो और ब्राह्मणो से इतर ४ उपवेद, ६ वेदांग, और कई उपांग हैं।

ऋग्वेद का उपवेद आयुर्वेद है, यजुः का धनुर्वेद, साम का

गान्धर्व वेद और अथर्व का अर्थशास्त्र । ६ वेदाग है, अर्थात्, शिक्षा, व्याकरण, निरुक्त, कल्प, ज्योतिष और छद । उपाग ४ है, अर्थात् पुराण, न्याय, मीमासा, और धर्मशास्त्र । षडग के नाम मुंडक मे आए है, जिससे विदित है कि उस काल के पूर्व इनकी स्थापना हो चुकी थी । शतपथ ब्राह्मण मे लिखा है कि ऋग्वेद की उत्पत्ति अग्नि से हुई, यजुर्वेद की वायु से और सामवेद की सूर्य से । यजुर्वेद के शुक्ल और कृष्ण नामक दो भेद है । प्राचीन समय मे लिखित न होने से वेद स्मरणशक्ति द्वारा स्थिर रखे गए थे । अतएव उनके शब्द यथावत् रक्षित रखने के लिये ऋषियो ने पदपाठ, क्रमपाठ, जटापाठ, और घनपाठ की युक्तिया निकालीं, जिससे उनके शब्दो और मात्राओ तक मे लेशमात्र भी फेर नही पड़ा है, और वे अब तक हमारे सामने अपने असली रूप आसुरी भाषा मे प्रस्तुत है । पहले असुर देवता को कहते थे ।

वेदो का मर्म सूक्ष्मतया भी बतलाने मे हम अपने विषय से दूर निकल जा सकते है । इस लिये ऋग्वेद के दश मंडलो मे से पहले का कुछ हाल कह देना ही काफी समझते है । इस मडल का यदि बिना विशेष टीका टिप्पणी के सीधा, सादा अर्थ लिखा जावे तो साधारण सांची की २०० पृष्ठो वाली एक पुस्तक तैयार हो सकती है । इस मे १९१ सूक्त है, जिनके कवि गणना मे २५ है । इनमे भी दो कवियो का एक ही सूक्त है, और पांच अन्य कवियो ने भी एक ही सूक्त कहा है । इन दो सूक्तो को छोड देने से १८९ सूक्तो के १८ कवि रह जाते है । इनके कथित मुख्य देवता है, अग्नि, आप्री, अग्नि के भेदान्तर, वायु, मरुत, आश्विन, इन्द्र विश्वेदेवस, बृहस्पति उपनाम ब्रह्मणस्पति, ऋभु, वरुण, पूषन, रुद्र, उषस, सूर्य, सोम, विष्णु, आकाश पृथ्वी और इन्दु । अमुख्य देवी देवता है अर्यमन, सरस्वती, सर स्वान, त्वस्व, दक्षिणा, इन्द्राणी, रति, वरुणानी, आग्नेयी, ऋतु, आदित्य, अदिति, सिन्धु, वाक्, काल, साध्यगण, गन्धर्व, भग, जल, मातरिश्वन

और वृत्त। घोडा, राजा स्वनय, ऊखल और मुशल को भी प्रशसा के सूक्त है। प्रत्येक देवी देवता के विषय मे कैसे सूक्त है, इसका वर्णन हमने अपने भारतीय इतिहास मे कुछ विस्तार के साथ किया है। भारतीय इतिहास पर वेद भगवान क्या प्रकाश डालते है, यह भी वही कथित है। यहां इन रोचक वर्णनो के लिये स्थानाभाव है।

ऋग्वेद तथा जेन्दावस्ता को मिलाकर पढने से ज्ञात होता है कि हमारे पूर्व पुरुष सबसे पहले वरुण को सर्वोत्कृष्ट देवता मानते थे। इसकी कुछ छाया ऋग्वेद मे भी मिलती है। वहा वरुण है आकाश और पृथ्वी को स्थिर रखने वाले, प्रकृति के शुद्धता पूर्वक सचालक, सत्य और ज्योति के स्वामी, सूर्य का रास्ता बनाने वाले और ससार भर को ठीक मार्ग पर रखने वाले। इस वर्णन मे इनका पद पीछे परम पूज्य होने वाले भगवान विष्णु के पद से बहुत कुछ मिलता है। वैदिक समय से पूर्व वरुण का पद और भी ऊचा था, यह बात ऋग्वेद और अवस्ता को मिलाकर पडितो ने निकाली है। ऋग्वेद देव-मडली मे इन्द्र का पद सबसे ऊचा बतलाता है। वेदो मे बहुत करके प्राकृतिक शक्तियो का व्यक्तीकरण है। फिर भी वेदो ने ईश्वर को न भुलाकर पुरुष, विराज, स्कम्भ, विश्वकर्मन, प्रजापति आदि नामो से ईश्वरीय महत्ता गाई है, और देवताओ को ईश्वरीय शक्ति से ही विभु माना है, अन्यथा नही। मुख्यतया वेद तैंतीस देवता प्रधान मानते हैं। विश्वामित्र ने इनकी सख्या बढाकर ३३३६ लिखी है। शायद इसी से यह पौराणिक गाथा चल पडी कि उन्होने नये देवता बनाए या ऐसा करने की धमकी दी। देवताओ मे से कुछ पहले मनुष्य थे, और पीछे उपकारी काम करने से वे देवता हुए, जैसे मरुत, त्वष्टा, इत्यादि। अवैदिक समय मे यहां तरु, पर्वत, भूत, प्रेतादि का पूजन अनार्यों द्वारा चलता था। आर्यों ने वरुण, इन्द्र आदि का पूजन फैलाया। हवनो, यज्ञो, बलियो, आदि की स्थापना वैदिक समय मे ही भली भांति हो गई। कभी न

बुझनेवाली अग्नि का विधान अग्निहोत्र आदि के लिये हो चुका था। यज्ञ का मुख्य उद्देश्य ससार हितसाधन था। देव पूजन की मुख्यता सांसारिक लाभार्थ थी। वेदो के सहिताविभाग का वर्णन इसी स्थान पर छोड़ा जाता है।

यद्यपि समय के साथ वेदो के पीछे ब्राह्मण साहित्य का काल आता है, तथापि वर्णन-पूर्णता के विचार से यहां वेदागो का भी कुछ कथन करके हम आगे चलेगे। आयुर्वेद के विद्वान ब्रह्मा, इन्द्र, विवस्वान, दक्ष, अश्विनीकुमार, यम, धन्वन्तरि, बुद्ध, च्यवन, वैश्वामित्र, सुश्रुत आदि थे। नकुल और सहदेव भी सद्वैद्य थे। धनुर्वेद विश्वामित्र का बनाया हुआ है। उस मे चार प्रकार के आयुध लिखे है, अर्थात् मुक्त, अमुक्त, मुक्तामुक्त और मन्त्रमुक्त। गांधर्व वेद के अन्तर्गत नाट्यशास्त्र भी है। गायन के आचार्य नारद थे। महेश की आज्ञा से नृत्य का आरंभ हुआ। नाट्यशास्त्र के आचार्य भरत मुनि थे। अर्थशास्त्र की शाखाओ मे नीतिशास्त्र, शालिहोत्र, शिल्पशास्त्र, सूपशास्त्र आदि ६४ कलाएं है। नीतिशास्त्रकार शुक्र, विद्वा, कामन्दक, चाणक्य आदि है। यही पर उपवेदो का यह सूक्ष्म कथन समाप्त होकर षडगो का उठता है। शिक्षा से उच्चारण की रीति का ज्ञान होता है। व्याकरण शब्द और वाक्य शास्त्र है। पाणिनि शिक्षा और व्याकरण के सर्वश्रेष्ठ आचार्य है। निरुक्त से वेदो मे प्रयुक्त शब्दो का ज्ञान होता है। यास्क इसके मुख्य आचार्य है। कल्प से वैदिक कर्मों के क्रम का ज्ञान मिलता है। इनकी तीन शाखाएं है, अर्थात् गृह्य, धर्म और श्रौत। ज्योतिष से समय का समुचित ज्ञान मिलता है। छन्द शास्त्र के आचार्य शेषनाग थे। छद दो प्रकार के है, अर्थात लौकिक और अलौकिक। वेदो मे अलौकिक छद है और इतर ग्रंथो मे लौकिक। हमारे यहां चाद्र वर्ष का चलन था, जो सौर वर्ष से पीछे पड़ जाया करता है। इसीसे अधिमास (लौद्र) का प्रयोग होता है। ऋग्वेद के समय मे

भी इसका चलन था, क्योकि उस मे लिखा है कि यह मास इन्द्र ने बनाया ।

वैदिक समय पर भी थोड़ासा विचार आवश्यक है। मैक्स-मुलर महाशय का मत है कि वैदिक काल प्रायः १२०० बी० सी० से प्रारंभ होकर प्राय २०० वर्ष तक चलता है। डाकृर हाग यही समय २४०० से २००० बी० सी० तक मानते है, तथा विल्सन ३५०० बी० सी० के निकट। तिलक महाशय का मत है कि स्वायंम्भुव मन्वन्तर प्राय· ६००० बी० सी० से चलता है, और वैदिक-काल ४००० बी० सी० से २४०० बी० सी० तक। मेगास्थेनीज़ का कथन है कि उन्होने महाराजा चन्द्रगुप्त मौर्य के यहा प्राय· ६००० बी० सी० से चलने वाला भारतीय राजकुल का वशवृक्ष देखा था। एशिया-माइनर के बगज़ कोई स्थान मे पुरातत्व वेत्ताओ को १५०० बी० सी० के निकट का एक सधिपत्र मिला है जिसमे मेसोपोटामिया तथा ईजिप्ट मे सन्धि हुई थी और जो भारत से पूर्णतया असम्बद्ध है। उसमे वैदिक देवता मित्र, वरुण, इन्द्र और नासत्य (अश्विनी कुमारो) को नमस्कार करने के पीछे उन लोगों ने सन्धि का विषय उठाया है। इससे या तो यह निष्कर्ष निकलता है कि हमारा वैदिक धर्म १५०० बी० सी० से भी बहुत प्राचीन है, क्योकि भारत से फैल कर वहा तक १५०० बी० सी० मे पहुचने मे उसे बहुत समय लगा होगा , या यह कि उसकाल वहा भी यही धर्म प्रचलित था, जो भारतीय वेदो से असम्बद्ध होकर उन देशो के आर्यों से संबद्ध हो। यह दूसरी सूढ देखने मे दूर की कौड़ी मात्र समझ पडती है, और जान पडता है कि उपर्युक्त संधिपत्र से भारतीय वैदिक-साहित्य की प्राचीनता का प्रमाण मिलता है। तिलक महाशय ब्राह्मण काल २४०० से १४०० बी० सी० तक मानते है, और सूत्रकाल ५०० बी० सी० तक। बौद्धकाल निश्चयपूर्वक छठी शताब्दी बी०सी० मे उठा। मैक्समुलर महाशय का मत है

कि ब्राह्मण और सूत्रकाल १००० से ६०० बी० सी० तक चले है।

चारो वेदो के अनुवाद तथा बहुत छोटी टीका समेत जो प्रतिया हमारे पास है, उन मे क्रमशः १२६८, ३१०, ३३८, ६३२ जोड़ २८४८ पृष्ठ है। ऋग्वेद मे विनतियो का प्राधान्य है, यजुर्वेद मे यज्ञो का, साम मे गाने योग्य ऋचाओ का तथा अथर्व मे टोना टनमन एवं स्फुट विषयों का। वेदो का मुख्य माहात्म्य ऐतिहासिक है। इनके शब्द जो जैसे के तैसे हजारो वर्षों तक बने रहे है, और इनमे अनेकानेक विषयो के वर्णन जो प्रसग वश आगए है, उन्ही से सैकडो बातो मे हमारा तात्कालिक ज्ञान सिद्ध होता है। बहुत थोड़े परिवर्तन के साथ एक ही से विचार इन मे बार बार आए है, जिससे साधारण पाठको का जी ऊब जाता है, किन्तु प्रगाढ पडितो के लिये वेदो के वर्णन बहुत ही आकर्षक तथा ज्ञानप्रद है। इनमे हमारे समाज का चित्र विजयी, स्वतत्र और उमग पूर्ण देख पडता है। ऋषिगण अपने ही विचारो और अनुभवो पर गमन करते जान पडते है, और किसी बद्ध नियम के प्रतिकूल कभी शिकायत नही करते। जाति भेद उस काल न था, किन्तु पराजित दस्युओ के कारण वर्ण भेद था। ऋग्वेद मे प्रायः प्रत्येक पुरुष युद्धकर्त्ता, कृषक तथा यज्ञकर्त्ता था। यजुर्वेद मे ऋग्वेद की भाति दस्युओ के प्रति क्रोध न होकर उनसे प्रेम पूर्ण बर्ताव मिलता है, तथा याज्ञिको मे पैत्रिकता के भाव की ओर श्रद्धा बढती सी दिखती है। ऋग्वेद मे ब्राह्मण यज्ञ का अधिकारी मात्र है किन्तु अथर्व मे वह एक महत्वपूर्ण जाति है, जिसके अधिकार इतरो से अच्छे है। ऋग्वेद विजयीपन तथा युद्धो के भाव प्राय. दिखलाता है, उधर अथर्व मे समाज संगठन की प्रधानता होने लगती है। हिन्दू धर्म की क्रमोन्नति का चित्र ऋग्वेद, अथर्ववेद तथा शतपथ ब्राह्मण पढ़ने से सामने आ जाता है। यजुर्वेद मे,गोमेधका विधान है किन्तु अथर्व मे गो-महिमा

बढती दिखती है। यजुर्वेद नरमेध तक का कथन करता है, किन्तु शतपथ ब्राह्मण बतलाता है कि नरबलि न होकर वास्तव मे मानुष पुतले की बलि होती थी। यह बिचार तथ्य पर अवलबित होकर भी सभ्यता की वृद्धि दिखलाता है, क्योकि जहां यजुर्वेद नरबलि का कथन करते हुए भी पुतले मात्र का वर्णन नही करता, वही शतपथ ब्राह्मण प्रकट रूप से भी ऐसा करना आवश्यक समझता है। चारो वेदो तथा ब्राह्मणो को मिलाकर पढने से हिन्दू धर्म की क्रमोन्नति का अच्छा रूप देख पडता है।

ब्राह्मण काल।

वैदिक साहित्य मे चारो वेदो को संहिता कहते है। यह सब पद्य मे है, केवल यजुर्वेद का कुछ भाग गद्य मे मिलता है। सहिता भाग की पूर्णता देखकर आर्यो ने अपनी भारी उत्पादिनी शक्ति ब्राह्मण ग्रन्थो मे लगाई, जिनमे गद्य का भाग भी अच्छा था। इनमे कर्मकाण्ड बहुत बढा, किन्तु प्रत्येक ब्राह्मण ग्रन्थ का अन्तिम अध्याय ज्ञानकाण्ड का भी कथन करता है। इन अध्यायो को उपनिषत् कहते है। सैकडो उपनिषत् ब्राह्मणो से असम्बद्ध होकर स्वतत्र भी है। ब्राह्मण ग्रन्थ अब ७० है। बहुत से ऐसे ग्रन्थ लुप्त होकर अब केवल ७० रह गये है। चौदहवी शताब्दी के सायनाचार्य तक एकाध ऐसे ब्राह्मण ग्रन्थ को जानते थे जो अब अप्राप्य है। उपनिषत् ११६४ है, जिनमे १५० प्राचीन तथा महत्व-पूर्ण हैं। इनमे भी १२ ग्रन्थो की प्रधानता है। उनके नाम है, ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुंडक, मांडूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य, वृहदारण्यक, कौशीतकी और श्वेताश्वतर। ब्राह्मणों तथा उपनिषदों से इतर कई आरण्यक ग्रन्थ भी है, जिनके कुछ भाग ब्राह्मण ग्रन्थो के समान हैं, और अधिकांश उपनिषदो के। जो कथन ब्राह्मणो तथा

उपनिषदो के विषय मे किये जाते है, वही आरण्यको पर भी घटित होगे। इनमे वृहदारण्यक की प्रधानता है।

ब्राह्मण साहित्य की भाषा वैदिक आसुरी से विकसित होकर पहली सस्कृत हो गई है, और देश मे पहली प्राकृत का प्रचार भी देख पड़ता है, यद्यपि यह अभी तक साहित्यिक भाषा होने का गौरव नही प्राप्त कर सकी है। ब्राह्मण ग्रन्थो मे मुख्यतया ६ विषयो का कथन रहता है, अर्थात् विधि, अर्थवाद, निन्दा, शंसा, पुराकल्प और परकृति का। ब्राह्मण ग्रन्थो की महिमा मुख्यतया उपनिषदो पर ही अवलम्बित है, जिनमे जगदुत्पत्ति, जीवात्मा और परमात्मा पर दार्शनिक विचार किये गये है।

मैक्समुलर का कथन है कि उपनिषत् मानव मस्तिष्क के बड़े ही चमत्कार पूर्ण फल है, जिनसे संसार भरके प्रत्येक देश, प्रत्येक समय और प्रत्येक साहित्य को गरिमा प्राप्त हो सकती है। ब्राह्मण काल मे याज्ञिक रीतियो मे भी बड़ा विस्तार हुआ और उचित रीति से मत्रोच्चारण एवं उचित मंत्रों के साथ यज्ञ रीतियो के सम्पादन पर ऐसी श्रद्धा बढी कि वास्तविक धर्म दृढ रीतियो की उलझन मे कुछ दब सा गया, यहाँ तक कि बहुत करके रीतियो ही ने धर्म का आसन ग्रहण कर लिया। वेदो के समान स्वावलम्बी श्रद्धा एवं दृढता ब्राह्मणो मे अप्राप्त है। यही वैदिक और आदिम ब्राह्मणधर्मों का मुख्य भेद है। कुछ लोगो का विचार है कि ब्राह्मणो मे रीति रस्मे उचित से बहुत अधिक बढ़ गई, जिससे ऊब कर लोगो ने उनके शिथिलीकरणार्थ वानप्रस्थ और संन्यासाश्रम के विचार चलाये, जिनसे यह सिद्ध किया गया कि निरग्निक सत्कर्मों का दर्जा अग्निवान से ऊचा है। आरण्यको का विधान इन्ही विचारो से उत्पन्न जान पड़ता है। आरण्यको से औपनिषत् विचारो का उठना स्वाभाविक था, और हुआ भी यही। जीवात्मा और आवागमन के विचार इसी समय दृढ़ हुए। उपनिषदों के ही द्वारा संसार मे पहले पहल ईश्वर

का भाव पूर्ण दृढ़ता और ज्ञान के साथ प्रसिद्ध किया गया। माया का सर्व प्रथम विचार श्वेताश्वतर मे आया। संसार माया है और ईश्वर मायी। छान्दोग्य उपनिषत् कहता है कि यह सारा संसार वही है, अर्थात् सत् एवं परमात्मा। श्वेतकेतु! तू भी वही है। इसी स्थान पर शकराचार्य सम्बन्धी तत्त्वमसि के विचार पाये जाते है। धर्म के सम्बन्ध मे तैत्तिरीय उपनिषत् का एक छोटा सा अवतरण यहा दिया जाता है। "सत्य बोलो, स्वकर्तव्य पालन करो, वेदाध्यन को न भुलाओ। उचित गुरु दक्षिणा देने के पीछे विवाह करके पुत्रोत्पादन करो, सत्य से मत हटो, लाभदायक पदार्थों को मत भुलाओ। देव-यज्ञ और पितृयज्ञ को मत भुलाओ। माता को देवी के समान मानो, पिता को देवता के समान मानो। अनिन्दित कर्मों पर श्रद्धा रक्खो, औरो पर नही। हमारे द्वारा किए हुए उचित कार्यों पर श्रद्धा रक्खो"। ब्राह्मण ग्रन्थों मे निम्नलिखित बाते भी पातक है '—मलिन वस्तु का खाना, राजा से नजर लेनी, हिसा, बड़े भाई के अविवाहित रहते हुये छोटे का व्याह, वैश्य या शूद्र की नौकरी, मदिरो मे नौकरी और आलस्य।

वैदिक समय मे प्राकृतिक शक्तियो का व्यक्तीकरण और एक प्रकार से देवताओ का बहुलीकरण हुआ, यद्यपि एकेश्वरवाद भी चला अवश्य। ब्राह्मण काल मे वैदिक कालवाले देव बहुलीकरण पर जो बल था उससे एकीकरण का भाव बडी दृढ़ता के साथ दिखलाया गया। वैदिक रचनाओ मे साहित्य की प्रधानता है, तथा औपनिषत् रचनाओ मे दर्शन की। वैदिक साहित्य मे उत्पादिनी शक्ति बलवती थी किन्तु औपनिषत् मे स्थिरीकरण का भाव प्रबल पड़ा। वैदिक कवि बालको की भांति सभी पदार्थों पर आश्चर्य प्रकट करता है, किन्तु औपनिषत्कवि प्रगाढ़ पण्डित की भाति जटिल दार्शनिक प्रश्नो को हल करता है।

हमारे वैदिक ऋषियो ने प्रकृति को साधारणी न मानकर उसका

ध्यानपूर्वक निरीक्षण किया, और अपने प्राथमिक ज्ञानानुसार उसके निगूढ रहस्यो का साहित्य पूर्ण वर्णन किया। वे लोग अपने काव्य मे इतने नही भूले कि जगत्पिता को जान ही न पाते किंतु जगत्पिता पर उनका ध्यान कम था, और जगत पर विशेष। इधर ब्राह्मण कालीन ऋषि बाहरी प्रकृति पर मुग्ध होना छोड़कर उसके निगूढ रहस्यो मे घुस गया, और अपने परिश्रम का चामत्कारिक फल उपनिषदो के रूप मे छोड गया है, जिस जाज्वल्यमान प्रतिभा पूर्ण रत्न पर आज सारा ससार मुग्ध है। इसीलिये जहां पुरानी रचनाएं वेद कह कर पुकारी गई, वही ससार ने इनका वेदान्त के नाम से आदर किया। छान्दोग्य उपनिषत् कहता है कि प्रारंभ मे ईश्वर केवल एक था। उसने अग्नि उत्पन्न की, जिससे जल हुआ और जल से पृथ्वी बनी। ऋग्वेद मे स्वर्ग नरक का विचार नही पाया जाता। इधर ब्राह्मणो मे स्वर्ग, कर्म, प्रकृति, भविष्य की स्थिति आदि पर पूर्ण विवाद पाया जाता है, और उपनिषदो मे पुनर्जन्म के विचार उत्पन्न हो गये है।

कौशीतकी ब्राह्मण से प्रकट होता है कि उत्तरी भारत मे पठन पाठन की प्रणाली उत्तम थी, और यहां के पठित विद्यार्थियोका सबसे अच्छा मान था। शतपथ ब्राह्मण मे आसुरि नामक एक आचार्य का कथन कई बार आया है। आप कपिल के शिष्य और साख्यशास्त्र के बड़े आचार्य थे। शतपथ ब्राह्मण मे महाप्रलय का कथन है। पाश्चात्य पडितो का विचार है कि कर्मकाड से जो ज्ञान कांड भारत मे उन्नत हुआ वह बहुत करके राजाओ के प्रभाव से हुआ। इस काल के साहित्य मे राजन्यगण का कुछ कथन है अवश्य। काशी के राजा अजातशत्रु ने बालाकि नामक ब्राह्मण को ब्रह्मविद्या बतलाई। राजा प्रतर्दन का नाम कौशीतकी ब्राह्मण मे है। शतपथ ब्राह्मण मे विदेहराज जनक तथा याज्ञवल्क्य के नाम है। मेगास्थिनीज़ के समय मे कृष्ण और पांडवों का सबंध ज्ञात था। शतपथ ब्राह्मण

राजा जनमेजय का वर्णन करता है। पुरूरवा और उर्वशी का कुछ वर्णन ऋग्वेद मे है। शतपथ मे विक्रमोर्वशी तथा दुष्यंत के कथन है। बहुत से ब्राह्मण ऋषियो ने भी ज्ञानकांड मे योग दिया है, विशेषतया याज्ञवल्क्य ने। पाश्चात्य पंडितो ने ब्राह्मण ग्रंथो का समय संबंधी पूर्वापर क्रम भी सोचा है। पंचविंश और तैत्तिरीय ब्राह्मण सबसे पुराने कहे गए है। इनके पीछे जैमिनीय, कौशीतकी और ऐतरेय आते है। शतपथ ब्राह्मण नया है, तथा गोपथ एवं सामवेद के छोटे छोटे ब्राह्मण उससे भी नए है। वे लोग उपनिषदो के समयानुसार चार भेद करते हैं। पहली कक्षा मे बृहदारण्यक, छान्दोग्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय और कौशीतकी उपनिषत् है, दूसरी मे कठ, ईश, श्वेताश्वतर, मुंडक और महानारायणीय, तीसरी मे प्रश्न, मैत्रायणीय और मांडूक्य, तथा चौथी मे अथर्ववेदीय उपनिषत्।

सूत्र काल।

अब तक हमारे पूर्व पुरुषो ने उपरोक्त साहित्य बनाकर उसे कंठस्थ ही रक्खा, जिससे समय के साथ स्मरणशक्ति पर बोझ पड़ता हुआ देख पडा। तो भी उन्होने लेखन कला से काम न लेकर अपने साहित्य को ही छोटा बनाया। इसी कारण ब्राह्मण समय के पीछे सूत्र-साहित्य का प्रकाश आया। इस काल आर्यों ने तार से भेजे हुए समाचारो से भी छोटे वाक्यो द्वारा अपने प्रयोजन प्रकट किए, जिसमे स्मरण शक्ति पर अधिक बोझ न पड़े। इतना सब करते हुए भी उन्हे अवश होकर सूत्रकाल ही मे लेखन कला का भी प्रचार करना पड़ा। इसी समय मे वर्तमान संस्कृत भाषा का जन्म हुआ, और प्राकृत भाषा भी हमारे सामने साहित्यिक रूप मे आई। सूत्रो के तीन भाग हैं, अर्थात गृह्य, धर्म और श्रौत। पंडितों का मत

है कि वैयाकरण पाणिनि के पहले थोड़े ही सूत्र रचे गये और अधिकांश उनके पीछे बने। शाम्बव्य गृह्य सूत्र मे पितृ-यज्ञ का विधान है। इस काल यह पूजन भली भाति स्थापित था। धर्म सूत्रो से ही बढकर समय पर स्मृतियो का निर्माण हुआ। आपस्तम्ब सूत्र मे भोज्याभोज्य, शुद्धीकरण आदि के वर्णन है। आपस्तम्ब ने उत्तरी लोगो की निन्दा की है, जिससे आप दाक्षिणात्य समझे गए है। इनकी भाषा पाणिनि के पहले की है। इनके धर्मसूत्र मे अन्य सूत्रकारो से विशेष भेद नही है, जिससे जान पड़ता है कि इनके कई शताब्दी पूर्व से दक्षिण मे हिंदू मत पूर्ण स्थिरता से स्थापित हो चुका था। यदि उस काल वहा यह नया होता, तो इनके ग्रंथ मे स्थानिक बाते अवश्य आती, जिससे वह प्राचीन आर्य ग्रथो के समान सारे देश मे सम्मानित न होता। बोधायन धर्मसूत्र भी आपस्तम्ब के समान उन्ही विषयो का कथन करता है। बूलर का मत है कि ये महाशय चौथी पाचवी शताब्दी बी० सी० के पूर्ववर्ती है। आप भी दाक्षिणात्य है। दत्त महाशय आपको छठी शताब्दी बी० सी० के समझते हे। बोधायन ने भारत को तीन भांगो में बाँटा है। दाक्षिणात्य होकर भी आप गंगा यमुना वाले देश को प्रधान कहते है, दक्षिणी तथा पूर्वीविहार, दक्षिणी पंजाब, सिध, गुजरात, मालवा, और दक्षिण दूसरी श्रेणी के, तथा बंगाल, उड़ीसा एवं ठेठ दक्षिण तीसरे दर्जे के। ये सम्मान आर्य सभ्यता के प्रचारानुसार थे। दूसरी श्रेणी के लोग मिलित जाति के कहे गए है। आपका मत है कि जो कोई पजाब के आरट्ट, ठेठ दक्षिण के कारस्कार, बंगाल एवं उड़ीसा के पुंड्र, बंग तथा कलिग, दक्षिणी पंजाब के सौबीर और प्रानन लोगो मे कहीं गया हो, उसे पुनीत होने के लिये यज्ञ करना पड़ेगा। वशिष्ठ का बचन है कि जैसे परम रूपवती स्त्री का भी सौन्दर्य्य अन्धे को सुखद नहीं होता, वैसे ही वेदो समेत सारे धर्मशास्त्रका ज्ञान उसके लिये कल्याणकर नही होता जिसके आचरण बुरे है। जैसे ब्राह्मण

काल मे राजनीतिक उन्नति चरम सीमा को पहुँची, वही दशा सूत्र समय मे धार्मिक विस्तार की हुई।

सूत्रकाल मे धर्म के अतिरिक्त व्याकरण तथा दर्शन सम्बन्धी ज्ञान की भी अच्छी वृद्धि हुई तथा लेखन कला का चलन देश मे हुआ। सबसे प्राचीन वैयाकरण यास्क थे, जिन्होने अपने ग्रन्थ मे प्रायः २० पूर्ववर्ती वैयाकरणो के नाम लिखे है, और व्याकरण सम्बन्धिनी उत्तरी और पूर्वी नाम्नी दो शाखाये लिखी है। पाणिनि ने अपने पूर्ववर्ती ६४ वैयाकरणो के नाम लिखे है। यास्क सूत्रकाल के आदि मे हुए और पाणिनि मध्य मे। इनके पीछे कात्यायन और पतञ्जलि प्रसिद्ध वैयाकरण हुए। यही तीनो ऋषि मुनित्रय कहलाते है। कात्यायन नन्द वंश के मन्त्री थे, सो आप का समय चौथी शताब्दी बी० सी० बैठता है। पतञ्जलि पुष्यमित्र को यज्ञ कराते थे, जिससे आपका समय दूसरी शताब्दी बी० सी० आता है। पाणिनि यास्क और कात्यायन के बीच मे हुए। भारत मे लेखन कला का प्रचार अवैदिक समय मे भी था, जैसा कि हरप्पा और महेजोदारो के विवरण से विदित है। वेद मे भो अष्टकरणी गायो का कथन है, तथापि उस काल लेखन कला का चलन न था और वेदादि ग्रन्थ स्मरणशक्ति से ही रक्षित हुए। गौतमबुद्ध के समय मे लेखन कला का सर्वसाधारण मे अच्छा प्रचार था, जैसाकि बौद्ध साहित्य से प्रकट है। दर्शन शास्त्र के हमारे यहां ६ मुख्य भाग है, अर्थात् सांख्य, योग, पूर्व मीमांसा, उत्तर मीमासा, न्याय और वैशेषिक। सबसे प्राचीन दार्शनिक साख्यकार कपिल थे, जिन्होने केवल प्रकृति और पुरुष को मानकर ईश्वर का ही अस्तित्व असिद्ध समझा। आपने २५ तत्व लेकर संसार की सृष्टि बतलाई है। पूर्वमीमांसा-वादी महर्षि जैमिनि भी अनीश्वरवादी थे। इन दोनो अनीश्वरवादी शास्त्रो के कारण अनीश्वरता का दार्शनिक रूप मे प्रादुर्भाव हुआ, जिससे पण्डित समाज मे बडी खलबली मची। सबसे पहले वेन

ने शरीरवाद का प्रचार किया। अनन्तर हिरण्य कशिपु और प्रह्लादात्मज विरोचन शरीरवादी हुए। अश्वग्रीव ने भी शरीरवाद मानकर ससार से वैदिक धर्म के उठाने का प्रयत्न किया। चार्वाक का मत है कि (१) कष्टप्रद कार्य मत करो। (२) हिसा न करो। (३) भाग्य नही, पुरुषार्थ मान्य है, क्योकि आलसी लोग भाग्य का भरोसा करते है। आत्मनिर्भरता ही शक्ति है और मोक्ष भी देती है। (४) परमेश्वर अथवा लोकान्तर मिथ्या है। (५) वेद और ईश्वर विश्वास योग्य नहीं है, क्योकि वे कृत्रिम है और धोखेबाज़ी पर अवलम्बित है। (६) सदा बुद्धि पर चलो, क्योकि बुद्धि के बिना धर्म नही है। (७) आत्मा अमर है, तथा वह क्षिति, जल, पावक और समीर से बना है, अन्न से नही। (८) केवल प्रत्यक्ष प्रमाण है। चार्वाक का मत दार्शनिक विचारो पर अवलम्बित न होने से अधिक प्रभाव न डाल सका, किन्तु साख्य और पूर्व मीमांसा से पण्डितो को बहुत भय हुआ। बृहस्पति सबसे पुराने अनीश्वरवादी थे।

ऐसी दशा मे महर्षि गौतम और कणाद ने न्याय और वैशेषिक के दर्शन रचकर ईश्वरवाद के पक्ष को दृढ किया। पूर्व मीमांसा अनीश्वरवादी होकर भी वेदो की महत्ता मानता हुआ उनपर पाण्डित्यपूर्ण विचार करता है और शरीरवाद का भी खण्डन करने मे प्रवृत्त है। जैमिनि एक प्राचीन आचार्य है, क्योकि यास्क ने आपके सिद्धांतो का कथन किया है। गौतम भी एक परम प्राचीन ऋषि है। कुछ शताब्दी पीछे किसी व्यास ने उत्तर मीमांसा बनाया। पूर्व मीमांसा कर्मकाड को प्रधानता देता है, और उत्तर मीमांसा ज्ञान को। जैमिनि वेदो का महत्व मानते है किन्तु उनका अनादित्व नही। गौतम ईश्वर को मानते है, किन्तु उनकी सृष्टि-शक्ति को नहीं। इसी विषय से सम्बद्ध द्वैताद्वैत विचार है। इनके पांच भेद है, अर्थात् अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत, द्वैताद्वैत और द्वैत। अद्वैतवाद जीवात्मा तथा परमात्मा को अभिन्न मानकर इनका अतर

अविद्याजन्म कहता है, और ससार को माया बतलाता है। इसका वर्णन बादरायणकृत ब्रह्मसूत्रो मे है। शङ्कराचार्य ने इसे खूब पुष्ट किया। द्वैतमत मे ईश्वर और जीव सत् अथवा सत् के समान है, और विशिष्टाद्वैत मे ईश्वर, जीव और प्रकृति तीनो सत् अथवा सत् के समान है। शुद्धाद्वैत मे ये तीनो माने गये है, किन्तु इनमे क्रमसे आनन्द और चित् का आवरण कहा गया है। द्वैताद्वैत भेद तथा अभेद दोनो को मानता है। द्वैतवादी प्रकृति मायामय समझते है वैशेषिक न्याय से पुराना है। मैकडानल महाशय का मत है कि पहले ये दोनो शास्त्र अनीश्वरवादी थे, और इनमे ईश्वर सम्बन्धी विचार पीछे से मिलाये गये। सांख्य, योग तथा वेदांत के सिद्धान्त श्वेताश्वतरोपनिषत् मे मिलते है। भगवद्गीता मे भी इनका अच्छा वर्णन होकर कर्तव्य की प्रधानता रक्खी गई है।

सूत्रकाल मे इतिहास का प्रचार अच्छा हुआ। महाभारत के समय जब कृष्ण द्वैपायन व्यास अपने शिष्यो मे वेद बाटने लगे, तब उन्होने इतिहास का विभाग लोमहर्षण सूत को दिया। लोमहर्षण ने इस विषय पर एक संहिता बनाई, और मैत्रेय, शिशुपायन तथा अकृत व्रण नामक उनके तीन शिष्यो ने भी इस विषय पर एक एक संहिता रची। इस प्रकार उस काल तक का ऐतिहासिक ज्ञान दृढ हुआ। समझ पडता है कि ब्राह्मणो ने उस समय धार्मिक साहित्य के अतिरिक्त इतिहास पर ध्यान न दिया, जिससे यह विषय सूतो के मत्थे पड़ा। उपरोक्त संहिताओ का कथन विष्णु पुराण में है। वायु और पद्म पुराणो मे लिखा है कि सूतो का पुराण कहने का अधिकार जन्म से है। इतिहास पर राजाओ, स्त्रियो और शूद्रों ने विशेष श्रद्धा दिखलाई, अतएव जैसे ब्राह्मणो ने स्मृति द्वारा वेदादि की रक्षा की, वैसे ही सूतो, मागधो, चारणों आदि ने स्मरण शक्ति द्वारा हमारा दीर्घकालीन ऐतिहासिक मसाला सुरक्षित रक्खा। अथर्व वेद मे मागधों का वर्णन आया है। आज भी ब्रह्म भट्ट लोग कुछ अंशो मे

यही काम करते है। समय के साथ पीछे की भी घटनाओ के कथन संहिताओ मे बढते गये, यहां तक कि प्राकृत भाषा मे कई पुराण ग्रन्थ भी बने, जिन्हे प्राकृत पुराण कहते है। बौद्ध ग्रन्थो से विदित है कि जैसे आजकल सस्कृत के पुराण सुनाए जाते है, वही दशा उस काल तक प्राकृत पुराणो की थी। लोक मे इनकी महत्ता बढने अथच लेखन कला के प्रचार से ग्रन्थ निर्माण तथा उसके रक्षण मे सुगमता के कारण ब्राह्मणो ने भी सस्कृत भाषा मे पुराण ग्रन्थ बनाए। प्राकृत पुराणो के आधार पर सबसे पहले भविष्य पुराण बना, और फिर विष्णु, अग्नि, वायु और ब्रह्माड पुराणो की रचना हुई। पीछे से क्षेपको की भरमार से भविष्य पुराण की आदिम शुद्धता नष्टप्राय हो गई। हमारे पास महाभारत के समय तक का पक्का ऐतिहासिक मसाला उपरोक्त सहिताओ मे था, और वर्तमान पुराणो के कम से कम राजवश दृढ़ हैं। वैदिक साहित्य मे क्रमबद्ध इतिहास नही है, किंतु पौराणिक साहित्य मे जो ऐतिहासिक क्रम मिलता है, उसके अनेकानेक अशो का वैदिक साहित्य से पक्का समर्थन होता है। बौद्धकाल से हमारे यहा बहुत दृढ इतिहास मिलता है, जिसे पाश्चात्य विद्वान भी मानते है। बौद्धकाल से पूर्व की घटनाये है तो पक्की, किन्तु उन सबके समय सबंधी मामले बहुत दृढ़ नही है, और उधर ऐतिहासिको का कथन है कि जब तक नरेशो आदि के समयो का पक्का विवरण न हो तब तक कोई ग्रंथ सत्य घटनाये कहता हुआ भी इतिहास न माना जायगा। सस्कृत भाषा मे जो पुराण ग्रन्थ बने वे साहित्यिक गरिमा मे प्राकृत पुराणो से बहुत श्रेष्ठतर थे। इसीसे इनके बनने पर प्राकृत पुराण नष्ट हो गये। सूत्रकाल मे ही जय ग्रन्थ बना जो समय के साथ बढकर भारत और फिर महाभारत हो गया। इन वृद्धियो के कारण जय की प्राचीन शुद्धता संदिग्ध हो गई, और अब ऐतिहासिक विचार से महाभारत के वे ही कथन ग्राह्य माने जाते हैं, जो अन्य प्रकार से भी समर्थित

हो। हरिवंश और महाभारत ग्रंथ पुराण न कहलाकर इतिहास कहलाये।

सूत्रकालीन ऐतिहासिक विभाग।

जो ऐतिहासिक मसाला सूत्रकाल मे दृढ़ हुआ, वह ऐतिहासिक विषय पर क्या प्रकाश डालता है, उसका कुछ थोड़ा सा कथन यहां भी आवश्यक है, क्योकि इन घटनाओ के वर्णन हिंदी साहित्य मे भी बहुतायत से आते है।

स्वायंभुव मन्वन्तर।

स्वायम्भुव मनु की २६ पीढियो ने भारत मे शासन किया। तिलक महाशय के अनुसार यह मन्वन्तर ६० वी शताब्दी बी० सी० से चलता है। जो हो, इतना तो अवश्य है कि हमारे पहले पांच मन्वन्तर वैदिक समय से पहले के है, यद्यपि उनके समयो मे आर्यों का ही शासन एवं सभ्यता भारत मे रही। इस मन्वन्तर मे उत्तानपाद, प्रियव्रत, ऋषभदेव, बेन, पृथु, भरत, ध्रुव, प्रचेतस और दक्ष प्रधान पुरुष थे।

स्वारोचिष मन्वन्तर।

दुर्गा पाठ की कथाएँ राजा सुरथ को सुनाई गई थीं। वे सुरथ इसी मन्वन्तर के कहे गए है। अतएव वे कथाएँ इसी मन्वन्तर की या इससे पहले की होंगी। महाप्रलय भी इसी मे समझ पड़ती है क्योकि वह भी मधुकैटभ से सम्बद्ध है।

उत्तम, तामस और रैवत मन्वन्तर।

उत्तम होगा अच्छा जैसाकि उसके नाम से प्रकट है, किन्तु उसकी कोई घटना हमने कही नही पढ़ी। तामस मे गजेन्द्र मोक्ष की कथा

है, जिससे आर्यो का उसी काल से हाथियो तक वाले देश मे जाना प्रमाणित होता है। रैवत मन्वन्तर मे बैकुंठ बनाया गया।

चाक्षुष मन्वन्तर।

श्रीभागवत् के अनुसार समुद्र मन्थन और बलि बंधन इस मन्वन्तर की मुख्य घटनाये है। इससे बाराह और नृसिह अवतार भी इसी मे जान पड़ते है। इस काल भारतीय लोगो मे समुद्र यात्रा का प्रचार था।

वैवस्वत मन्वन्तर।

यह मन्वन्तर अब तक चला आ रहा है। आप ही ने अयोध्या नगरी बसाई। भगवान रामचन्द्र आपही के वशधर थे। वैवस्वत वशियो मे इक्ष्वाकु, मान्धाता, हरिश्चन्द्र, भगीरथ, सुदास, रामचन्द्र और गौतम बुद्ध की प्रधानता है। यह लोग सूर्यवशी भूपाल थे। इन्ही की एक शाखा मिथिला मे प्रतिष्ठित हुई, जिसमे निमि, जनक और सुधन्वा की मुख्यता है। सुदास का कथन ऋग्वेद मे बहुत है, और उनके पिता दिवोदास का भी। पीछे से इनकी एक शाखा शाक्य नैपाल मे स्थापित हुई। उसी मे गौतम बुद्ध का प्रादुर्भाव हुआ। वैवस्वत मनु से रामचन्द्र तक ६३ पीढ़ियां हुई, युधिष्ठिर के समकालीन बृहद्बल तक ९२, और गौतम बुद्ध तक ११७ पीढियां पुराणो मे संतानो की मानी गई है, किन्तु कुछ पाश्चात्य पंडित इन्हे राज्य के उत्तराधिकारियो की भी मानते है। चन्द्रवश पीछे से स्थापित होकर अतिशीघ्र उन्नत हुआ, और उसकी दस बारह शाखाये यत्र यत्र स्थापित हुई। दक्षिण मे आर्यो की स्थापना अगस्त्य ऋषि तथा परशुराम द्वारा बहुतायत से हुई। सूर्य वश की प्राय: ३५ पीढ़ी बीत जाने पर भारत मे चन्द्र वश भी चलने लगा। इसमे बुध, पुरूरवा, नहुष, ययाति, यदु, पुरु, दुष्यन्त, जन्हु, शान्तनु, भीष्म, दुर्योधन,

युधिष्ठिर, अर्जुन, जनमेजय और अधिसीमकृष्ण प्रमुख थे। कुरुवंश मे जरासन्ध भी पराक्रमी था। इसी वश मे विश्वामित्र, कार्तवीर्य जमदग्नि, परशुराम और श्रीकृष्ण बहुत प्रमुख थे। ययाति आदि के वर्णन ऋग्वेद मे भी बहुत है, तथा रामचन्द्र, अर्जुन, और श्रीकृष्ण की कथाये हिंदी साहित्य मे बहुतायत से आती है। उपरोक्त अनेकानेक महात्माओ की कथाये बहुत ही ललित है, किंतु विषयान्तर बचाने के लिये वे यहा नही कही जाती है। हमने इन सबका कुछ विस्तार के साथ वर्णन अपने भारत के इतिहास मे किया है। वैदिक संहिता मे सुदासके पीछे के कथन नही है। अन्य वैदिक साहित्य में इनमे से कुछ नाम मिलते है, सब नही। बहुत से महानुभावो के पौराणिक साहित्य मे गरिमा पूर्वक कथन है, किन्तु वैदिक साहित्य मे उनके नाम तक न आने से कभी कभी उनके अस्तित्व मे भी लोग सन्देह कर बैठते है, तथापि इतना समझे रहना चाहिये कि उनका कथन पौराणिक विषय है, तथा वैदिक साहित्य के लिये वह विषयान्तर मात्र है। महाभारत के पीछे भारत मे आदिम कलिकाल का समय आता है। महाराजा युधिष्ठिर तथा जरासन्ध के समय से गौतम बुद्ध के काल तक प्राय॰ ६०० वर्ष का समय माना जाता है। इस समय मे सूर्यवंशी ३१, सौरसेनी २३, पाडव ३०, बार्हद्रथ २१ तथा पांचाल २४ नरेशो के कथन पुराणो मे आते है। बार्हद्रथ वश जरासन्ध का था। वृहद्रथ जरासन्ध के पूर्व पुरुष थे। इसी स्थान पर हमारा सूत्रकालीन विवरण समाप्त होता है। इसके पीछे पौराणिक तथा स्मार्तकाल प्राय॰ आठवी शताब्दी वाले शकराचार्य के समय तक चलता है, और इसी में बौद्धकाल भी आ जाता है। फिर भी बौद्ध काल की महत्ता के कारण तथा वर्णन मे गड़बड़ मिटाने के अभिप्राय से हम इसका कथन अलग करके तब पौराणिक समय को उठावेगे।

बौद्ध काल।

वैदिक समय से सम्बन्ध रखनेवाला साहित्य ऊपर समाप्त हो चुका है। आर्य सभ्यता से ६००० बी० सी० से या जब से वह मानी जावे, छठी शताब्दी बी० सी० तक भारत मे राजनीति, धर्म, समाज, साहित्य, भाषाओ आदि की जो जो उन्नति हुई, उसका बहुत ही स्वल्प वर्णन ऊपर आ चुका है। यही कथन कुछ विस्तारके साथ हमने अपने भारतवर्ष के इतिहास मे किया है। अब तक भारतीय समाज ने प्राचीन परिपाटियो का उचित मान रखते हुए धीरे धीरे विकासोन्मुख होते हुए बहुतेरी बातो मे उन्नति दिखाई, किन्तु दस्यु पराजय से इतर कोई क्रान्ति अथवा भारी उथल पुथल नही हुई। प्रायः सभी बातो मे हमारे ऋषियो, राजाओ, सुधारको आदि ने प्राचीनता का उचित से कुछ अधिक मान रखकर नवीन परिशोधनो मे मन लगाया। जैसे एक दिन का शिशु बढते हुये पूरा जवान होकर बूढ़ा तक हो जाता है, किन्तु किसी दिन उसमे भारी परिवर्तन देखने मे नहीं आता, इसी प्रकार हमारा भारतीय आर्य समाज उन्नति करता हुआ शैशव एव युवावस्था को पार करके आदिम कलिकाल मे ही वृद्धप्राय अवस्था को पहुच गया। वैदिक विचारों की उन्नति चरम सीमा के भी आगे निकल गई, और ईश्वर तक को न माननेवाले कई ऋषियो ने वेद का मान फिर भी रक्खा। तथापि ऋग्वेद का सीधासादा धर्म ब्राह्मण ग्रन्थो मे उन्नति करता हुआ सूत्रो के तनाव मे ऐसा कुछ उलझा, कि विधि निषेध ही ने उसका स्थान ले लिया, और यही धर्म के मुख्याग बन बैठे। अत' हमारा भारतीय हिन्दू समाज सरल धर्म, सरल मत एवं सरल आचारो के विचारो को खोकर हर बात मे कट्टर पडितो की पोथियो का आश्रित सा हो गया। यहा तक कहा गया कि इन्द्र सा विद्यार्थी, बृहस्पति सा गुरु, और दिव्य सहस्र वर्ष अध्ययन काल होने से भी व्याकरण का अन्त नहीं मिल

सकता। यही दशा भारतीय धार्मिक सिद्धांतो की हुई। हमारे शास्त्रो मे आ सब कुछ गया, किन्तु भारी ग्रन्थो के गूढीकरण मे सरल सिद्धांतो का ज्ञान ऐसा दुर्ज्ञेय हो गया कि साधारण समाज को कर्तव्य जान ने के लिये पडितो का मुखापेक्षी होने से पूरी अडचन पडने लगी। इन कारणो से भारतीय समाज का ऐसा समय आया जब क्रान्ति का होना अनिवार्य हो जाता है। इसीलिये हम देखते है कि थोडे ही दिनो मे बौद्ध और जैन धर्मों का प्रादुर्भाव हुआ। गौतम बुद्ध और महाबीर तीर्थंकर हिदू समाज के पहले भारी डिसेटर (विरुद्ध मत प्रवर्तक) हुये। इन्ही के प्रादुर्भाव से भारत के साहित्य और मत मे वैदिक समय का अन्त हो गया, और बौद्ध तथा पौराणिक विचारो का पुष्टीकरण होने लगा।

महात्मा गौतमबुद्ध का जन्मकाल ५६४ बी० सी० है। एक पुत्र पाने के पीछे २८ वर्ष की अवस्था मे आपने गृहत्यागी होकर सात वर्ष के परिश्रम से अपने धार्मिक सिद्धान्त दृढ किये तथा ४५ वर्ष सारे देश मे घूम घूम कर उनका प्रचार करके ८१ वे वर्ष मे निर्वाण प्राप्त किया। अपने धर्म के सात रत्नो को आपने सप्तत्रिशच्छिक्ष्य-माण धर्म कहा है। वे ये हैं, स्मृत्युपस्थान, सम्यक् प्रहाण, ऋद्धि-पाद, इन्द्रिय, बल, बोध्यग और मार्ग। स्मृत्युपस्थान चतुर्धा है, अर्थात शरीर अपवित्र है, संसार की वेदनाय दुःखमयी है, चित्त चञ्चल है, और ससार के पदार्थ क्षणिक है। पदार्थों मे रूप, वेदना, विज्ञान, सज्ञा और सस्कार की गणना है। सम्यक् प्रहाण भी चतुर्विध है, अर्थात अर्जित पुण्यसंरक्षण, अलब्ध, पुण्योपार्जन, अर्जित पाप परित्याग, और अलब्ध पापानुत्पत्ति। ऋद्धिपाद के दृढ संकल्प, उद्योग, उत्साह और आत्मसंयम अंग है। श्रद्धा, समाधि, वीर्य, स्मृति और प्रज्ञा को इन्द्रिय कहते है, तथा इन्ही पाचो का बल वास्तविक बल कहा है। बोध्यग-सप्तधा है, अर्थात स्मृति, धर्मसंचय, वीर्य, प्रीति, प्रश्रब्धि, समाधि और अपेक्षा। आर्य मार्ग अष्टधा है।

इसी को अष्टांगिक मार्ग अथवा मध्यमा प्रतिपदा भी कहा है। वह यह है, सम्यक्कर्मान्त, सम्यग्दृष्टि, सम्यक्संकल्प, सम्यग्वाचा, सम्यग्जीवन, सम्यग्व्यायाम, सम्यक्स्मृति और सम्यक्समाधि। इस ऋषिराज ने चार आर्य सत्यो का भी कथन किया है। पहला आर्य सत्य दु.ख है, दूसरा तृष्णा, तीसरा दु:ख निरोध और चौथा निरोध गामिनी प्रतिपदा। आपका मत है कि जन्म, जरा, व्याधि, और मरण, प्रिय मिलनाभाव, प्रियवियोग, इच्छा को अपूर्त्ति आदि पंचोपादान स्कन्ध दु:ख है। पुनर्भव का कारण तृष्णा है। थोडे मे आपने कामना शाति द्वारा निर्वाण प्राप्ति की शिक्षा दी है। आपका मत आचार शास्त्र पर चलता है, अथच वेदो और ईश्वर को स्थान नही देता। गौतम के समकालीन महावीर तीर्थकर थे जिन्होने जैनमत का प्रचार किया। आपका जन्मकाल ५६६ बी० सी० था। २८ वर्ष गृही रहकर और एक पुत्री के पिता होकर आप भी जङ्गल चले गए। १४ वर्षो के कठिन परिश्रम से आपने मानुषीय कष्टो का मूल जाना और तीस वर्षो तक अपने मत का प्रचार करके दीपावली के दिन पावापुरी मे निर्वाण प्राप्त किया। आप भी क्षत्रिय थे। जैनमत का प्रचार गुजरात एव मारवाड़ प्रान्तो तथा तामिल मे अच्छा हुआ।

जैनो के मुख्य सिद्धान्त तीन है, अर्थात सम्यग्दृष्टि, सम्यक् ज्ञान और सम्यक्कर्म। सम्यक्कर्म के पाच उपभेद है, अर्थात सत्यभाषण, अस्तेय, इच्छाध्यान, पवित्रता और अहिसा। जैनमत ईश्वर को न मानकर केवल तीर्थकर को ईश्वर सा मानता है। वे जीव को चैतन्य, प्रकाश रूप एवं ससीम बतलाते है। उनमे स्याद्वाद की प्रधानता है। इस मत के सिद्धान्तो का कुछ विशेष कथन हमने अपने भारतवर्ष के इतिहास मे किया है। जैनमत का प्रचार बौद्ध मत के समान देशव्यापक नही हुआ, किन्तु बहुतेरे जैन अब भी यत्र तत्र पाये जाते हैं। इसका वर्णन ऐतिहासिक प्रसंग मे आ जावेगा

ऊपर कहा गया है कि महाराजा जरासन्ध के अनन्तर अर्थात् महाभारत के पश्चात् मगध मे २१ वार्हद्रथ राजाओ ने राज्य किया। इनके पीछे छ: शुनक वशियो का समय आया, अनन्तर दस शिशुनाग वंशियो का और फिर महानन्द और उसके सात पुत्रो का। नन्द वंश के अनन्तर मौर्य वंश का राज्य भारत मे हुआ। गौतम बुद्ध के समय शिशुनाग वशी अजातशत्रु मागध गद्दी पर था। बौद्ध ग्रन्थो मे उसकाल भारत मे १६ राज्य लिखे है, अर्थात् अग, मगध, काशी, कौशल, वज्री, मल्ल, चेति, वत्स, कुरु, पाचाल, मत्स्य, शौरसेन, अश्मक, अवन्ती, गाधार और काम्बोज। इनमे से उस काल के पूर्व कुछ राज्य लुप्त हो चुके थे। कुछ बौद्ध ग्रन्थों मे पैठण उपनाम पतित्थान तथा दक्षिण पथ के भी नाम आये है। कालिंग उपनिवेश की राजधानी दन्तिपुर थी, ऐसा निकाय ग्रन्थो मे आया है। वाल्मीकि ने चोल और पाड्य राज्यो के भी नाम लिखे है। उस काल निम्न स्थानो मे विश्वविद्यालय थे :—तक्ष शिला, कन्नौज, काशी, उज्जैन, मिथिला, मगध, श्रीधन्य कटक, राजगृह, वैशालि, कपिलवस्तु, श्रावस्ती, कौशाम्बी और नालन्द। उस काल के प्रधान नगर थे अयोध्या काशी, चम्पा, कम्पिला, कौशाम्बी, मथुरा, मिथिला, राजगृह, रोरुक, सौवीर, सागल, साकेत, श्रावस्ती, उज्जैन और वैशाली। उस काल के ग्रन्थो मे निम्न व्यापार या व्यापारी लिखे है —हाथीवान्, घुडसवार, रथी, धनुर्धारी, सेना मे ६ भिन्न श्रेणिया, दास, सूद (बावर्ची) नाई, नहलानेवाले, हलवाई, माली, धोबी, जुलाहे, झौआ बनानेवाले, कुम्हार, लेखक, मुसद्दी और किसान। इनके अतिरिक्त और भी बहुतेरे रोजगारी लिखे है। पण्डितो का कथन है कि महात्मा बुद्ध ने हिन्दुओ का खंडन कम किया है और मगो का विशेष।

अपने समय मे गौतम और महाबीर अपने को पृथक् मतो के प्रवर्तक न समझकर सुधारक मात्र मानते थे। मौर्य सम्राट् अशोक

के समय तक बौद्ध एक सम्प्रदाय मात्र रहा, न कि कोई पृथक् धर्म। अशोक ने इसे गृहत्यागी सन्यासियो के अतिरिक्त गृहस्थो का भी धर्म बनाया। बौद्ध ग्रन्थो मे तृपिटक की महत्ता है, जिनमे सैकडो तत्कालीन ग्रन्थ सम्मिलित है। ये सब पाली अर्थात् दूसरी प्राकृत मे लिखे गये थे। यही उस काल की मुख्य देशभाषा थी। मौर्यों के पीछे भारत मे शुङ्ग तथा काण्व घरानो का राज्यकाल एक दूसरे के पीछे आया। काण्व वंश का अन्त २८ बी० सी० मे हुआ।

अनन्तर शक, आन्ध्र, और कुशन भूपाल विविध प्रान्तो मे कभी आगे पीछे और कभी एक ही समय भी सन् ४०१ तक शासक रहे। मुख्य कुशन भूपाल पक्के बौद्ध थे और हिन्दू आन्ध्र बहुत करके दोनो मतों के समर्थक रहे, क्योकि हिन्दू होकर वे दान बौद्धो को अधिक देते थे। इनका समय सन् ४०१ ई० के लगभग समाप्त हुआ। शको और कुशनो ने संस्कृत का मान किया, और कुशनो के समय जो त्रिपिटक बना वह संस्कृत मे था न कि पहले के समान प्राकृत मे। इन दिनो बौद्धमत का प्रभाव बहुत रहा, किन्तु हिन्दूमत दबा कभी नही। हिन्दू समाज मे बौद्ध मत के प्रसार से उन दोनोमे परिवर्तन होने लगे और हिन्दू विचारो के प्रभाव से गौतम बुद्ध के प्रति मानुष भाव की कमी और ईश्वरीय भाव की वृद्धि होती गई, यहां तक कि देव समाज मे हिन्दू अपने देवताओ के आगे बुद्ध का दर्जा नीचा रखते थे और बौद्ध ऊंचा, यही इन मे मुख्य प्रकट भेद रहा। इस प्रकार परिवर्त्तित होकर पहले का बौद्धधर्म हीनवान कहलाया, और पीछे का महायान। जिन जिन देशो मे पुराना बौद्धधर्म फैला वहां अब भी हीनयान चलता है, और जहा नया बौद्धधर्म गया वहां वह अब भी महायान के रूप मे है। बौद्ध लोग पादड़ियो की भांति दूर देशो मे बौद्धमत के प्रचार में बहुत दत्त चित्त रहे, जिससे यह मत लंका, बर्मा, स्याम, चीन, जापान आदि मे अब भी फैला हुआ है, यद्यपि भारत से निर्मूल हो गया है।

सन् ३१६ से ६४७ तक गुप्तो तथा हर्ष वर्धन का राजत्वकाल भारत मे रहा। हर्ष बौद्ध थे और गुप्त साम्राज्य भारत के लिये सत्ययुग सा हुआ। इसमें बहुत बातो मे अच्छी उन्नति हुई। यद्यपि गुप्तो ने बौद्धों पर कोई अत्याचार नही किये, वरन् उन्हे भी थोड़ा बहुत दान तक दिया, किन्तु उनकी उदारता का मुख्याश हिन्दुओ को मिलता था। मांसाशन के निषेध एवं कुछ अन्य आज्ञाओ के कारण बौद्ध एवं जैन मतो द्वारा व्यक्तिगत स्वाधीनता मे बाधा पड़ती थी, और उधर हिन्दूधर्म सब प्रकार से स्वतन्त्रताप्रद था, अथच धार्मिक उच्चता मे भी उन दोनो से नीचे न था। इन कारणो से जब जब बौद्धो एव जैनो को विशेष राजप्रोत्साहन मिलता था, तब तो ये उन्नति करके हिन्दूमत की समानता सी करने लगते थे, किन्तु ज्योंही वह प्रोत्साहन कम होता था, त्योंही इन की दशा मन्द हो जाती थी। इन्ही कारणो से मौर्यों, वल्लभी नरेशो, कुशनो तथा आंन्ध्रो का सहाय पाकर भी बौद्धमत देश मे हिन्दूमत को दबा न सका, और गुप्त साम्राज्य की दीर्घकालीन सुव्यवस्था (सन् ३१६ से ४८० तक गुप्त साम्राज्य तथा ५५३ तक गुप्त राज्य रहा) से हिन्दू मत इतना बढ़ा कि बौद्ध मत बिलकुल दब सा गया, तथा हर्षवर्धन के समय में बुझती हुई बत्ती के समान बढ़कर उनके पीछे साम्राज्यव्यापी न रहकर केवल प्रातिक मत रह गया।

आठवी शताब्दी मे शंकराचार्य के प्रयत्नो से और भी गिरकर यह बंगाल, मगध, वायव्य सीमा प्रांत एवं अफ़ग़ानिस्तान मे ही प्रधान रूप मे रह गया, तथा इतर प्रातों से बुझ गया। अनन्तर मुसलमानो के धार्मिक अत्याचारो से और भी लुप्त होकर यह विशाल मत भारत से विदा हो गया। यही भारत मे बुद्ध धर्म का अतिसूक्ष्म इतिहास है। इतना सदैव रहा कि घर मे कोई पुरुष हिन्दू रहा, कोई बौद्ध, यह न था कि जैसे मुसलमान, ईसाई आदि होने से आजकल लोग अपने वंश से बिलकुल पृथक् हो

जाते है, वह दशा किसी के बौद्ध होने से होती। जैसे आजकल कोई आर्यसमाजी होने से बिरादरी से नही छूटता, वैसी ही दशा बौद्ध और जैनमतों की रही, किन्तु आजकल जैन लोग प्रायः पृथक हैं, तथापि है हिन्दू ही और उनका वैष्णवो से वैवाहिक संम्बन्ध भी रहता है।

पौराणिक एवं स्मार्तकाल।

हमारे यहां पुराण, उपपुराण तथा मुख्य स्मृतियां सब अट्ठारह अट्ठारह है। इन सबके नाम हमने अपने सुमनोञ्जलि तथा भारतीय इतिहास मे दे दिये हैं। पुराणो मे विष्णु, हरिवंश, श्रीभागवत, मत्स्य, वायु, स्कन्द और अग्नि मुख्य हैं। स्मृतियो मे मनु, याज्ञवल्क्य, पाराशर और शंख लिखित प्रधान है। महाभारत पुराण न होकर इतिहास है, किन्तु है पौराणिक साहित्य का मुकुट-मणि। इसका गीता विभाग हमारे सारे पौराणिक साहित्य का प्राण है। पुराणो के समय के विषय मे पडितो मे बहुत मतभेद है। इस पर हमने अपने भारतीय इतिहास में कई ज्ञातव्य बाते लिख दी हैं। विचार होता है कि सातवी शताब्दी बी० सी० के लगभग तीन मुख्य ग्रन्थ बने, अर्थात मनुस्मृति, वाल्मीकि रामायण और जय, जिसका वर्तमान रूप भारत होकर महाभारत हो गया है। मनुस्मृति और जय मे पीछे से प्रक्षिप्त भाग इस अधिकता से मिल गए कि इन दोनो ग्रन्थो के प्राचीन और नवीन भाग अभिन्न होकर पूरे ग्रन्थ की प्राचीन साक्षी को नष्ट प्राय कर चुके है। रामायण मे भी बाल और उत्तर कांड प्रक्षिप्त है, जो तीसरी शताब्दी बी० सी० के माने जाते है, तथा अयोध्या एवं लंकाकांड के दो चार श्लोक प्रक्षिप्त समझे जाते है। शेष रामायण अपने यथावत प्राचीन रूप में उपस्थित होने के कारण एक बड़ा ही पूज्य और शिक्षाप्रद ग्रंथ है, क्योकि इसमें उस काल के असली विचार जैसे के तैसे वर्तमान होने से यह

हमें उस काल का सच्चा चित्र दिखलाता है। रामचन्द्र का ही कथन करते हुए भी यह उन्हे अवतार नही कहता, जिससे प्रकट है कि अवतार सम्बन्धी विचार हमारे यहां पीछे से उठे। प्रतिमा पूजन का भी रामायण मे कथन नहीं है।

पुराणो के आधार स्वरूप प्राकृत पुराण थे, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है। हमारे पुराण साहित्यिक प्रौढता मे प्राकृत पुराणो तथा वैदिक साहित्य से बहुत बढकर हैं, यद्यपि ऐतिहासिक महत्व मे इनका नम्बर नीचे पड़ जाता है, क्योकि इनमे अत्युक्ति बहुत है, और प्रक्षित भाग भी बहुतायत से प्रस्तुत है। इनका निर्माण बहुत करके गौतमबुद्ध के पीछे से प्रारम्भ होकर गुप्तकाल तक चलता आया और क्षेपक सोलहवी शताब्दी तक इनमे जुड़ते गए। पुराणों में हिन्दू धर्म का विकसित रूप देख पड़ता है। पाश्चात्य पडितों का मत है कि पुराणों की रचना बहुत करके २५० विक्रमाब्द से प्रारम्भ हुई। पुराणो में ग्रीक, पार्थियन, सीदियन, तुर्क, गुर्जर, हूण, कुशन, शक आदि का पृथक् कथन न होकर सब भारतीय एक माने गए है। महाभारत काल तक भारत मे प्रतिमा पूजन का आर्यों मे कोई भी उदाहरण नहीं मिलता। कम से कम इसका चलन उसकाल बहुत कम था। प्रकृति पूजन से मानस प्रतिमा पूजन निकला। सूत्रकाल मे प्रतिमा पूजन का कुछ कुछ चलन समाज के अधोभाग मे हुआ। प्रतिमा की मुख्यता बौद्धकाल से है, जैसा कि आगे कुछ विस्तार से कहा जावेगा, क्योंकि हमारे हिन्दी साहित्य से इसका घनिष्ठ सम्बन्ध है। बौद्धकाल मे भी प्राकृत पुराणो का पाठ समाज मे आदर से होता था। वीर पूजन का प्रचार हमारे यहां पौराणिक समय से विशेष हुआ। अवतार सम्बन्धी विचारो ने इस सिद्धात को सबल किया। पितृ पूजन से भी इसको पुष्टि मिली। पितृ पूजन का सिद्धान्त भारत, चीन, जापान आदि सभी पूर्वी देशों मे प्रचलित है। बाहर की जातियों

का जो भारत मे इस काल बहुत आगमन हुआ, इससे हमारे धर्म मे परधर्माविद्वेष, संग्राहकत्व, अंगीकरण, और तद्भव विकास के सिद्धान्त बहुत प्रचलित हुये। हमलोग आर्य, अनार्य, तूरानियन, सीदियन, शक, हूण, गुर्जर, प्रमार आदि जातियां को मिलाकर एक जाति बनाने मे इन्ही सिद्धान्तो के कारण समर्थ हुए। हमारे यहां वीर पूजन के अतिरिक्त कृतज्ञता तथा प्रमाण, पुरातनत्व, एवं आचारो की महिमा बहुत हुई।

पौराणिक काल मे ऐतिहासिक उलट फेर बहुत कुछ हुआ, जिसका दिग्दर्शन बौद्ध वर्णन मे परम सूक्ष्मता पूर्वक हुआ है। यद्यपि यह विवरण बहुत रोचक है, तथापि अपने विषय से असम्बद्ध होने के कारण यहा लिखा नही जाता। इसका विवरण हमने भारतवर्षीय इतिहास मे कुछ विस्तार से किया है। यहा पर केवल सामाजिक तथा धार्मिक विषयो पर कुछ सूक्ष्मता के साथ तथा, ईश्वर, प्रतिमा एवं धार्मिक विस्तार पर कुछ फैलाव के साथ विवरण आवश्यक हैं, क्योकि इन्ही अगो पर हिन्दी का प्रभाव विशेष पड़ा है। हमारे यहां धर्म पर विचार तो बहुत कुछ हुआ, किन्तु उनमे स्वातन्त्र्य इतना कुछ रहा कि धार्मिक दृढ़ता की आवश्यकता न समझी गई। मुसलमानागमन के पूर्व यहां जितनी विजयिनी धाराये आर्यों के पीछे आई, वे केवल राजनीतिक महत्ता प्राप्ति के लिये, न कि धार्मिक विचार फैलाने को। अतएव शक, हूण, गुर्जर, सिदियन आदि ज्ञातियां यहां आकर न्यूनाधिक विजयिनी होने पर भी हमारी बढ़ी हुई धार्मिक सभ्यता मे मिल गई, और कोई धार्म्मिक या सामाजिक बन्धन बांधने की आवश्यकता न हुई, तथा हमारे मत स्थापन, परिशोधन, परिवर्धन आदि बहु संख्या के अनुसार ही चलते रहे। इसी कारण से जो भारतवासी चीन, लका, स्याम आदि को गये,-वे भी भारतीयता छोडकर समय पर चीनी आदि हो गये। जब मुसलमान यहां न केवल राजनीतिक अधिकारार्थ, वरन् स्वमत प्रचारार्थ भी आये,

और बलपूर्वक ऐसा करने मे प्रवृत्त हुए, तब धार्मिक झगडे मचे। यहां तक सारे भारतवर्ष के विषय मे कथन करके अब उचित समझ पड़ता है कि विविध प्रांतो मे हिन्दू सभ्यता और धर्म की पौराणिक समय मे जो दशा रही, उसका भी सूक्ष्मतया दिग्दर्शन करके आगे बढ़ा जावे।

पौराणिक कालीन हिन्दू सभ्यता की प्रान्तीय दशा।

हम सबसे प्रथम ठेठ दक्षिण से चलते है। कृष्णा और तुंगभद्रा से भी दक्षिणवाले देश को हम ठेठ दक्षिण कहते हैं। इसमे तामिल, तेलेगू, केरल, चोल आदि प्रान्तो की प्रधानता है। जैन, बौद्ध और हिन्दू धर्म प्रचारको के प्रयत्नो से धीरे धीरे इस प्रान्त से प्राचीन विकराल धर्म लुप्त हो गया, और हिन्दूमत की स्थापना हुई। आजकल तामिल देश के बराबर चातुर्वर्ण की कडाई भारत भर मे कही नहीं हैं। यह निश्चय करना कठिन है कि, जैन, बौद्ध और हिन्दू-मतो मे से सबसे पहले यहां कौन पहुचा? पाश्चात्य विद्वानो का मत है कि अशोक के पौत्र सम्प्रति ने जैन उपदेशकों को भेजकर यहां धर्म प्रचार किया। कहते हैं कि उसकाल यहां जैनमत का अच्छा प्रभाव पड़ा। इससे भी पूर्व स्वयं चन्द्रगुप्त ने जैन होकर मैसूर में निवास किया था। उधर महाराजा अशोक के समय उनके भाई या पुत्र महेन्द्र तथा अन्य उपदेशको ने तामिल देश मे बौद्धमत फैलाया। तामिल के आदिम बौद्धमत ने चातुर्वर्ण को न माना, परन्तु पीछे से ब्राह्मणो के प्रभाव विस्तार से बौद्ध लोग भी इस को मानने लगे। मेगास्थेनीज के समय तामिल में शेष भारत की भांति दासप्रथा न थी, तथा साहित्य का अच्छा प्रचार था। मोती, काली मिर्च और मूंगे का व्यापार यहां से विदेशो को अच्छा होता था। बलशाली यवन लोग तामिल राजाओ के शरीर रक्षक थे। ये मूक म्लेच्छ कहे

गए थे। ह्यूयन्त्सांग के लेखो से प्रकट है कि पांड्य देश के मलकूट मे उस काल बौद्धमत लुप्त प्राय था, अथच प्राचीन मठ उजाड़ पड़े थे। यह यात्री भारत मे हर्षवर्धन के समय मे आया था। इसका यह भी कथन है कि हिन्दू देवताओ के मदिर सैकड़ो थे और दिगंबर जैनो के हज़ारो। यहां के निवासी विद्यारसिक न थे, और व्यापार ही मे लगे थे, विशेषतया मुक्ता के व्यापार मे। करिकाल का समय सन् ५५० था। उस काल व्यापार की भारी उन्नति हुई। हवा से चलनेवाले जहाज़ो द्वारा घोड़े बाहर से लाए जाते थे। मेरु पर्वत से हीरे एवं सोना आता था, कुर्ग से चंदन, दक्षिणी समुद्र से मोती, गांगेय प्रातो से धन, लंका से धान्य और बर्मा से भोज्य पदार्थ। उत्तरी लोगो के वहां बसने से दोनो सभ्यताओ के मेल का लाभ भी चोल देश को प्राप्त हुआ। पल्लव शासक महेन्द्र वर्मन हर्ष का समकालीन था। वह पहले शैवमत के प्रतिकूल था, किन्तु पीछे से स्वयं शैव हो गया। पल्लव नरेश पहले विशेषतया बौद्ध थे, और फिर वैष्णव होकर अन्त मे शैव हो गये। महेन्द्र वर्मन के पौत्र महेन्द्र वर्मन दूसरे ने ब्राह्मणो तथा मन्दिरों के हितार्थ पुण्यकार्य किये। ह्यूयन्त्सांग ने लिखा है कि कांची के लोग बड़े वीर और धर्म एवं सत्यनिष्ठ थे। तत्कालीन शैव सन्त अप्पर ने भी लिखा है कि काची निवासियो की विद्या असीम थी। पुलगिडि का कथन है कि यहां के लोग कोई साम्राज्य तक पाने को एक भी मिथ्या शब्द मुख से न निकालेंगे। पल्लवो का राजत्वकाल सन् ३३५ के लगभग से ६५० के इधर उधर तक चलता है। इनके समय मे वहां हिन्दूधर्म की उन्नति हुई, देवमन्दिर तथा साधारण गृह निर्माण कार्य अच्छे हुये, तथा आर्यों के उधर बहु संख्या मे बसने से देश को आर्यसभ्यता से लाभ पहुचा।

केरल देश पर मुसलमानों का प्रभाव बहुत कम पड़ा है, विशेषतया ट्रावकोर (दक्षिणी केरल) पर। इसलिये पुरानी से पुरानी

हिन्दू रीतिया यहां अब भी प्रचलित है। ऐतिहासिको का मत है कि यह देश एक प्रकार का अजायब घर है, जहा प्राचीनतम भारतीय लोगो, मतो, धर्मो, रीतियो, और चलनो के सजीव उदाहरण नवीन उदाहरणो के साथ साथ अद्यावधि पाये जाते है। नवीनता और प्राचीनता का मिलान करके जैसा सुन्दर अध्ययन यहां हो सकता है, वैसा भारत के किसी अन्य प्रान्त मे अप्राप्य है। चोल नरेश कोच्चण्णान का समय पांचवी शताब्दी समझा जाता है। इनकी गणना दक्षिण के ६३ शैवभक्तो मे होती है। कहते है कि आपने अपने देश में ७० शैव तथा वैष्णव मदिर बनवाये। इस कथन से उस प्रान्त मे इन मतो का तत्कालीन प्रचार प्रकट होता है। पीछे से चोल राज्य सन् ८४६ से १०७० तक चला। राजेन्द्र चोल का समय १०१३ से १०४४ तक है। यह बडा प्रतापी राजा था, जिसने बर्मा तथा उत्तरी भारत जीता। उसकाल भारतीय ऐक्य का विचार ऐसा मद था कि ये दाक्षिणात्य नरेश उत्तरी भारत से अपने को नितान्त असम्बद्ध समझते थे। राजेन्द्र चोल के पास प्रायः छः लाख सेना थी, और इसका समय महमूद गजनवी के काल से बहुत कुछ मिलता है। यदि यह चाहता तो एक क्षण मे महमूद को गर्दबर्द कर देता, किन्तु जो देश महमूद की लूट से बचे, उन्हे इसने लूटा, सहायता की कौन कहे। चोल-चालुक्य राज्यवंश का शासन काल १०७० से १२४३ तक बैठता है। विष्णु वर्द्धन ११०४ से ११४१ तक मैसूर का शासक रहा। इसका कथन यथा समय आवेगा।

दक्षिण देश मे भी धार्मिक वृद्धि का इतिहास ज्ञानप्रद है। वहां आदिम चालुक्यो का राजत्वकाल सन् ५२० से ७४८ तक चलता है। इनके समय मे प्राचीन वैदिकमत के साथ देश मे पौराणिक तथा जैनमतो की भी प्रधानता हुई। दूसरे पुलकेशी ने जैन कवि रविकीर्त्ति का मान किया, और दूसरे विक्रमादित्य के समय विजय पंडित नामक जैन भारी वादकर्ता थे। उस काल दक्षिण महाराष्ट्र

देश मे जैनमत की गरिमा थी किन्तु पौराणिक देवताओ के मन्दिर सभी कही थे।

मगलेश ने एक गुफा काटकर वैष्णव मदिर बनवाया था। इसी प्रकार अन्य देवताओ के भी मदिर बने थे। ब्राह्मणो को दान बहुतायत से दिया जाता था। ह्यूयन्त्साग ने लिखा है कि इस काल दक्षिण मे बौद्ध धर्म का भी प्रचार था, किन्तु यह गिराव की दशा मे समझ पड़ता है। चालुक्य नरेश किसी मत के प्रतिकूल न थे, किन्तु प्रधानतया ये लोग पौराणिक हिन्दू थे। दक्षिण मे राष्ट्रकूटो का शासन काल सन् ७४८ से ९७३ तक रहा, और दूसरे चालुक्यो का ९७३ से ११५७ तक। राष्ट्रकूट नरेशों मे बहुत से विद्या-रसिक थे और कवियो को आश्रय भी देते थे। हलायुध कवि ने कवि रहस्य मे लिखा है कि उसने कृष्णराज के आश्रय मे ग्रन्थ रचा। इलोरा मे इन लोगो ने बहुत से गुफा मदिर निर्माण कराये, अर्थात गुफाओ को काटकर उनके भीतर एक एक पत्थर के सुन्दर मन्दिर बनवाये। किसी समय इलोरा मे इसी प्रकार के बहुत से बौद्ध मन्दिर बने थे। प्रथम अमोघ वर्ष के समय तक कुछ बौद्ध शेष थे, यद्यपि इस मत का पतन हो गया था, और होता जाता था। इन राष्ट्रकूट नरेशो ने भी बौद्ध मन्दिरो से भी अच्छे शैव तथा वैष्णव मन्दिर गुफाये काटकर बनवाये। इनके कारण इलोरा की भारी ख्याति है। चालुक्यो के समय जैन मत उन्नति पर था। यह उन्नति राष्ट्रकूटो के समय भी स्थापित रही। कुछ छोटे छोटे राजे और वैश्य लोग दिगबर जैन थे। फिर भी इन शासको के समय पौराणिक हिन्दूमत ने कुल मिलाकर अच्छी उन्नति की तथा पौराणिक देवताओ का पूजन भली भाँति स्थापित हुआ।

चालुक्य नरेश विक्रमादित्य एक भारी सम्राट् थे। इनके समय (१०७८–११२७) धार्मिक स्वतंत्रता एव सहिष्णुता अच्छी थी। आपके पिता शैव थे। कुमारावस्था मे स्वयं इन्होने बल्लिगावे मे एक

जिनालय बनवाया था। सन् १०६८ ई० मे आपने बौद्ध बिहार और आर्या तारादेवी के लाभार्थ दानपत्र लिखे थे। आपके एक मत्री भी बौद्ध थे। फिर भी आप स्वयं वैष्णव थे और विष्णु मन्दिरो का आपने सबसे बड़ा उपकार किया। चालुक्यो का समय ऊपर कहा जा चुका है। इनके पीछे कलचुरि राजवंश केवल २८ वर्ष सन् ११८४ तक शासक रहा। चालुक्यो तथा कलचुरियो के समय मे केवल दो बौद्ध मन्दिरो का बनना लिखा है। अनन्तर यह धर्म दक्षिण से लुप्त हो गया। इस काल जैनमत की भी वृद्धि नही हुई, और लिगायत सम्प्रदाय के प्रभाव से जैनधर्म भी दक्षिण मे मृतकप्राय हो गया। राष्ट्रकूटो के वर्णन मे कहा जा चुका है कि जैन मत का प्राधान्य केवल व्यापारियो मे था। इस काल इन लोगो ने जैनमत को छोड़कर लिगायत विचारो को मान लिया, जिससे जैनमत की लोक प्रियता जाती रही। कहते है कि बहुतेरे जैन मन्दिरो से जैन मूर्त्तिया फेक दी गईं, और उनके स्थानो पर हिन्दू प्रतिमाये प्रतिष्ठित हुई। हिन्दू देवताओ का पूजन इस काल बहुत बढ़ा, और हिन्दू धर्मशास्त्र पर बहुत से निबन्ध और टीकाये बनीं। मालवा के प्रसिद्ध प्रमार नरेश भोजदेव ने भी एक ऐसा ग्रन्थ रचा। याज्ञवल्क्य स्मृति पर विज्ञानेश्वर ने मिताक्षरा नाम्नी टीका रची, और दक्षिण कोकण नरेश अपरार्क ने एक निबन्ध। आप शिलाहार वंश के राजा थे। आपका समय ११३७ अथवा ११८७ था। इस काल के पीछे पंडितवर हेमाद्रि और सायण ने भी ऐसे ही ग्रंथ रचे। कलचुरियो के पीछे यादवो का राज्य दक्षिण मे ११६२ से १२६४ तक चलता है। यद्यपि यह समय पीछे के वर्णन से सम्बद्ध है, तथापि एक स्थान पर कथन हो जाने से विषय की पूर्णता अच्छी बैठ जाती है। इसी से इसका भी सूक्ष्म कथन यहीं किया जाता है। भास्कराचार्य के पुत्र लक्ष्मीधर, मन्त्री हेमाद्रि, हेमाद्रि के सभापंडित वोपदेव तथा भाई माधव इस काल के प्रधान पंडित थे। इस समय

महाराष्ट्र देश में वैष्णवता की अच्छी वृद्धि हुई। ११०४ से ११४२ तक मैसूर मे राज्य करनेवाले विट्टिदेव उपनाम विष्णु वर्द्धन के प्रयत्नो से भी उस प्रांत मे वैष्णवता खूब जगमगाई। आप पहले जैन थे किन्तु स्वामी रामानुजाचार्य के प्रयत्नो से वैष्णव हुये। इन्ही स्वामी जी की विद्वत्ता तथा राजा के प्रभाव से देश मे वैष्णवता की वृद्धि हुई, और जैनमत क्षीण हो गया।

अब हम उत्तर भारत मे आते है। ज़िला गोंडावाले सहतमहत के शिलालेख से प्रकट है कि सन् ११६४ या इससे कुछ पीछे भी यहां बौद्धमत का कुछ अवशिष्टांश था। उधर फ़ाहियेन तथा ह्यू यन्त्सांग कहते हैं कि उस काल भी अवध मे बौद्ध लोग बहुत कम थे। ये दोनो चीनी यात्री थे जिनमें पहला भारत मे गुप्त साम्राज्य के समय आया था और दूसरा हर्षवर्द्धन के समय मे। हर्षवर्द्धन के पीछे युक्त प्रान्त में चालीस पचास वर्ष अराजकता रही, और तब उनके सम्बन्धी भांडी का वंशधर यशोवर्मन् यहां का प्रभावशाली शासक हुआ। तो भी सन् ७४० के लगभग यह काश्मीर नरेश द्वारा राज्यच्युत हुआ। प्रसिद्ध नाटककार भवभूति यशोवर्मन के राजकवि थे। इनका प्रसिद्ध राम चरित्र नाटक उन दिनों के धार्मिक विचारो का अच्छा चित्र दिखलाता है। उस काल रामचन्द्र की महत्ता मान्य थी, क्योकि भवभूतिने उन्ही पर दो ग्रन्थ रचे। उधर गुप्त नरेशो के समय भी यहां वैष्णवता अच्छी थी, तथा एक विष्णु मूर्त्ति गुप्तकालीन विजयस्तम्भ पर सुशोभित की गई थी। प्राकृत कवि वाक्पतिराज भी इसी गुणग्राही के आश्रित थे। यशोवर्मन का वश जीतता हारता किसी प्रकार सन् ८४० तक कन्नौज का अधिकारी रहा, और तब सन् १०८० तक यहां परिहारों का शासनकाल हुआ। इनमे मिहिर भोज प्राय: सम्राट ही था। इसने आदि वराह की उपाधि धारण की, जिससे देश में वैष्णवता का प्रभाव प्रकट होता है। देवपाल का राजत्वकाल ९४० से ९५५ तक चलता है। इसी समय

बुंदेलखंड के शासक चन्देल नरेश यशोवर्मन ने कन्नौज पति को पराजय देकर एक सुन्दर विष्णु मूर्त्ति यहां से छीनकर खजराहो मे स्थापित की, जो अब तक एक परम सुंदर पाषाण मन्दिर मे प्रतिष्ठित है। कन्नौज पर गहरवारो का राज्य १०८० से ११६४ तक रहा। इस अन्तिम सन् मे यहां मुसलमानो का राज हुआ। गहरवारो के समय तक युक्तप्रान्त मे पौराणिक हिन्दूधर्म अक्षुण्ण रूप से प्रतिष्ठित रहा। अन्तिम गहरवार नरेश जयचन्द के समय इस देश मे कुलीनता का प्रचार हुआ, जैसे प्राय' इसी काल वल्लाल सेन के समय बगाल मे हुआ था। मन्दिर यहा शिव तथा विष्णु दोनों के बनते रहे, किन्तु इन दोनो मतो मे कोई झगडा झमेला नही रहा। युक्तप्रांत मे धार्मिक स्थान बहुत से है, जिनमे काशी, प्रयाग, अयोध्या, मथुरा, माया, शूकर-क्षेत्र, नैमिष आदि की प्रधानता है। इनमे से काशी मे शैव सिद्धान्तो की मुख्यता है, और शेष स्थानो मे वैष्णवो की। कुल मिलाकर युक्तप्रात वैष्णव देश है।

बंग देश का कथन कवि कुलगुरु कालिदास ने भी किया है। आपके समय यहा नौका समूह था। हर्षवर्द्धन के पीछे यहां पालों तथा सेनो के राज्य प्रधान रहे। पाल बिहार तथा पश्चिमी बंगाल मे शासक रहे, और सेन पूर्वी बंगाल मे। पालो का राजत्वकाल ७५० से ११६७ तक चलता है, और सेनो का १०५४ से ११६६ तक। इसी साल यहां मुसलमान अधिकृत हुये। पाल लोग श्रद्धालु बौद्ध थे तथा सेन पूरे हिन्दू। पालो ने कभो हिन्दुओ पर कोई अत्याचार नही किये। गेरहवी शताब्दी मे बगाली बौद्धमत को तान्त्रिक रूप मिला। उधर बल्लाल सेन भी तान्त्रिक हिन्दू थे। अतएव प्रकट है कि पूरे बंगाल के दोनो मतो पर तन्त्र का जोर था। बल्लाल सेन ने देश के भद्र लोगो मे कुलीनता का भी प्रचार किया। यहा भद्र लोग ब्राह्मण, वैद्य, और कायस्थ जातियो के है। इन तीनों में कुलीनता का प्रचार हुआ। बंगाल मे पालो ही के

समय मे मगोलो का बहु सख्या मे आसाम होकर आगमन हुआ। ये लोग भी हिन्दुओ मे मिल गये, जिससे बगाली हिन्दुओ मे मगोल रुधिर का मिश्रण हुआ। आसाम मे मंगोल रुधिर का प्राधान्य था ही। बल्लाल सेन ने (राज्यकाल ११०८ से ११११ तक) बहुत से ब्राह्मणो को धर्म प्रचारार्थ, मगध, भूटान, चिटगाव, आराकान, उडीसा और नैपाल भेजा। बल्लाल सेन के उत्तराधिकारी लक्ष्मण सेन (११११ से ११६६) के राज्य में प्रसिद्ध गीतगोविद्कार जयदेव वर्तमान थे। जब सन ११६७ ई० मे मुसलमानो ने एकाएक धावा करके बिहार पर अधिकार जमाया, तब सिर घुटे ब्राह्मणो अर्थात् बौद्ध भिक्षुओ का ऐसा प्रचड बध हुआ कि सैकड़ो विद्वानो मे से उस स्थान के ग्रंथो को पढकर विजेता को समझानेवाला एक भी मनुष्य न मिला, यद्यपि वह एक बिहार अर्थात् कालेज था। इसी प्रकार से और बहुतेरे अत्याचार हुए, जिससे बेचारा बौद्ध धर्म अपने अन्तिम भारतीय केन्द्र बिहार से भी लुप्तप्राय हो गया। जो बौद्ध भिक्षु मुसलमानी तलवार से बचे, वे तिब्बत, नैपाल और दक्षिणी भारत को भाग गये। तिब्बत मे जाकर इन विद्वानो ने बहुत से संस्कृत ग्रन्थो का तिब्बती भाषा में अनुवाद किया, जिससे उस भाषा की बहुत बड़ी उन्नति हुई। ग्रन्थ छापने की कला तिब्बत में सातवीं शताब्दी से ही चीन से जा चुकी थी। इसके कारण भारतीय पंडितों और तिब्बती लामाओ के ग्रंथ भली भाति सुरक्षित रहे। तिब्बत मे सन् ७४३ से ७८९ तक थिस्नांग डेस्टन का राजत्वकाल रहा था। इसने समझाने बुझाने अथच बलप्रयोग द्वारा प्राचीन बोन को नष्टप्राय करके तिब्बत मे बौद्धमत फैलाया था, तथा भारत से शांति रक्षित और पद्म सम्भव नामक पंडितो को बोलाकर बौद्धमत को वहां और भी उन्नत किया था। इन्ही लोगों ने राज्य को धर्म से मिलाकर तिब्बत में लामा प्रणाली चलाई जो अब तक प्रचलित है।

आसाम मे धार्मिक दृष्टि से तान्त्रिक मत की प्रधानता है। इसे साधारण जनसमूह टोना, टनमन, जादू आदि का देश कहते है। यहां गोहाटी के निकट कामाक्षा देवी का प्रसिद्ध मंदिर है, जिस मे शाक्त मत से पूजन होता है। बंगाली बौद्ध और हिन्दूमतो मे जो तान्त्रिक विचारो का प्राधान्य हुआ, उसका एक भारी कारण आसामी हिन्दूधर्म भी था। आसाम के लोग पहले हिन्दू न थे किन्तु इन्हे भी धीरे धीरे ब्राह्मणो ने हिन्दूमत की भारी सीमाओ के अन्तर्गत कर लिया। सन् ६४३ मे यहां बौद्धमत अशेष था। कहते है कि भारत मे तान्त्रिक विचार अथर्ववेद के कारण निकले, मूर्त्तिपूजा महायान से दृढ़ हुई, तथा अर्चन विधान सामवेद से चला। पूर्वी भारत मे बौद्धमत की सबसे अधिक प्रधानता रही, और तान्त्रिक विचारो का पूर्वी हिन्दूमत मे आज भी प्रभाव है। मध्यभारत मे ह्यूयन्त्सांग ने हिन्दूमत का विकास एव बौद्धो का ह्रास देखा। इसी समय के कुछ पहले से शक, कुशन, हूण, गुर्जर, मालव, अभीर, गोड, भील, सौर आदि जातिया हिन्दू होने लगी थी, और प्रायः दो तीन सै वर्षों के भीतर ये सब पूर्णतया हिन्दू हो गईं, अथच गुण कर्मानुसार इन्हें चातुर्वर्ण में उचित स्थान मिल गये। समय पर धार के पवारों, गवालियर एवं दिल्ली के तोमरो, नरवर के कछवाहों, बुंदेलखड के चन्देलो, बुन्देलो, धँधेरो आदि के कथन हिन्दूमत के समर्थन एवं भारी राज्य वर्द्धन मे आने लगे।

धार्मिक विचार से वायव्य सीमा प्रान्त बहुत गौरवपूर्ण है। बौद्धमत की महायान शाखा कुशन काल मे यही से निकली। जब चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के समय चीनी यात्री फ़ाहियेन यहां होकर निकला, तब भी यहां बौद्धमत की प्रधानता थी। उस काल गाधार में ही ५०० बौद्ध मठ थे। सन् ५१५ के लगभग मिहिर कुल हूण ने उद्यान और काशमीर स्ववश करके बौद्धों पर बड़े अत्याचार किये, जिससे उस महा मत की कुछ क्षीणता हुई। सन् ५२० में

चीनी यात्री सुंगयून गाधार पहुचा। इसने लिखा है कि उस काल गांधार का हूण राजा काबुल के बौद्ध नरेश से युद्ध करता था। ह्यूयन्त्सांग सन् ६३० मे गांधार पहुचा। इस काल गाधार काबुल के अधीन था। काबुल नरेश के बौद्ध होने पर भी यह धर्म गाधार मे बहुत गिर रहा था। चीनी यात्री ऊकौंग ६५७ से ६६४ पर्यन्त गांधार मे रहा। उसने यहां के राजाओ को बौद्धमत प्रचारक पाया, तथा ३०० बौद्ध मठ पाये। महाराजा हर्ष के समय पर्यन्त वायव्य सीमा प्रान्त की जनता पूर्णतया भारतीय थी और यहां के तुरकी शासक भी बौद्ध थे। इसके पीछे हिन्दू शाही नरेशो के समय यहा हिन्दूपन और भी बढा। सन् ८७० मे अरबो द्वारा काबुल के तुरकी शाहिया कुशन नरेशो का राज्य नष्ट होने से सन् ६०२ मे काश्मीर की साहायता से काबुल मे हिन्दू शाहिया नरेशो का राज्यारम्भ हुआ। यह नरेश ब्राह्मण थे। इन्हे जीत कर सफ्फारियो ने यहां शासन जमाया जिनके पीछे सामानियो का राज्य हुआ। ग़ज़नी पर महमूद का राज्य हम ६६८ मे देखते है।

उपरोक्त वर्णन से प्रकट है कि जब वैदिक मत लोगो को संतुष्ट न रख सका और देश मे अनीश्वरवादी अथच वेद विरोधी दर्शनो एवं मतों का प्रचार होने लगा, तब ब्राह्मणो ने स्मार्त नियम तथा पौराणिक धर्म का प्रचार करके अधिक लोकप्रिय सभ्यता एव धर्म का चलन बढ़ाया। इस सभ्यता एवं धर्म ने प्राचीन धर्म की निन्दा न करके समयानुकूल विचारो के अनुसार प्रतिमा, ईश्वर, अवतार, तीर्थ आदि के सहारे पौराणिक धर्म की स्थापना की। इस नवीन मत ने क्रमशः उन्नति करते और प्रचार पाते हुए मुसलमानागमन के पूर्व भारतवर्ष के प्रायः समग्र निवासियो को हिन्दू बना लिया और इतर सभी धर्मों को पूर्णरूपेण दबा दिया। पौराणिक मत भारत की अभूतपूर्व दशा का फल था। उस काल यहां सीदियन कुशान, तुर्क, गुर्जर, प्रमार, शक, हूण आदि कुछ राज्यार्थ और कुछ

बसने भर को आकर बस गये। देश मे भी बौद्ध और जैन नामक मतवादी प्रस्तुत थे। इन सभो के तथा प्राचीन हिन्दुओ के मेल से पौराणिक मत बना। इसने वैदिक, ब्राह्मणिक, सौत्र आदि विचारों की निन्दा न करके उनमे से अधिकाश को चुपके से छोड़ दिया, तथा एक नवीन मत चलाया जिसका अधिकाश प्राचीन हिन्दुओ के विचारो पर अवलम्बित था, किन्तु जिसमे बहुत से विचार बौद्धो, जैनो तथा नवागन्तुको के भी जुड़े हुए थे। समाज ने इसे सुख से मान लिया, क्योकि यह बहुमत से ही बना था, किन्तु बहुतेरे पण्डित वाद्रत रहे जिन्हे स्वामी शङ्कराचार्य्य तथा रामानुजाचार्य्य ने अपने अकाट्य तर्कवाद से पराजित किया। इस प्रकार पौराणिक मत सारे भारत मे पूर्णतया स्थापित हुआ। इसके मुख्य उपास्य देव प्रतिमा, तृमूर्त्ति, अवतार, शिव और काली थी। इन सब के विषय में हिन्दी साहित्य ने बहुत कुछ कहा है। इसलिये इनका कुछ कथन करके हम अपने रङ्गमञ्च का यह कुछ कुछ विस्तृत वर्णन समाप्त करेगे और साहित्य पर आवेगे। इसके पहले ही से अवगत कर लेने से समय पर जब साहित्यिक प्रभाव के कथन होगे, तब बिना अधिक समझाये बुझाये कथित विषय हम लोगो को सुगमता पूर्वक ज्ञात हो जावेगे।

प्रतिमा।

यह पौराणिक समय का धार्मिक विषय हम प्रतिमा से उठाते है। धीरे धीरे अन्य विषयों को कहकर हम हिन्दी के लिये रङ्गमञ्च पर अच्छा प्रकाश डालकर आगे चलेगे।

बहुत से लोगो का मत है कि मूर्त्ति को बनाना एवं उसकी पूजा करनी प्राचीन सभ्य देशो मे नही था, किन्तु वस्तुतः यह बात नही है। मिश्र, शैल्डिया, एसीरिया, बैबीलोनिया, चीन और यूनान देशों

की सभ्यता तथा उनकी धार्मिक प्रथा बहुत प्राचीन कालकी मानी जाती है। इनकी धार्मिक प्रथाओ के अन्तर्गत मूर्त्तियों की उपासना थी।

मिश्रदेश (१) वासी सूर्य देवता की पूजा रा (Ra) नाम्नी मूर्त्ति के द्वारा करते थे। शैडिल्या (२) वासी मिश्रदेश की अपेक्षा विशेष मूर्त्ति-पूजक थे। उस देश मे मन्दिर थे। ये लोग पञ्चतत्वों तथा तारागणो को देवता मानते और अपने मन्दिरो मे उनकी उपासना किया करते।

एसीरिया (३) देश भी मूर्त्तिपूजा के लिये विख्यात था। इस देश मे ईसा से ६००० वर्ष पूर्व के शिला लेख मिले है। इनके द्वारा वहां मन्दिरों एवं मूर्त्तिपूजा की प्रथा का होना भली भांति प्रमाणित होता है। बैबीलोनिया की सभ्यता एसीरियावालों से भी प्राचीनतर है। मूर्तिपूजा वहां की भी धार्मिक परिस्थिति का मुख्य अङ्ग थी।

ईसाई धार्मिक ग्रन्थोमे उल्लिखित है कि ईसा से १५०० वर्ष पूर्व इश्तार (Ishtar) नामक देवता की मूर्त्ति मेसोपोटामिया से मिश्र देश मे बड़े उत्सव तथा समारोह से लाई गई थी।

यूनान देश के प्राचीन इतिहास से भली भांति ज्ञात होता है कि यूनानी लोग मूर्त्तियों की उपासना किया करते थे। उस देश की मूर्त्ति रचनावाली कला विख्यात है। वहां के पहिले अधिवासी मिसीनिअन्स (Mycenions) थे और इनका ईजियन (Ægean) सभ्यता से सम्बन्ध था। इसी सभ्यता के अन्तर्गत मूर्त्ति पूजा थी। तत्पश्चात् जब यूनान मे हेलेनिक (Hellenic) सभ्यता का प्रसार

(१) Dawn of Civilization · Egypt and Chaldea by Prof Mespers

(२) Hastings' Encyclopædia of Religion and Ethics

(३) Indian Images—The Brahmanic Iconography, part I, by Prof B. C Bhattacharya , Benares Hindu University.

हुआ तब भी वहा से मूर्त्ति पूजा का लोप नही हुआ, अथच मूर्त्ति रचनां की कला उत्तरोत्तर वृद्धिगत होती गई।

भारतवर्ष मे मूर्त्तिपूजा का प्रचार कब से हुआ अथवा यह कहिये कि यहां यह प्रथा कितनी प्राचीन है, इस प्रश्न के निर्णय मे बड़ा मतभेद है। तथापि इस देश के प्राचीन ऐतिहासिक एवं धार्मिक ग्रन्थो के द्वारा इस विषय का अवश्य ही कुछ पता लगता है। पुरातत्व वेत्ताओकृत खोज द्वारा भी इस प्रथा के काल निर्णय मे बहुत कुछ सहायता मिलती है।

अनेक महाशयो का कथन है कि इस देश मे मूर्त्तिपूजा का सार्वजनिक प्रसार भगवान गौतमबुद्ध के पश्चात् हुआ और इस प्रथा के गौरव का कारण बुद्ध धर्मावलम्बियो द्वारा भगवान बुद्धदेव की मूर्त्तियो का पूजन था। बौद्धकाल मे मूर्त्तियो की रचना पराकाष्ठा को पहुची, यहांतक कि बहुत सी बौद्धकाल की प्राचीन मूर्त्तियां शिल्पकला की दृष्टि से जगतभर मे आदर्श रूप मानी जाती हैं। तथापि मूर्त्तियो के वर्गीकरण से ही यह बात भी सिद्ध होती है कि मूर्त्तिरचना एव मूर्त्तिपूजा का समय बौद्ध काल से बहुत पहले का है।

हमारे देश मे प्राचीन मूर्त्तियों का बाहुल्य विख्यात ही है। इन मूर्त्तियो का वर्गीकरण सुलभ कार्य नही, तथापि शिल्पकला १ वेत्ताओ ने इनका कला और धर्म की दृष्टियो से वर्गीकरण किया है।

ये मूर्त्तियां गांधार, मागध, नैपालीय, तिब्बतीय और द्राविड़ शिल्पकला के नामो से विख्यात हैं। तिब्बतीय और द्राविड़ मूर्त्तियो मे बहुत साम्य है। इसी तरह माथुर शिल्पकला मागध से मिलती जुलती है। यह शिल्पकला की दृष्टि से किया हुआ वर्गीकरण किसी विशेष धार्मिक प्रथा का बोध कराने मे असमर्थ है, सो मूर्त्तियो का धार्मिक दृष्टि से भी वर्गीकरण हुआ है। ये धार्मिक मूर्त्तियां तीन

(१) भट्टाचार्य महाशयका छ'.टीका ग्रन्थ।

श्रेणियो में विभक्त है, जो क्रमशः हिन्दू, बौद्ध और जैन धर्मो से सम्बन्ध रखती है। इसके अतिरिक्त और बहुत सी मूर्त्तियां है, जो प्रत्येक धर्म के तांत्रिक अथवा पौराणिक काल का बोध कराती है।

प्रत्येक प्राचीन मूर्त्ति (हिन्दू धर्म की) धार्मिक ग्रन्थो मे दिये हुये वर्णनो के आधार ही पर निर्मित हुई है। हिन्दूधर्म (१) की मूर्त्तियां ध्यान तथा साधन सम्बन्धी दिये हुये आदेशो के अनुसार रची गई है, और वे वैदिक काल मे प्रचलित मूर्त्तिपूजा विधान का दिग्दर्शन कराती हैं। उदाहरणार्थ श्री (लक्ष्मीजी) की मूर्त्ति बौद्धकाल ही मे नही, वरन्, उसके पहिले भी प्रचलित थी, इसका उल्लेख शतपथ ब्राह्मण (Chapter 11, page 3) मे मिलता है। चन्द्र, सूर्य तथा भूमि माता इत्यादि देवी देवताओ के विषय मे तैत्तिरीय उपनिषत् (1, 40) मे उल्लेख है। इन्द्र, अग्नि, सोम और वरुण देवताओ का पूजित होना वैदिक काल से ही सम्वन्ध रखता है।

श्री के अतिरिक्त हिन्दू धार्मिक मूर्त्तियो का बाहुल्य पौराणिक काल मे पाया जाता है। पौराणिक समय की मूर्त्तियो मे से विष्णु की मूर्त्ति विशेषतया उल्लेखनीय है। बेसनगर (२) (Besnagor) के गरुड़स्तम्भ शिला लेख से विष्णु अथवा वासुदेव की मूर्त्ति के पूजन का बोध होता है। दक्षिणी हिन्दुस्तान की हिन्दू शिल्पकला से शिवलिंग पूजा ज्ञात होती है। गूदी मालम (Gudımollam) से शिवलिंग की प्राचीन मूर्त्ति प्राप्त हुई है। इन खोजो से यह बात सिद्ध होती है कि कम से कम विष्णु तथा शिवलिंग पूजा ईसा से २०० वर्ष पूर्व प्रचलित थी। पौराणिक काल मे मूर्त्ति पूजा की वृद्धि हुई।

---

(१) Buddhist India by T W Rhys Davids

(२) Elements of Hindu Iconography by A Gopinath Rao, Esqr.

हिन्दू (१) धर्म मे मूर्त्ति से अभिप्राय प्रतिमा का है। प्रतिमा का अर्थ तुल्यता, साम्य अथवा रूप का होता है। अँगरेज़ी भाषा मे "idol" शब्द् का जो अर्थ है वह हमारी प्रतिमा अथवा मूर्त्ति शब्द् के अर्थ को प्रगट करने मे असमर्थ है। हमारी मूर्त्ति के सम्बोधित करने मे इस शब्द् का प्रयोग करना धार्मिक मूर्त्तियो का उपहास करना है। पाश्चात्य देशो की मूर्त्ति अथवा idol से अभिप्राय केवल किसी दैविक व्यक्ति के छाया चित्र का है। यही कारण है कि ईसाई धर्म मे मूर्त्तिपूजा की प्रथा न होते हुए भी सर्व साधारण अथवा अशिक्षित जन समुदाय को धार्मिक व्यक्तियो का दिग्दर्शन उनके छायाचित्रो (photographs) से कराया जाता था। हमारे यहां मूर्त्तिया केवल चित्रपट का उद्देश्यपूर्ण करने के लिये नहीं निर्माण की गई है, वरन् वे स्वय दैविक शक्ति से सञ्चारित मानी जाती है, या यो कहिये कि दैविक शक्ति की वाहन रूप (Vehicle) है। इन मूर्त्तियो का प्राण प्रतिष्ठा समारम्भ इस अभिप्राय का द्योतक है। मूर्त्ति की प्राचीनता हमारे धार्मिक साहित्य ग्रन्थ पातञ्जलि महाभाष्य, कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र, पाणिनिकृत सूत्र, महाभारत, मनु और अन्य स्मार्त ग्रन्थ, श्रौतसूत्र, ब्राह्मण और आरण्यक प्रकट करते हैं। प्रोफेसर मैक्समूलर अपने ग्रन्थ (Chips from a German workshop) में कथन करते हैं कि वैदिक काल मे मूर्त्ति पूजा का समावेश नहीं है। पतञ्जलि का काल ईसा से २०० वर्ष पूर्व माना जाता है। पाणिनि के सूत्रों का भाष्य पतञ्जलि ने किया है।

इस (२) भाष्य मे वासुदेव, शिव, स्कन्द, विष्णु और आदित्य शब्दों का प्रयोग किया गया है। ये शब्द इन देवताओं वाली मूर्त्तियों

(१) Indian Images by B C Bhattacharya, Esqr.

(२) जीविकार्थे चापण्ये (५३९९)॥ अपण्य इत्युच्यते तदत्र न सिद्धति शिवः स्कन्दः विशाख इति। The Vyakaran Mahabhashya of Patanjali

की आराधना को प्रकट करने के उपलक्ष्य मे ही लाये गये ,है। पाणिनि (१) का काल ईसा से ६०० वर्ष पहिले का कहा जाता है। इनके व्याकरण के कन् प्रत्यय का प्रयोग साम्य के अर्थ मे किया गया है। इसके अतिरिक्त पाणिनि के सूत्रो मे ऐसे उल्लेख है जिनसे उस काल मे मूर्त्तियो के अस्तित्व का बोध होता है। सद्विंश ब्राह्मण (२) (Sadvınsha Brahman) मे दैवी मूर्त्तियो के हावो का उल्लेख है।

सम्राट् कनिष्क की धार्मिक वृत्ति ऐसी भारी समवाय थी कि जहां जहां उनका राज्य फैलता जाता था वहा वहा के देवता भी वे पूजने लगते थे। उनके कुछ सिक्को पर एक ही स्थान मे पूज्य भाव से भारतीय एवं पारसी देवताओ के चित्र खुदे है। इनके समय मे प्रतिमा पूजन का बहुत विस्तार हुआ, ऐसा विचार किया जाता है।

हिन्दू धार्मिक ग्रंथो मे मूर्त्तियो का कथन होना महाशय बी० सी० भट्टाचार्य ने अपने ग्रन्थ Indıan Images, Brahmanıc Iconography, Part I, मे बहुतायत से माना है। उनका कथन है किउपरोक्त ग्रंथो के अतिरिक्त प्रतिमा पूजन का अस्तित्व यजुर्वेद तथा वाल्मीकीय रामायण से भी प्रकट है। यह विषय विवाद ग्रस्त है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती का सिद्धात है कि वेदो के संहिता भाग में प्रतिमा पूजन कथित नहीं है। काशीजी मे उनका जब पंडितो से शास्त्रार्थ हुआ था, तब "न तस्य प्रतिमास्ति" वाली ऋचा पर विशेष कथनोपकथन सुनने मे आया। स्वामीजी का कथन था कि इसका अर्थ तस्य प्रतिमा नास्ति का है तथा हिन्दू पंडित इसका अर्थ न तस्य प्रतिम अस्ति का लगाते थे। सन्धियों के नियमो से ये दोनो अर्थ ठीक ठीक बैठ सकते है। स्वामी जी का कथन प्रतिमा के अभाव

(१) इवें प्रतिकृतौ। Panını Ashtadhyayı V 3 96

(२) सपरं दिव देवता यतनानि कम्पते दैवतप्रतिमा, हसन्ति, रुदन्ति, नृत्यन्ति, स्फुटन्ति, ि खद्य उन्मीलन्ति।" Saımaveda Sadavınsha Brahman V 10

का था और काशी के पण्डितो का कथन यह था कि उसका कोई बराबरीवाला नही है। फिर भी वेद मे प्रतिमा पूजन कथित है नही।

रामायण के प्राचीन भागो मे प्रतिमा पूजन का कथन अप्राप्य है, ऐसा पडितो का विचार है। उन्हो ने रामेश्वर स्थापना का कथन नही किया है। जब महर्षि वाल्मीकि ने सैकड़ों विषयो के भारी भारी वर्णन दिये है, तब उनके समय मे यदि प्रतिमा पूजन का प्रचार होता तो इसका भी कथन उनके ग्रन्थ मे अवश्य आता। इस बात से उस काल पर्यन्त प्रतिमा पूजन का अभाव व्यजित होता है। कम से कम आर्यों के प्राचीन ब्राह्मण ग्रन्थो अथवा उपनिषदो मे सूक्ष्म रीत्या कुछ स्थानो मे प्रतिमाओ का कथन है, किन्तु बहुत एवं श्रद्धा पूर्वक भाव से नही। इससे उस समय आर्यों मे प्रतिमा पूजन का होना अनिश्चित समझ पडता है।

ऋग्वेद मे लिखा है कि हे इन्द्र, तू शिश्न पूजन को नष्ट कर। शिश्न पूजा भी उस काल अनार्यों मे होती थी, ऐसा प्रयोजन इस ऋचा से निकलता है। समय पर इसी पूजन से शिवलिंग पूजा का विधान प्रचलित हुआ। महाभारत के समय मे उपमन्यु ने शिवलिंग पूजन का कथन श्रद्धा से किया है, किन्तु बलराम, नन्दगोप, पांडवों आदि की तीर्थयात्राओ के वर्णन जो महाभारत एवं प्राचीन पौराणिक ग्रन्थो मे आए हैं, उनमे प्रतिमा पूजन का कथन अप्राप्य है। इससे जान पड़ता है कि शिवलिंग पूजन विधान तो महाभारत के समय प्रचलित था, किन्तु अन्य प्रकार से प्रतिमा पूजन का विधान आर्यों में न था अथवा बहुत कम था। शिवलिंग पूजनवाला महाभारतीय भाग पुराना न होकर नया समझ पड़ता है। समय के विचार से महाभारत रामायण से पीछे का ग्रन्थ है। इन बातो से प्रकट होता है कि रामायण के समय आर्यों में प्रतिमा पूजन का अभाव सा था किन्तु महाभारत के नव्य समय में वह कुछ कुछ चलने लगा था।

अनार्यों मे प्रतिमा पूजन की प्राचीनता समझ पडती है। भट्टाचार्य महाशय ने अपने ग्रन्थ मे इसकी प्राचीनता के विषय मे कई ग्रन्थो का हवाला दिया है, किन्तु अभीतक उन सबके देखने का अवसर नही मिला है और न वे सब सुगमतापूर्वक उपलब्ध है। इतना अवश्य समझ पड़ता है कि भट्टाचार्य महाशय ने प्राचीन ग्रन्थो मे प्रतिमा पूजन का जितना विस्तार कहा है उनका उतना आधिक्य समर्थनीय नहीं है। कहा तक प्रचार माना जा सकता है, यह बात अधिक ग्रन्थावलोकन के पीछे कही जा सकती है। अभीतक हमारी धारणा यही है कि वाल्मीकि के समय पर्यन्त आर्यों मे प्रतिमा पूजन का समादर या तो था ही नही या बहुत ही कम था। समझ पड़ता है कि प्रकृति पूजन से मानस प्रतिमा पूजन निकला। प्रतिमा पूजन का बाहुल्य बौद्धमत के कारण हुआ।

ईश्वर।

वैदिक समय मे ईश्वर का कथन मात्र हुआ और उसकी महिमा का ज्ञान रहा। औपनिषत्काल में यह ज्ञान बहुत बढ़ा, तथा सूत्र एवं पौराणिक समयों मे ईश्वरीय ज्ञान अधिक क्रमबद्ध हुआ, एवं त्रिमूर्त्ति और अवतारो के विचार बढ़कर दृढ हुए। अब इसी गहन विषय पर थोड़े में कुछ कथन किया जाता है। ईश्वर की पूजा एक साकार रूपादि सम्बन्धिनी है, और दूसरी निराकार अलख की। इन्हे दार्शनिक शब्दो में व्यक्त और अव्यक्त मार्ग कहते हैं। ऋषियो ने पृथक् स्वभाव युक्त पूजको के निमित्त पृथक् विधाये रची है, जिन्हे उपासना भी कहते है। ये निर्गुणात्मिका तथा सगुणात्मिका होती है, अथच इनके सात्त्विक एवं राजस भाग हैं। सात्त्विक उपासना दो प्रकार की होती है, अर्थात अहंग्रह और प्रतीक। प्रतीक शब्द प्रतिमा से सम्बन्ध रखता है, और अहंग्रह आत्मा से। ईश्वरीय ज्ञान के लिये योग और भक्ति मार्ग है। योग मे अभ्यास की प्रधानता है।

योगी ध्यान द्वारा जो कुछ देखता या सुनता है, उसे ज्योति और और अनहद नाद कहते है। दर्शन सम्बन्धी १६ ज्योतियां और श्रवण सम्बन्धी १८ नाद है, जिनका हमने हिन्दी नवरत्न मे कुछ विशेष वर्णन किया है। रूपो मे समता प्रदर्शनार्थ नीहार, धूम्र, सूर्य, वायु, अग्नि, खद्योत, तड़ित, स्फटिक और चन्द्र के नाम आये है, तथा नाद मे जलधि तरङ्ग, घन गरज, भेरी, निर्झर, मृदङ्ग, घण्ट, वेणु किंकिणी, वंशी, वीणा, और भ्रमर के। षोडशकला युक्त पुरुष ब्रह्म है। जब ब्रह्म का पूर्ण विचार होता है, तब कलाओं का नही होता, और कलाये मिली हुई समझी जाती हैं। ऐसी दशा मे ईश्वर को निष्कल कहते हैं, और कलाओ पर ध्यान देकर ईश्वर के वर्णन को सकल कहते हैं। परब्रह्म निष्कल है और अपर ब्रह्म सकल। इन सोलहो कलाओं की उपमा चान्द्र कलाओ से दी जाती है, यहां तक कि ईश्वरीय और चान्द्र कलाओ के नाम तक एक ही है। यथा अमृत, मानत, पूष, तुष्टि, पुष्टि, रति, धृति, शशिना, चन्द्रिका, कान्ति, ज्योत्स्ना, श्री, पृति, अगंदा, पूर्ण और पूर्णामृत। इसी उपासना को षोडशकला पुरुष विद्या कहते है, जिसमे निर्गुण ध्यान और सगुणोपासना दोनो सम्मिलित हैं। अवतारो, पैग़म्बरो, सिद्धो आदि के प्रति पूजन अथवा मान प्रतीकोपासना ही से सम्बद्ध है, क्योंकि मनुष्य अथवा संसार भी प्रतिमा है। निर्गुण उपासना प्रतीकोपासना से ऊंची है, किन्तु उसमे भी सगुणत्व एवं प्रतीकत्व लगा हुआ है। निर्गुणोपासना से ऊपर अहंग्रह का दर्जा है, जो प्रेम से विशेष सम्बन्ध न रखकर प्रधानतया निर्विशेष ज्ञान का विषय है। इसी को प्रेमी लोग तल्लीनता कहते है। इसी से स्थूल प्रकारेण सगुण की उपासना तथा निर्गुण का ज्ञान कहा गया है। फिर भी वास्तविक ईश्वर इन दोनो से ऊपर है, और ये रेखागणित सिखाने में बोर्ड पर खींची हुई रेखा के समान हैं। रेखा में चौड़ाई न होकर केवल लम्बाई मानी गई है, किन्तु ऐसी रेखा सोची तो जा सकती है, खींची

करके उसमे बीज डाला जो सोने का अण्डा हो गया। इसी अण्डे में परमात्मा संसार के बनानेवाले ब्रह्मा के रूप मे उत्पन्न हुआ। जल में विचरण करने के कारण ब्रह्मा नारायण कहलाये। अतएव हम देखते है कि यद्यपि आगे चलकर नारायण विष्णु का नाम हुआ, तथापि यहां पर यह ब्रह्मा का नाम है। रामायण मे लिखा है कि पहले सर्वत्र जल ही जल था, जिसमे पृथ्वी बनी। उसी से स्वयं सत्तात्मक ब्रह्मा हुए।

तब उन्होने बराह बनकर पृथ्वी को उठाया, और सारे जगत् को उत्पन्न किया। विष्णुपुराण मे लिखा है कि नारायण कहलानेवाले ब्रह्मा ने सब जीवधारियो को बनाया। पूर्व कल्पो मे प्रजापति ने जैसे मत्स्य, कच्छ, आदि रूप रक्खे थे, वैसे ही वह बराह होकर जल में घुसे। लिङ्ग पुराण का कथन है कि बराह अवतार ब्रह्मा का था। डाउसन ने ब्रह्मा का इसी प्रकार वर्णन किया है। हमने श्वेताश्वतर और मुंडक उपनिषदो मे भी ब्रह्मा का वर्णन पाया है। यथा : जो ब्रह्मा को आदि मे उत्पन्न करता और उसको वेद आदि देता है, उस आदि पुरुष के हम मुमुक्षु शरण है। (श्वेताश्वतर)।

ब्रह्मा देवाना प्रथम सवभूव विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता। मुंडक।

अवतार का विचार तो ऋग्वेद मे नही है, किन्तु उसमें विष्णु के तीन पगो का वर्णन है। इसी कथन से यथा समय अवतार सम्बन्धी विचार निकले। तैत्तिरीय संहिता, तैत्तिरीय ब्राह्मण, तथा शतपथ ब्राह्मण मे कहा गया है कि प्रजापति ने बराह का रूप धारण किया। यही प्रजापति पीछे से ब्रह्मा कहलाये। प्रजापति ने बराह होकर पृथ्वी को ऊंचा किया। रामायण (वाल्मीकि कृत) मे भी ब्रह्मा का बराह होकर पृथ्वी को ऊंचा करना कहा गया है। शतपथ ब्राह्मण में लिखा है कि प्रजापति ने कच्छ रूप धारण करके संतान उत्पन्न की। यह कूर्म अकरोत् करके लिखा गया है। इसी से वह कूर्म कहलाये। मत्स्यावतार का सबसे प्रथम कथन महाप्रलय के सम्बन्ध

मे शतपथ ब्राह्मण मे है। अतएव प्राचीन ग्रन्थो मे मत्स्य, कच्छ और बराह अवतार प्रजापति अथवा ब्रह्मा के कहे गये है। महाभारत मे विष्णु सब देवतों मे उत्कृष्ट है और उनके कई अवतारो का उल्लेख भी है। पुराणो मे इस विचार की पूर्ण उन्नति हुई है। भागवत पुराण का कथन है कि वेदो को बचाने के लिये विष्णु ने मत्स्य का अवतार लिया। मत्स्य, कच्छ, बराह और नृसिंह के अवतार सत्ययुग मे हुए। श्रीभागवत मे २२ अवतार लिखे है।

उक्त कथनो से प्रकट है कि प्राचीन ग्रन्थो मे, अर्थात गौतम बुद्ध के पहले (के ग्रन्थो मे) केवल, मत्स्य कच्छ तथा बराह अवतारो का ही कथन है, वरन यह कहना चाहिये कि ब्रह्मा या प्रजापति का उन रूपो में विशेष काय करना लिखा है। अतः मनुष्यो मे कोई भी पुरुष अवतारी नही माना गया था, और जो तीन अवतार माने गये उनके विषय मे भी जन्म मरणादि के कथन नहीं हुए, केवल इतना विचार हुआ कि ब्रह्मा ने वे रूप धारण करके समय समय पर कार्य विशेष किये। त्रिमूर्त्ति के विषय मे भी गौतम बुद्ध के पूर्व अथवा ब्राह्मणकाल तक काफी उन्नति नहीं हुई, अथवा ब्रह्मा, विष्णु, महेश का एकीकरण और ईश्वर के तीन अङ्ग होना बहुत प्रकट नही हुआ।

शिव।

डाक्टर सर रामकृष्णगोपाल भांडारकर महाशय ने भी इस विषय पर श्रम किया है, और बहुत से चमत्कारपूर्ण विचार लिखे है। आपने सिद्ध किया है कि यद्यपि ऋग्वेद मे विष्णु तथा रुद्र, दोनो का उल्लेख है, तथापि अन्य वेद तथा वैदिक साहित्य देखने से प्रकट होता है कि ईश्वरता का भाव रुद्र के सम्बन्ध मे बहुत प्राचीन काल से उठा था, और विष्णु के सम्बन्ध मे बहुत पीछे। ऋग्वेद के ऋषियो ने भयानक और नाशकारी शक्तियों में रुद्र का भाग देखा। इनके

उदाहरण तूफान, गाज, मरी आदि हैं। फिर भी रुद्र केवल हानिकर नही है, वरन् आराधना करने से उक्त व्याधियो को हटाकर मनुष्य को लाभ पहुचाते है। इस दशा मे वह रुद्र न होकर शिव हैं। इस प्रकार रुद्र, शिव, सम्बन्धी विचार वेदो मे उठा। शिव होने में ये पशुपति तथा वैद्यराज है। यजुर्वेद की शतरुद्रिय मे शिव के साथ ईश्वर सम्बन्धी विचार जुड़ गये है। कपर्दी के रूप मे आप अग्नि से मिले हुए है, क्योकि अग्नि का धुँआं जटाओं के समान होता है। शतरुद्रिय के अन्त मे शिव, शंभु, शङ्कर आदि के लाभकारी नाम आते है। अथर्ववेद मे भव तथा शर्व दो पृथक् देवता है, जो सबसे शीघ्र बाण चलानेवाले माने गये है। देवतो ने भव को व्रात्यो (जातिच्युत लोगो) का संरक्षक बनाया। शतपथ तथा कौषीतकी ब्राह्मणो मे रुद्र उषस् के पुत्र कहे गये है, और यह लिखा है कि प्रजापति ने इन्हे आठ नाम दिये, जिनमे रुद्र, शर्व, उग्र और अशनि हानिकर है, तथा भव, पशुपति, महादेव और ईशान लाभकर। अथर्ववेद कहता है कि रुद्र विष भेजते है, और इनके बाणो से मनुष्य या देवता कोई बच नही सकता। इस प्रकार यजुर्वेद तथा अथर्ववेद मे शिव पूर्ण ईश्वरता पा जाते है। आश्वलायन गृह्यसूत्र मे कहा गया है कि रुद्र को प्रसन्न करने के लिये बैल का बलिदान दिया जाता था। गृह्यसूत्रो तक रुद्र की भयानकता शेष रही, और उन्हें प्रसन्न करने की आवश्यकता थी। श्वेताश्वतरोपनिषत् मे शिव की कुछ कुछ वैसी ही महिमा है, जैसी गीता मे विष्णु की। मुंडकोपनिषत् मे माया प्रकृति है और मायी महेश्वर। जिस समय न दिन था, न ज्योति, न सत्ता, न अभाव, बस अन्धकार मात्र था, उस समय केवल शिव विद्यमान थे। वह न तो पुरुष है, न स्त्री, न लिङ्गहीन व्यक्ति। इन स्थानो पर ऐसा नही समझ पड़ता कि विष्णु की महिमा घटाने को शिव की बढ़ाई गई हो, वरन ये वर्णन स्वाभाविक हैं। उस समय तक विष्णु की महत्ता थी ही नहीं,

और केवल शिव परमात्मा थे। वासुदेव कृष्ण के पूजन का विधान, पीछे से बढा, और तब शैव तथा वैष्णव मत पृथक् हुए। केनोपनिषत् मे उमा देवी देवतो को ईश्वर का महत्व समझाती है। उमा शिव की स्त्री है, अतः उन्होने रुद्र अथवा शिव को ही ईश्वर बतलाया होगा, ऐसा अनुमान कुछ असगत नही माना जायगा।

महाभारत मे शिव की महिमा यथेष्ट वर्णित है। उपमन्यु ऋषि कहते है कि महादेव ही ऐसे देवता है, जिनके लिग तक का पूजन होता है। जब इनके सामने बैल पर सवार उमा और शिव प्रकट हुए, तब हंसारूढ़ ब्रह्मा और गरुडगामी नारायण दोनो ओर उनकी सेवा मे विद्यमान थे। यहां शिव का महत्व बढ़ा हुआ देख पड़ता है। अनुशासन पर्व मे यह लिखा है कि शिव व्रात्यो के उपास्य देव है। निषाद् जाति भी इनका पूजन करती थी। किसी समय भारत मे नागो की पूजा होती थी तथा अनार्य लोगो मे भूत भी पूजे जाते थे। इधर महादेव के आभूषण सर्प है और वह भूतपति भी कहे गये हैं। ऋग्वेद के सातवें मण्डल मे लिखा है, हे इन्द्र, तू शिश्न-पूजको के हाथ से वेदपाठियो का सताया जाना बन्द कर। उसी मडल मे एक स्थान पर इन्द्र के द्वारा शिश्नपूजकों के बध का भी वर्णन है। ऋग्वेद के इन कथनो से प्रकट होता है कि लिगपजा अनार्यों मे प्रचलित थी। इन बातो से स्पष्ट है कि शिव के पूजन और उनके सम्बन्ध के अनेक विचारो मे अनार्यों का भारी असर पड़ा है। ऋग्वेद मे आर्यों और अनार्यों की शत्रुता रखने का वर्णन है, किन्तु यजुर्वेद में अनार्यों के साथ आर्यों के प्रेम पूर्ण व्यवहार का उल्लेख मिलता हैं। यजुर्वेद की रचना के काल मे दोनो दलो मे मेल हो चुका था। इसीलिये जहां ऋग्वेद लिग पूजकों को बुरा कहता है वहां यजुर्वेद के शतरुद्रिय में शिव परमेश्वर माने गये हैं, और महा-भारत के काल मे तो आर्य जाति भी लिग पूजन को सादर अपना चुकी थी, और रुद्र को ईश्वर तो यजुर्वेद ही मानने लगा था। इस

प्रकार शिव सम्बन्धी उच्च विचारो की महत्ता यजुर्वेद के काल मे ही पूर्णरूप से मान्य हो गई थी।

विष्णु।

अब हम विष्णु सम्बन्धी विचारो की प्राचीनता पर ध्यान देते हैं। ऋग्वेद मे विष्णु का उल्लेख है अवश्य, किन्तु इस विषय की ऋचाये थोडी ही है। विष्णु के तीन पगो मे दो देख पड़ते है, तीसरा नही। बुद्धिमान लोग विष्णु को "परमम् पदम्" जानते है। वहां मधुकूप है और वह देवगण को प्रसन्न करनेवाला है। विष्णु इन्द्र के साथी तथा सहायक हैं। इन्द्र से इनका पद छोटा है। यजुर्वेद तथा अथर्ववेद मे शिव की महिमा जितनी बढ़ी है, उतनी विष्णु की नही। ब्राह्मण काल मे विष्णु की महत्ता बढने लगी। ऐतरेय ब्राह्मण मे लिखा है कि देवतो में अग्नि का सबसे नीचा तथा विष्णु का सबसे ऊचा पद है। शतपथ ब्राह्मण तथा तैत्तिरीय आरण्यक के अनुसार विष्णु भगवान देव मण्डली मे सर्वोपरि है। शतपथ ब्राह्मण में वामन के विषय मे लिखा है कि देवताओ तथा असुरो मे यज्ञस्थान के लिये झगड़ा हुआ, तब असुरो ने कहा कि हम वामन के बराबर भूमि देगे। इसपर वामन पृथ्वी पर लेट गये और लेटे ही लेटे इतना बढ़े कि सारी पृथ्वी पर फैल गये; बस वह सब देवतो को मिल गई। मैत्रेय उपनिषत् मे भोजन को भगवान विष्णु का रूप कहा गया है, क्योकि वही संसार का पोषण करता है। कठोपनिषत् में कहा गया है कि मनुष्य देहधारी जीव की उन्नति का चरम उत्कर्ष विष्णु के परम पद की प्राप्ति ही है। महाभारत मे विष्णु परमात्मा माने गये हैं। नारायण और कृष्ण के नाम से भी उनका उल्लेख है। वासुदेव का इन दोनों से अभिन्न होना भी कहा गया है। श्रीमद्भगवद्गीता में वह रुद्र तथा ब्रह्मा से बड़े हैं। यह मत डाक्टर भांडारकर

की सम्मति के अनुसार नही है। गीता मे अर्जुन को और अश्वमेध पर्व मे उत्तङ्क ऋषि को जिस विराट् स्वरूप या विश्वरूप के दिखलाने का वर्णन है, वह विष्णु ही का रूप बतलाया गया है। ये दोनो रूप वासुदेव कृष्ण ने दिखलाये थे। अतः वह विष्णु ही के अवतार थे। शान्ति पर्व मे कृष्ण को विष्णु माना गया है। अन्य पुराणो मे भी विष्णु परमात्मा कहे गये है। उनमे नारायण और वासुदेव कृष्ण का विष्णु से भी अधिक महत्व प्रकट किया गया है। श्रीयुत भांडारकर के मत से विष्णु वैदिक, नारायण दार्शनिक, और वासुदेव ऐतिहासिक देवता है। आपकी यह भी सम्मति है कि वासुदेव कृष्ण का पूजन भगवान कृष्ण के ही समय से प्रचलित हो गया था। उनका कहना है कि भीष्म ने स्वयं कहा है कि सात्वतो की विधि से वासुदेव का पूजन करना चाहिये, और यह प्रकट ही है कि कृष्ण सात्वत वंशी थे। इसी से भांडारकर कहते है कि कृष्ण का पूजन सात्वत वंशियो द्वारा भगवान के समय में ही चल चुका था, पर हमे यह बात ठीक नही जॅचती। सात्वत वश अवश्य था, किन्तु भीष्म पर्व तथा नारायणीय मे वासुदेव का जो सात्वत विधि से पूजन वर्णित है, उसका उस सात्वत वंश से कोई सम्बन्ध नहीं है, क्योकि वहां सात्वत शब्द से उस वंश का नही, सदुपासकों का बोध होता है, अर्थात् उसका अर्थ यही है कि अच्छे उपासको की विधि से वासुदेव का पूजन किया जाय। सात्वत वंशियो की विधि का अर्थ लगाने को क्लिष्ट कल्पना के सिवा क्या कहा जा सकता है? जितने लोग सत के उपासक हैं, वे सब सात्वत कहलाते है। पुराणो और भारत मे सात्वत वंशियो मे कृष्ण पजन प्रचलित होने का कही भी उल्लेख नहीं है। मुशल पर्व में उन्ही लोगो ने भगवान कृष्ण के सामने ही उनके पुत्र पौत्रो की हत्या कर डाली, और स्वयं कृष्ण पर भी प्रहार किये। वे सात्वत यादव कृष्ण को देवतों की तरह पूजते थे, यह अनुमान असंगत ही सिद्ध

होता है। यादवो मे कई घराने कृष्ण से जलते थे, यथा कृतवर्मा आदि। हा यह अवश्य माननीय है कि विष्णु, नारायण, वासुदेव तथा कृष्ण आगे चलकर एक ही माने गये। वासुदेव का पूजन विधान भारत मे छठी से चौथी शताब्दी बी० सी० मे अवश्य प्रचलित था, जैसा कि बौद्ध ग्रन्थ निद्देश से प्रकट है। छठवी शताब्दी बी० सी० के पाणिनि भी इन्हे देवता मानते थे। ५०० या ४०० बी० सी० मे तामिल प्रान्तीय एक सन्त संघ द्वारा वैष्णवता का आदर हुआ। इनका केन्द्र आड़ावार था। इन्होने वैष्णव संगीतो का गान किया। उनमे नारायण और विष्णु की प्रधानता थी। भांडारकर का कथन है कि इन तीन पूजन विधानो के अतिरिक्त एक चौथा विधान जो बाल कृष्ण की महिमा का निकला है, वह अर्वाचीन है। हरिवंश, वायु पुराण और भागवत में बाल कृष्ण की तथा बाल गोपाल कृष्ण की महिमा वर्णित है, किन्तु आपका विचार है कि उनका प्रतिपादन महाभारत में नही है। सभा पर्व मे जहा शिशुपाल ने श्रीकृष्ण का विरोध करते हुये उनके प्रति गोपाल शब्द का प्रयोग किया, तथा वही पूतना बध, गोवर्द्धन धारण आदि का उल्लेख किया गया है, उस स्थल को आप प्रक्षिप्त मानते हैं। आपका कथन है कि ऋग्वेद मे गोविद गउओ की खोज पाने को कहते हैं, और उसी से पौराणिक गोविन्द शब्द निकला है। शाति पर्व मे कृष्ण चन्द्र ने यह भी कहा है कि, मैंने खोई हुई पृथ्वी पाई थी, इसलिये मेरा नाम गोविन्द हुआ। भगवान कृष्ण द्वारा गोपियो के साथ विहार करने का वर्णन महाभारत में अवश्य ही नही है, यहां तक कि उनकी निन्दा तक मे उनके शत्रु शिशुपाल ने उन्हें पर स्त्री गामी होने का कलंक नही लगाया। आजन्मब्रह्मचारी भीष्म ने भी कृष्ण की सच्चरित्रता का माहात्म्य कहा है। यदि कृष्ण का चरित्र दूषित होता तो शिशुपाल उस दोष को कहने मे कुछ कोताही न करता, और न भीष्म जैसे देवस्वरूप सदाचारी उनकी महिमा का

बखान ही इस श्रद्धा पूर्वक करते। यह सब बाते शिशुपाल बध के वर्णन को प्रक्षिप्त न मानने पर भी सिद्ध होती है।

भांडारकर की यह सम्मति यदि मान भी ली जावे कि कृष्ण के गोकुल संबंधी बाल चरित्रो का हाल ईसा के पूर्व अज्ञात था, तो भी उसकाल के बहुत थोडे दिन पीछे यह ज्ञान सिद्ध हो जावेगा। आपकी यह सम्मति भी मान्य है कि कृष्ण का गोपिकाओ से संबंध, अर्वाचीन समय मे कल्पना का कमाल दिखानेवालो ने प्रसिद्ध या सिद्ध किया है। प्राचीन ग्रथो मे ऐसा कही नही पाया जाता। बौद्ध ग्रंथ घटजातक में लिखा है कि वासुदेव और उनके भाई, कस की भगिनी देवगभा के, उपसागर से उत्पन्न हुये, पुत्र थे। उनमे यह भी कहा गया है कि देवगभा ने अपनी टहलुई नदगोपा और उसके पति अन्धकवेन्हु को पालने के लिये कृष्ण को सौप दिया था। भाडारकर का विचार है कि घटजातक ईसा के पीछे बना। आप सोचते है कि इस जातक से भी प्राचीनकाल मे वासुदेव कृष्ण का गोपाल कृष्ण से ऐक्य नहीं सिद्ध होता। उक्त जातक का टीकाकार लिखता है कि भगवान का कान्ह नाम यो ही नही रक्खा गया, वरन् कान्हायन गोत्र में उत्पन्न होने के कारण वह कान्ह कहलाते थे। यह बात हिन्दू ग्रंथों मे नही लिखी है। जान पड़ता है कि यशोदा या नंदगोपा देवकी की सखी या दासी थी, और उसने स्वामिभक्ति के कारण अपनी कन्या देकर कृष्ण को अपने पास रख लिया, और कस के आतंक से उन्हें अपना ही पुत्र कहकर प्रसिद्ध किया। यह तथ्य बौद्ध और हिन्दू ग्रन्थो का मिलान करने से निकलता है, और दोनों के कथन को बहुत कुछ ठीक प्रमाणित कर देता है। प्राचीन कोषकार अमरसिंह ईसा की पहली शताब्दी के लगभग हुये थे। उन्होने श्रीकृष्ण को दामोदर कहा है, जो उनके यशोदाजी के यहां रहने से संबंध रखता है। महाकवि कालिदास ने भी गोपालकृष्ण का उल्लेख किया है। अतएव बालकृष्ण का पूजन अपेक्षाकृत

अर्वाचीन काल का है। कुछ ऐतिहासिको का मत है कि दूसरी शताब्दी बी० सी० मे मथुरा के निकट कुछ आभीर लोगो मे गोपाल-कृष्ण का पूजन चलता था।

भगवान कृष्ण को लोग प्राय' वासुदेव कहते थे, किन्तु भाडारकर महाशय का मत है कि वासुदेव का पूजन कृष्ण से पहले होता था। संस्कृत व्याकरण के नियमानुसार वसुदेव तथा वासुदेव दोनो के पुत्र को वासुदेव कह सकते है। कृष्ण भी एक वैदिक ऋषि थे। कृष्णायन तथा नारायण वशिष्ठ वशी ब्राह्मण गोत्र है। छांदोग्य उपनिषत् मे लिखा है कि देवकीपुत्र, घोर के शिष्य कोई दार्शनिक कृष्ण थे। यह घोर आगिरस वश के थे। स्वामी शंकराचार्य इन कृष्ण को वार्ष्णेय कृष्ण से भिन्न बतलाते है, परन्तु वे किस आधार पर ऐसा कहते है सो अज्ञात है। अतएव इस बात का कोई निश्चित प्रमाण नही है। सुतराम् यह कृष्ण देवकी पुत्र वासुदेव भी हो सकते थे। कुछ भी हो, यह अवश्य जान पड़ता है कि वासुदेव कोई प्राचीन पूज्य पुरुष थे। पीछे भगवान् कृष्ण का नाम भी वासुदेव होने से उन प्राचीन वासुदेव का माहात्म्य नये वासुदेव को मिल गया। पुराने अथवा यह नये दोनो वासुदेव नारायण के नाम से भी वर्णित होते थे। इसी से विष्णु, नारायण, वासुदेव और कृष्ण एक ही समझे गये। नारायण का वर्णन महाभारत के नारायणीय खड मे है। यह भाग शंकराचार्य से पूर्व अवश्य था, क्योकि उन्होने इसका उल्लेख किया है। यह शान्ति पर्व के अतर्गत है। वहा कहा गया है कि नारद भगवान एक बार श्वेतद्वीप को गये, जहा उन्होने नारायण से वासुदेव की महिमा सुनी। इसमे वासुदव के व्यूहो या मूर्त्तियो का भी कथन है, यथा भगवान वासुदेव विवेक हैं, संकर्षण अहंकार, प्रद्युम्न मन और अनिरुद्ध चित्त। इसी प्रकार राम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न यथाक्रम विवेक, अहकार, मन और चित्त हैं। इन्हीं चार चार को व्यूह अथवा मूर्त्ति कहते है।

जो धर्म नारद ने नारायण से सुना, वह पंचरात्र, एकांत अथवा एकातिक था। कहते है कि मरीचि, अत्रि, अगिरस, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और वशिष्ठ नाम के सातो चित्र शिखडियो तथा आठवे स्वायंभुव ने यह धर्म सुरक्षित रक्खा। उपरिचर वसु के यज्ञ से भी इसका संबंध है। इसमे नर, नारायण, कृष्ण और हरि, धर्म तथा अहिसा के पुत्र एवं परमात्मा के चार रूप माने गये है। यह भी कहा गया है कि यह मत सात्वतो का है। नारायण एक प्राचीन शब्द है। ऋग्वेद के अश पुरुष सूक्त के रचयिता नारायण थे। शतपथ ब्राह्मण मे नारायण परमात्मा से उत्पन्न कहे गये है। इन्होने पंचरात्र का विचार निकाला। तैत्तिरीय आरण्यक मे भी नारायण परमात्मा माने गये है। महाभारत और पुराणो की भी यही दशा है।

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः।
ता यदस्यायन पूर्व तेन नारायण' विदुः॥

इस श्लोक से नारायण का आदिकाल के जलसे संबंध प्रकट होता है। उद्योगपर्व मे यह भी लिखा है कि अर्जुन और कृष्ण नर नारायण है।

उक्त कथनों से यह प्रकट है कि विष्णु का वर्णन ऋग्वेद तथा अन्य वेदो मे आया, जहां उनकी उच्चता तो दिखलाई गई, जैसा कि उनका स्थान परम पद कहने से प्रकट है, किन्तु वह इन्द्र से कम समझे गये। ब्राह्मण ग्रंथो, आरण्यकों आदि मे इनकी कुछ उन्नति अवश्य हुई, किन्तु विष्णु का पद ईश्वर के बराबर नही समझा गया, हा, उनके रूप नारायण को वह महिमा प्राप्त हुई। पीछे से भागवत वासुदेव का पद, ईश्वरता के संबंध मे, महाभारत तथा उसके पीछे के अनेक ग्रंथो में बढा, और नारायण से उनका एकीकरण हो गया। ब्राह्मण ग्रंथो मे विष्णु सबसे बड़े देवता माने गये, किन्तु ईश्वरता के भाव नारायण में अधिक स्थापित हुये। इसी कारण हम देखते है कि विष्णु अधिकतया वैदिक देवता है, नारायण ब्राह्मण कालीन, तथा वासुदेव कृष्ण पौराणिक। पंचरात्र अनन्य रूप से भगवत धर्म

वासुदेव से संबंध रखता है। नारायण कोई अवतार नही, एक प्रकार से विष्णु ही है। जब उपनिषत्काल मे विष्णु के भाव की उन्नति हुई, तब आदिम जल से संबंध जुडने के कारण वह नारायण कहे गये। यथा समय इन नारायण का भागवत, वासुदेव तथा कृष्ण के साथ एकीकरण हो गया। जैसे वैदिक देवता रुद्र शिव होकर वेदो के ही समय मे परमात्मा माने गये, और अपने ही नाम से पुजे, वैसे विष्णु न तो वैदिक समय मे परमात्मा हुये न अपने नाम से पुजे। विष्णु के मंदिर बहुत कम देखने मे आते हैं। वैष्णव मदिर बहुधा बराह, नृसिह, वामन, राम, कृष्ण आदि अवतारो से सबंध रखते देखे गये हैं। वैष्णव मंदिरो मे सूर्य की मूर्त्ति भी कहीं कही विष्णु के स्थान पर है। शेषशायी विष्णु की मूर्त्ति भी देखने में आयी है, किन्तु उनके स्वतत्र मंदिर कम है। भांडारकर महाशय का कहना है कि गीता मे जो विराट् रूप दिखलाया गया है, उसका विष्णु रूप से सबंध नही है, वरन् वह परमात्मा का रूप है। अर्जुन ने यद्यपि उन्हे दो बार विष्णु कहकर संबोधित भी किया है, तथापि आपका कथन है कि यह नाम आदित्यवादी न होकार ईश्वरवाची है और भगवान की विभूति मात्र से संबंध रखता है।

"आदित्यानामह विष्णु ज्योतिषारविरंशुमान्।"

गीता के उपरोक्त श्लोक को इस सिद्धांत का आधार मानकर आप विश्वरूप दर्शन मे, विष्णु के शब्द को विभूति प्रकाशन मात्र मे ले जाकर विश्वरूप को बैष्णव रूप न समझ कर ईश्वर का वाचक प्रमाणित करते हैं। इस मत के हम विरोधी हैं, जैसा कि ऊपर कह चुके हैं। उसके कुछ कारण यहां लिखे जाते है। निम्नलिखित श्लोकांशो से भी, जो उसी विश्व रूप के सबंध में गीता के ११ वें अध्याय में हैं, वह रूप विष्णु का ही समझ पड़ता है :—

पश्यामि देवांस्तव देव देहे सर्वांस्तथा भूत विशेष संघान्,
ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थं ऋषीश्च सर्वानुरगांश्च दिव्यान्।

रुद्रादित्या वसवो ये च साध्या विश्वेश्विनौ मरुतश्चोश्मपाश्च,
गन्धर्वयक्षासुरसिद्धसंघा वीक्ष्यन्ते त्वां विस्मिताश्चैव सर्वे।

इन दोनो श्लोको मे एक एक करके ब्रह्मा और रुद्र इस रूप से एक प्रकार से कम पद के बतलाये गये है, किन्तु विष्णु इससे कम नही कहे गये। यदि यह विष्णु का रूप न होकर ईश्वर का होता, तो ब्रह्मा तथा रुद्र की भाति विष्णु का भी उसके संबंध मे कुछ हीन वर्णन होता, किन्तु ऐसा नही किया गया। आगे के श्लोको मे स्पष्ट कहा गया है कि यह विष्णु ही का रूप है।

"किरीटिन गदिन चक्रिण च तेजोराशि सर्वतो दीप्तिमन्तम्।"
विश्वरूप का यह वर्णन वास्तव मे विष्णु का ही रूप है।
स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या जगत्प्रहृष्यत्य नुरज्जते च,
त्वमादिदेवः पुरुषः पुराणस्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम्।
किरीटिनं गदिनं चक्रहस्तमिच्छामि त्वा द्रष्टुमहं तथैव;
तेनैव रूपेण चतुर्भुजेन सहस्रबाहो भव विश्वमूर्ते।
दृष्ट्वाहित्वां प्रव्यथितान्तरात्मा धृति न विन्दामि शमं च विष्णो।
तेजोभिरापूर्य जगत्समग्रं भासस्तवोग्रः प्रपतन्ति विष्णो।

इन श्लोको से विश्वरूप की विष्णु से एकता प्रकट है। हृषीकेश तथा पुरुष पुरातन विष्णु के ही नाम हैं। किरीट, गदा आदि का उन्हीं से संबंध है। दो बार उनका विष्णु नाम भी आया है।

अब यदि यह स्वीकार किया जाय कि गीता मे वर्णित विश्वरूप विष्णु का रूप है, तो यह भी मानना पड़ेगा कि महाभारत विष्णु को रुद्र से इस स्थान पर बड़ा मानता है, किन्तु कुछ अन्य स्थानो मे शिव को विष्णु से बड़ा कहा गया है। इन कारणो से हमारी समझ में भी यह कथन उचित होगा कि सब मिलाकर महाभारत के मत मे शिव और विष्णु समान हैं।

अवतार।

नारायणीय मे वराह, नृसिह, वामन, परशुराम, राम और कृष्ण नाम के छः अवतार कहे गये है, और फिर थोडी ही दूर आगे चलकर दशावतार का उल्लेख है। हस, कूर्म, मत्स्य और कल्कि अवतार यहां और जोड़े गये है। हरिवंश मे भी छ: अवतार है, किन्तु वायु, बराह, और अग्नि पुराणो मे दश अवतारो का उल्लेख है, और भागवत मे तो बाईस, तेईस तथा सोलह अवतार है। सब मिलाकर दश अवतार ही प्रधान है। ऊपर दिखलाया जा चुका है कि कूर्म, मत्स्य तथा बराह पहले प्रजापति या ब्रह्मा के अवतार माने गये, पीछे पौराणिक वर्णनो मे ये तीन पूर्ववर्ती अवतार अन्य परवर्ती अवतारो के साथ विष्णु के अवतार माने जाने लगे। मनुष्यो मे अवतार का विचार गौतम बुद्ध के पीछे से उत्पन्न हुआ। मत्स्य, कूर्म तथा वराह के जन्ममरणादि नहीं कहे गये, केवल उनके विशेष कार्यों का कथन है। वराह के विषय मे श्रीभागवत मे इतना अवश्य कहा गया है, कि वह ब्रह्मा की नासिका से छीकते समय निकले, किन्तु बराहजी की भी मृत्यु का कही कथन नही है। अतएव यदि अधूरे वर्णनो के कारण ये अवतार न माने जावे, तो कहा जा सकता है कि अवतार की कल्पना गौतम बुद्ध के पीछे हुई है। यदि उन्हे अवतार मान ही ले, तो भी यह कहना पड़ेगा कि मनुष्य योनि मे अवतार की कल्पना बुद्ध के अनन्तर की गई, तथा विष्णु के भी अवतारो का कथन बुद्ध के पीछे का है। त्रिमूर्त्ति के विषय मे भी ऊपर के कथनो से प्रकट होता है कि रुद्र और शिव दोनो वैदिक देवता हैं, और रुद्र मे ईश्वरीय भाव की महिमा यजुर्वेद तथा अथर्ववेद ही के समय में की गई, किन्तु विष्णु में इस भाव का प्रथम आरोप ब्राह्मण ग्रंथो में ही हुवा, विशेषतः नारायण के रूप में। पौराणिक समय मे भगवत, वासुदेव आदि नामों तथा विष्णु के अवतारो की प्रधानता हुई। ब्रह्मा का नाम

वाल्मीकीय रामायण मे आया है। उसके पीछे वाले ग्रथो में भी वह पाया जाता है। प्रकट है कि त्रिमूर्त्ति की कल्पना सूत्रकाल मे हुई, और विष्णु के अवतारो की पौराणिक काल तथा महाभारत मे। शिव का पूजन तो वैदिक समय से ही होता था, और विष्णु को भी यज्ञ मे भाग मिलता था, किन्तु प्रश्न यह है कि विष्णु, नारायण एवं वासुदेव को ईश्वर मानकर कबसे पूजा जाने लगा ? यह प्रश्न बड़े महत्व का है। नारायण का पूजन नारायणीय मे लिखा है, किन्तु उसका समय अनिश्चित है। महाभारत एक प्राचीन ग्रंथ अवश्य है, किन्तु उसमे समय समय पर नये अश जुडते रहे है। अतः बिना किसी बहिरंग प्रमाण के मिले यह नहीं कहा जा सकता कि उसका कोई विशेष अश कितना प्राचीन है ?

यह स्पष्ट प्रकट है कि श्रीभगवद्गीता मे भगवान कृष्णचन्द्र के पूजन का विधान है। गीता के समय सम्बन्धी विचार हमारे भारतीय इतिहास मे है, जिनसे प्रकट है कि महाभारत (जय) छठी या सातवी शताब्दी बी०सी० का ग्रन्थ है। उसी के अन्तर्गत गीता है, जिसे महाभारत का एक प्राचीन भाग कहा जाता है। गीता का भी समय पांचवी छठी शताब्दी बी० सी० के लगभग मानना चाहिये। चौथी शताब्दी बी० सी० का बना निद्देश नामक एक बौद्ध ग्रन्थ है। उसमे लिखा है कि कुछ लोग वासुदेव तथा बलदेव की देव भाव से भक्ति करते थे। बलदेव की भक्ति व्यूहो के विचार से सम्बन्ध रखती है। यह विचार गीता मे नही है। इससे प्रकट है कि जिस काल गीता बनी थी, उस समय तक व्यूहो की कल्पना नही की गई थी, नही तो गीता मे उसे भी स्थान मिलता। इससे भी सिद्ध है कि गीता निद्देश से पहले का ग्रन्थ है। अतएव ज्ञात होता है कि पांचवी छठी शताब्दी बी० सी० के लगभग वासुदेव कृष्ण का पूजन होता था। चौथी शताब्दी बी० सी० के पहले व्यूहों की कल्पना उत्पन्न हो चुकी थी। पतञ्जलि ईसा के पहले दूसरी शताब्दी मे हुए।

आपने पाणिनीय व्याकरण के भाष्य मे लिखा है कि पाणिनि ने वासुदेव शब्द का जैसा प्रयोग किया है, उससे वासुदेव का पूज्य देवता होना प्रकट है। इससे यह ध्वनित होता है कि पतञ्जलि तथा पाणिनि के समय मे भी वासुदेव पूज्य देवता थे। पाणिनि का समय लगभग छठी शताब्दी बी० सी० है। दूसरी शताब्दी बी० सी० वाला घोसुंडी का एक शिला लेख मिला है, जिसमे सकर्षण तथा वासुदेव के पूजन मडप का वर्णन है। बेस नगर मे इसी समय का एक और लेख प्राप्त है, जिसमे देवतो के देवता वासुदेव के लिये गरुडध्वज बनने का कथन है। ईसा से पूर्व की पहली शताब्दी का नानाघाट-वाला लेख भी वासुदेव तथा संकर्षण की पूजा सिद्ध करता है। मेगास्थिनीज़ ईसा के ३०० वर्ष पहले भारत मे था। उसके लेख से प्रकट है कि शौरसेन लोग वासुदेव का पूजन करते थे। भाडार-कर महाशय का मत है कि गीता के समय तक श्रीकृष्ण विष्णु के अवतार नही माने गये थे। इस कथन से हमारा मत भिन्न है, जिसके कारण ऊपर दिये जा चुके हैं। गुप्त घराने के शासक सिक्को पर अपने को परम भागवत लिखते थे। सन् ३८३ के एक लेख मे लिखा है कि जनार्दन के लिये एक ध्वज स्तंभ बनाया गया। सन् ४६५ के एक ताम्रपत्र से प्रकट है कि जनन्नाथ नामक किसी राजा ने भागवत के मन्दिर की मरम्मत के लिये एक गाँव लगाया था। कुतुब मीनार के निकटवाली लोहे की दिल्ली किल्ली गुप्त महाराज चन्द्रगुप्त दूसरे की है। इसका समय पांचवी शताब्दी है। इस लौह स्तूप मे लिखा है कि यह विष्णु का ध्वज स्तंभ है। मेघदूत मे कालिदास ने गोपाल कृष्ण का उल्लेख किया है। भाडारकर महाशय कालिदास को पांचवीं शताब्दी का मानते हैं। बराह मिहिर के समय में भागवत लोग विष्णु के पूजक माने जाते थे। धर्म परीक्षा नाम का एक जैन ग्रन्थ मिला है। यह सन् १०१३ का बना है। इससे गौतम बुद्ध का उस समय अवतार

माना जाना सिद्ध है। विष्णु तथा भगवान कृष्णवाली पूजा की कल्पना के समय जो भाडारकर महाशय ने लिखे हैं, वे ऊपर दिये जा चुके हैं। कनिष्क महाराज पहली शताब्दी के हैं। आपके पूर्व महायान मत पुष्ट हो चुका था, जिसमे बुद्ध भगवान देव भाव से पुजते थे।

अब दाशरथि राम की पूजा के समय पर विचार किया जाता है। वाल्मीकीय रामायण के प्राचीन अशो मे राम अवतार नही माने गये। उसके नवीन भाग तीसरी शताब्दी बी० सी० के समझे गये है, जिनमे राम अवतारी पुरुष हैं। नारायणीय (महाभारत के अश) तथा पुराणो में भी राम अवतार है। रघुवंश मे कालिदास ने यही माना है। उक्त धर्म परीक्षा मे अमितिगणि ने भी इन्हें अवतार कहा है। भाडारकर का विचार है कि वायु पुराण पांचवी शताब्दी के आसपास का ग्रन्थ है। इसमे भी श्रीराम अवतार है। अमरसिंह तथा पतञ्जलि ने राम का कथन नही किया। छठी शताब्दी के भवभूति ने राम के शील गुण का बहुत उत्कृष्ट वर्णन किया है। माधवाचार्य ने सन् १२६४ के आस पास नरहरि तीर्थ को राम और सीता की असली मूर्त्तियां लाने के लिये जगन्नाथपुरी भेजा, और दिग्विजय राम की मूर्त्ति को वह स्वयं बद्रिकाश्रम से लाये। तेरहवी शताब्दी के महामत्री हेमाद्रि ने व्रत खण्ड मे रामनवमी व्रत का वर्णन किया है। इन कारणों से भांडारकर का मत है कि रामचन्द्र का पूजन ग्यारहवी शताब्दी से आरंभ हुआ होगा, यद्यपि उनका अवतार होना पौराणिक ग्रन्थो मे भी लिखा है। राम का शेष कथन यथास्थान होगा।

शैवमत।

रुद्र और शिव की प्राचीनता का उल्लेख हम ऊपर कर आये है। हम देख चुके है कि भारत मे लिंग पूजक लोगो का समय वेदो के

पूर्व था, और वे उस समय बुरे समझे जाते थे। ऋग्वेद मे रुद्र की महिमा का वर्णन है। यजुर्वेद तथा अथर्ववेद मे रुद्र ही शिव और ईश्वर हो गये हैं। महाभारत मे आर्य लोग भी शिवलिग के पूजक पाये जाते है। उपनिषदो मे अकेले आप ईश्वर है। गीता मे पहले पहल विष्णु आपके आगे बढ जाते है, किन्तु सब मिलाकर महाभारत तथा पुराणो मे विष्णु और शिव समान माननीय है। इतना अवश्य कहना चाहिये कि रुद्र और शिव का पूजन, भय से किये जाने के कारण, कुछ नीचे दर्जे की उपासना है, किन्तु विष्णु की पूजा प्रेमपर अवलम्बित होने के कारण श्रेष्ठतम है। यह एक स्वाभाविक नियम है कि विचारो की उच्चता समय के साथ उन्नति करती है। इसीलिये हम देखते है कि भय के आधार पर अवलम्बित शिव का पूजन प्राचीन काल से चला आया था, किन्तु प्रेमावलम्बी विष्णु पूजन ने उससे बहुत पीछे उन्नति की। शिव पूजन ने भी समय के साथ उन्नति अवश्य की और उसमे भय की मात्रा घटती और प्रेम की बढती गई, यहातक कि वर्तमान काल मे भय का अभाव सा है, और प्रेम ही प्रेम विद्यमान है। महाभारत में लिग पूजा का वर्णन है, किन्तु पतञ्जलि के ग्रन्थ मे नही। संभवत· महर्षि पतञ्जलि ने उसे नापसन्द करके न लिखा हो। कुशान राजा वेम कड्फाइज़ेज के सिक्को पर शिव की मानुषी मूर्त्ति बनी है, अथच लिग नहीं अङ्कित है। संभवतः महाभारत मे लिंग पूजन के वर्णन का जो अश है, वह उक्त समय के पीछे का हो। पतञ्जलि के समय मे शिव, स्कंध और विशाख की मूर्त्तियां पुजती थी। कभी कभी ये बहुमूल्य धातुओ की भी बनाई जाती थी। बौद्धमत की महायान शाखा जिस काल पहिली शताब्दी के निकट बढी, उसीकाल देश में शैवमत की भी वृद्धि हुई।

शैव सम्प्रदाय की कई शाखाये या भेद है। सबसे प्राचीन लकुलिन अथवा नकुलीश का नाम मिलता है। इन्होंने पाशुपत

सम्प्रदाय चलाया। इसका वर्णन महाभारत के नारायणीय भाग मे है। भांडारकर महाशय का मत है कि यह सम्प्रदाय वि० पू० दूसरी शताब्दी मे चला था। छठी शताब्दी के बराहमिहिर का कथन है कि शंकर प्रतिमा की स्थापना ब्राह्मणों से करानी चाहिये। ह्यूयन्त्सांग ने पाशुपत लोगो का बारह बार उल्लेख किया है। सातवीं शताब्दी मे महाराष्ट्र देश के कापालिको का वर्णन मिलता है। सन् ९५८ मे राष्ट्रकूट के महाराज तीसरे कृष्ण ने एक गांव उस गंगन शैव को दिया था, जो सम्पूर्ण शैव सिद्धातो का ज्ञाता कहा गया है। छठी शताब्दी के कवि भवभूति मालती माधव नाटक मे शंकर के एक मन्दिर का वर्णन करते हैं। कालिदास, श्रीहर्ष, भवभूति और अनेक अन्य कवियो ने ग्रन्थारभ मे शिव की प्रार्थना की है। सभी शैव सम्प्रदाय लाकुल कहलाते थे। शिवपूजन के अग हँसना, गाना, नाचना, हुडक्कार और साष्टांग प्रणाम आदि थे। क्राथन, स्पन्दन, मंदन, शृङ्गारण, अवितत्करण और अवितद्भाषण से भी शिवपूजन होता था। पशु जीवात्मा को कहते हैं और पशुपति शिव को। शैव सम्प्रदाय के विचार पाशुपत सम्प्रदायवालो से बहुत उच्च है। स्वामी शङ्कराचार्य ने पाशुपत मतावलम्बी नीलकण्ठ को शास्त्रार्थ मे हराया था। कापालिको का मत यह है कि जो मनुष्य छः मुद्रिकाओ का सार और उनका व्यवहार जानता है, वह जीवात्मा को स्त्री के विशेषांग पर बैठा हुआ मानकर मुक्ति प्राप्त करता है। कालामुख सम्प्रदाय मे भी शव और मदिरा आदि से सम्बन्ध रखनेवाले ऐसे ही नीच विचार मिलते हैं।

रुद्र के विषय मे जो भयानक विचार थे, वे भैरव और उनकी स्त्री चण्डिका के सम्बन्ध में अबतक वर्तमान है। काश्मीर के दो शैव सम्प्रदाय कहे गये हैं, जिनका पूजन विधान उच्चतर और उचित है। उनमें से एक के प्रवर्त्तक कल्लट सन् ८५४ मे हुए थे, और दूसरे के चलानेवाले सोमानन्द दसवीं शताब्दी मे। वीर शैव अर्थात् लिगायत

सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक वासव दाक्षिणात्य नरेश विज्जल के मंत्री थे, जिनका राज्यकाल सन् ११५७ से दस वर्ष तक रहा।

यह भी कहा जाता है कि वासव ने लिगायत मत की केवल उन्नति की। आराधक और लिंगायत नाम के दो संयुक्त सम्प्रदाय है। ये लोग ब्राह्मण मत के शत्रु है, और ये मत भी ब्राह्मणो के धर्म से पृथक् से है। ये लोग शिव के पूरे शरीर को लिग कहते हैं। भावलिग, प्राणलिग और इष्टलिग ये लिगस्थल के तीन भेद है। भावलिग सत् है, प्राणलिग चित्, और इष्टलिग आनन्द। प्रयोग, मत्र और क्रिया से ये ही तीनो कला, नाद और बिन्दु बनते है। इन तीनो के भी और दो दो भेद है, यथा पहले के महालिग और प्रसादलिग, दूसरे के चरलिग और शिवलिग तथा तीसरे के गुरुलिग और आचारलिग। जब इन छहो पर छ॰ शक्तियो का प्रभाव पडता है, तब छ. प्रकार के रूप उत्पन्न होते है। इन सबके वर्णन शैव ग्रन्थो मे हैं, और भाडारकर महाशय ने भी लिखा है। यह एक प्रकार का शैव दर्शन है। हिमाचल से मैसूर तक शैव जगमो के पाच बड़े स्थान है। ये कठिन शैव प्रश्नो पर विचार करते है। वीर शैव लोग गायत्री के स्थान पर पचाक्षरी मंत्र जपते है, और जनेऊ की जगह शिवलिग धारण करते है। क़ाचीपुर मे अनेक शैव मन्दिर हैं, जिनके लेखो से प्रकट है कि छठी शताब्दी में वहा शैवसम्प्रदायो का बडा बल 'था। दक्षिण मे ६३ भारी शिव भक्त हो गये हैं।

शक्ति पूजन।

वेदो मे शक्ति पूजन का पता नही है। महाभारत के भीष्मपर्व में अर्जुन ने विजयार्थ दुर्गा की प्रार्थना की। विन्ध्यवासिनी देवी पहले यशोदा के गर्भ से उत्पन्न होकर कंस के हाथ से मारी गईं।

यह कथन हरिवंश मे है। दुर्गा की एक स्तुति मे यह भी कहा गया है कि वह शबर, पुलिद, बर्बर आदि जंगली जातियो की देवी है। वह मद्य तथा मास से प्रसन्न होती है। दुर्गापाठ मे भी इनके बहुत से वर्णन है। केनोपनिषत् में उमा का नाम आया है। काल के तीन रूप है, साधारण, भयानक और कामुक। तंत्रो मे कामुक विचार आनन्द भैरवी, त्रिपुर सुन्दरी, और ललिता के सम्बन्ध मे कहे गये है। महाभैरवी उत्पादिका शक्ति हैं, और महाभैरव नाशकारी। बिन्दु और नाद के मेल से काम, कला, कामकला आदि की उत्पत्ति हुई है। त्रिपुर सुन्दरी शिव और शक्ति के मिलने का फल है। शक्ति पूजकों का धर्म है कि पुरुष होकर भी अपने को स्त्री समझने के विचार की आदत डाले, क्योकि ईश्वर स्त्री है। सबको स्त्री होने की इच्छा रखनी चाहिये। त्रिपुर सुन्दरी की पूजा तीन प्रकार से होती है। पहली विधि महापद्मवनस्थ शिव की गोद में बैठी हुई देवी का ध्यान करना है, दूसरी है चक्र पूजा, और तीसरी विशेषाग के चित्र का पूजन। इस प्रकार ९ चित्र भोजपत्र या रेशमी कपडे पर बनाये जाते है। उसे श्रीचक्र कहते है। शाक्तो के दो भेद है, कौलिक और समयिन। कौलिक सजीव विशेषांग की पूजा करते हैं, किन्तु समयिन उसके विचार मात्र की। पूर्वकौल चित्र मे अग पूजन करते है, किन्तु उत्तर कौल सजीव सुन्दरी स्त्रीवाले अग के पूजक हैं। इस पूजन को भैरवी चक्र कहते है और इसमे वर्ण विचार नही रह जाता। यथा :—

प्रवृत्ते भैरवी चक्रे सव वर्णाद्विजातयः,
निवृत्ते भैरवी चक्रे सर्वे वर्णाः पृथक् पृथक्।

यह पूजन स्पष्ट ही परम निंद्य और बुरा है। ललिता और उपांग ललिता के पूजन विधान अच्छे भी हैं। इस पूजन से सम्बद्ध कथन आगे आवेगे। हिन्दी साहित्य से इनका प्रगाढ संबंध है।

———

गाणपत्य संप्रदाय।

रुद्र के बहुत से गण है। उनके स्वामी गणपति अथवा विनायक हैं। अथर्वशिरस् उपनिषत् मे रुद्र विनायक भी कहे गये हैं। महाभारत के अनुशासन पर्व मे कई गणेश्वर और विनायक माने गये है, जो देवतो मे से है, सर्वत्र वर्तमान है और मानुष कर्मों के साक्षी हैं। शतरुद्रिय मे लिखा है कि गणपति बहुतेरे हैं और वे सर्वत्र वर्तमान है। मानव गृह्यसूत्र मे चार विनायक कहे गये है। ये विघ्न-कारक है। याज्ञवल्क्य स्मृति मे लिखा है कि रुद्र और ब्रह्मदेव ने षट् नामधारी एक विनायक को गणपति बनाकर मनुष्यो के कामो में कठिनाइया और विघ्न डालने का काम सौपा। अतएव हम देखते हैं कि उपरोक्त सूत्रके चार विनायक स्मृति मे एक ही गणपति विनायक हो गये और अंबिका इनकी माता हुई। अपने कार्य से ये शत्रुतापूण और हानिकर है, किन्तु उपासना करने से मित्र तथा लाभकर हो सकते है। उक्त सूत्र मे उल्लिखित होने से प्रकट है कि विनायक ईसा के पूर्ववर्ती है। गुप्तकाल के लेखो में गणपति का नाम नही है, किन्तु इलोरा की दो गुफाओ मे इनके चित्र है। ये गुफाये नवीं शताब्दी तक की है। अतएव समझ पड़ता है कि छठी और नवी शताब्दियो के बीच मे इनका पूजन प्रचलित हुआ। सन् ८६२ के एक शिलालेख मे विनायक को दडवत् लिखी है। इनके हाथी का शिर कैसे लगा, यह अज्ञात है। इलोरा के चित्रो तथा भवभूति के ग्रंन्थो मे यह शिर मिलता है। ऋग्वेद के ब्रह्मण-स्पति सूक्त में बृहस्पति तथा गणपति दोनो ब्रह्मणस्पति कहे गये हैं।

अनन्तानन्द गिरि ने गाणपत्यो के छः संप्रदाय कहे है। उनमे पहले महा गणपति के उपासक हैं, जो उन्हें कर्त्ता कहते हैं। उनका यह भी कथन है कि जब ब्रह्मा आदि नष्ट हो जाते है, तब भी महा-

गणपति रहते है । हेरंबसुत उच्छिष्ट गणपति के उपासक थे । इस सप्रदाय के लोग वाम मार्गी और अश्लील गणपति के पूजक हैं । इनमे जाति भेद नही है । इनके यहां विवाह इत्यादि का बन्धन ठीक नही माना गया, और सन्तानोत्पादन मे कोई रोक नही है । नवनीत, स्वर्ण और संतान नामक तीन अन्य गणपतियो के पूजक अपनी सभझ मे श्रौत विधि से उपासना करते है । उनका कथन है कि गणपति प्रत्येक धार्मिक कार्य मे प्रथम पूजे जाने से सब देवतो मे मुख्य, एव अन्य देवगण उनके अग मात्र हैं । गणपति का पूजन छठी शताब्दी मे चला और प्रत्येक हिन्दू इनको हर धर्मकार्य के आदि मे तथा अन्य कार्यो के आरभ मे पूजता है । स्कंद का पूजन होता था, और सूर्य का भी । सूर्योपासक मग ब्राह्मण थे, जो फ़ारस से आये हुये समझे गये है ।

उक्त वर्णन से प्रकट है कि दक्षिण और वाम मार्ग एक प्रकार से प्रत्येक धर्म मे है । वैष्णवो मे विष्णु, नारायण, वासुदेव, भगवत्, रुक्मिणीवल्लभ कृष्ण तथा सीता राम संबन्धी उपासनाये दक्षिणमार्गी है, किन्तु राधाकृष्ण की भक्ति कुछ कुछ वाममार्ग की ओर झुकती है । शैव, शाक्त और गाणपत्य पूजनो मे भी दक्षिण और वाममार्ग हैं । यह अवश्य है कि किसी मे दक्षिण का प्राधान्य है, और किसी मे वाम का, किन्तु है दोनों प्रायः सभी मे । हम यह भी देखते है कि प्रत्येक देवता सम्बन्धी विचार समय के साथ उच्चतर होते चले आये है । आजकल हिन्दू समाज मे यह बात १००० मे ९९९ को भी न ज्ञात होगी कि रुद्र शिव पहले भयानक थे और समय पाकर दयालु माने गये । यह भी बहुत ही कम लोग जानते हैं कि शिवलिग का पूजन वास्तव मे विशेषाग का पूजन है । वे तो शिवलिग को साक्षात् सदाशिव मानते और शिव को योगिराज तथा भोलानाथ समझते है न कि हानि पहुॅचाने वाला । उनका पूजन लाभार्थ किया जाता है, न कि हानि से बचने को । यही दशा गणपति की है । यह कौन

जानता है कि बेचारे विघ्नविनाशक विद्वान गणेश किसी समय विघ्न उपस्थित करने वाले थे?

अकुस लिये विघ्न को डाटै, बिकट कटक संकट के काटै।

ऐसे विचार उनके विषय मे है, न कि विघ्न उपस्थित करने के। उनका पूजन विघ्नेश होने के कारण न होकर आज विघ्न विनाशन के रूप मे होता है। शिव और गणेश आज पूर्ण उन्नति कर चुके हैं, और उनके विषय में हानिकारक होने के प्राचीन विवरण सुनकर लोग चौंक पड़ेगे। केवल ऐतिहासिक विचारो से प्राचीन वर्णनो का उल्लेख यहां किया गया है। इन कथनो से ऐसा न समझना चाहिये कि हमारे देवगण किसी समय वास्तव मे भयानक थे। प्रयोजन केवल इतना है कि समय के साथ उनके गुण उपरोक्त प्रकार से अपनी समझ मे आये। वास्तव मे वे सदैव पूर्णतया दयालु तथा लाभ-कारक थे और है। शक्ति पूजन के विषय मे अब भी कुछ कुछ प्रचंड विचार प्रस्तुत है, और यद्यपि इन पूजको मे भी दक्षिण मार्गवाले बहुतेरे हैं, तथापि आज दिन इन को लोग बहुत करके वाममार्गी ही समझ लेते है। इस उपासना मे अभी कुछ उन्नति होनी भी शेष है। वास्तव मे शक्ति पूजन भी उच्च है किन्तु प्रतिपादको की भूल से उस में अनुचित कथन आगये जो समाज को कभी कभी राह भुलानेवाले हो पड़े। परब्रह्म मुख्यतया शक्ति स्वरूप है ही, सो उचित विचारो के साथ यह पूजन भी पूर्णतया निर्दोष है। ईश्वर वास्तव मे न स्त्री है न पुरुष। शक्ति पूजन मे स्त्री सम्बन्धी भाव ही अशुद्ध है।

इसी स्थान पर पौराणिक समय के धार्मिक एव राजनीतिक कथन समाप्त होते हैं। यद्यपि यह एक प्रकार की भूमिका सी देख पड़ती है, तथापि वास्तव मे हिन्दी साहित्य में इसका कथन आवश्यक था, नही तो उन्नति का समुचित प्रभाव विदित न होता। इसका कथन समयानुसार करने से वास्तविक अभिप्राय उन समयो के वर्णन का नहीं है, वरन् प्रधानतया इतनी बात है कि हिन्दी के प्रभाव कथन

मे जब उन विषयो के वर्णन आवेगे, तब वहां पर उन्हे न कहकर पहले से ही कहे रखते है, जिससे समयानुसार उन्नति का भी ज्ञान होता रहे और यथास्थान हिन्दी साहित्य का प्रभाव भी प्रगट हो जावे।

भाषा।

अब पौराणिक काल मे केवल भाषा का कुछ कथन करके हम हिन्दी पर आवेंगे, या यो कहे कि इसी के साथ हिन्दी के आरम्भ का कथन हो जावेगा। हम ऊपर देख आये है कि ऋग्वेद की भाषा आसुरी थी, तथा ब्राह्मणकालीन पहली या पुरानी सस्कृत और सूत्रकालीन संस्कृत। ब्राह्मण समय मे पहली प्राकृत का कथन हुआ तथा सूत्रकाल मे वह साहित्यिक रूप मे देख पड़ी। बौद्ध काल मे हम प्राकृत का दूसरा रूप देखते है, जिसे पाली कहते है। इसी मे हीनयानीय अनमोल बौद्ध ग्रन्थ बने तथा इतर साहित्य भी। महावीर तीर्थकर ने भी इसी का मान किया। पाली के पीछे हमे साहित्यिक प्राकृत के दर्शन होते हैं। यह महाराष्ट्री, शौरसेनी, मागधी और अर्द्धमागधी रूपों में सामने आती है। इनमे महाराष्ट्री मुख्य है और अधिकाश साहित्य इसी मे मिलता है। बुद्ध और महावीर की भाषाओ से अर्द्धमागधी का सम्बन्ध है, तथा अशोकवाली से भी यह मिलती है। यह महाराष्ट्री के मेल से बढ़ी और मागधी तथा शौरसेनी के मिश्रण का तो फल ही है। वररुचि प्राकृतो मे महाराष्ट्री, पैशाची, मागधी और शौरसेनी के कथन करते है। पैशाची कश्मीरी और पञ्जाबी भापाओं की जननी है। हेमचन्द्र अपभ्रंश के व्याकरणकार विक्रमीय बारहवीं शताब्दी मे हुए थे। आप अर्द्धमागधी, चूलिका पैशाचिका तथा अपभ्रंश के नाम लिखते हैं।

राजशेखर विक्रमीय दसवी शताब्दी के थे । इन्होने देशो के सम्बन्ध मे भाषाओ का वर्णन छोड़ा है, अर्थात् :—

गौड़ (पूर्वी बंगाल) आदि सस्कृत मे स्थित है,

लाट (दक्षिणी गुजरात) प्राकृत मे परिमित है,

मरुभूमि, टक्क (दक्षिणी पश्चिमी पंजाब) तथा भादानक भूत भाषा के सेवी है,

और

मध्यप्रदेश (कन्नौज अतरवेद तथा पांचाल) सर्व भाषाओ मे स्थित है ।

इससे प्रकट है कि उसकाल यहां कई भाषाओ का प्रचार था । दूसरी शताब्दी बी० सी० के व्याकरणकार महर्षि पतंजलि कहते हैं कि मुख्य शब्द तो थोड़े है, किन्तु अपशब्द बहुत है । बिगड़े हुये शब्दो को आप अपशब्द कहकर उन्हे म्लेच्छ बतलाते हैं । इससे प्रकट है कि उनके समय मे प्राकृत भाषा बिगड़कर अथवा विकसित होकर अपभ्रंश के रूप मे बोली जाने लगी थी । भामह और दंडी के लेखो तथा राजा धरसेन के शिलालेखो से प्रकट हुआ है कि ईसवी छठी शताब्दी मे अपभ्रंश साहित्यिक भाषा हो चुकी थी । कालिदास कृत विक्रमोर्वशी मे विक्षिप्त पुरूरवा के कुछ वाक्यो मे अपभ्रंश की छाया कही जाती है । आप गुप्तकाल के कवि माने जाते हैं । बाबू काशीप्रसादजी जायसवाल ईसवी दसवी शताब्दी के बुद्धिसेन नामक कवि की रचना के साथ पुरानी हिन्दी का सामञ्जस्य दिखलाकर हिन्दी की उत्पत्ति उसी काल मे बतलाते है ।

भल्ला हुआ जु मारिया बहिनि महारा कन्तु ।
लज्जेज्जं सुबयंसिअह जइ भग्गा घर एन्तु ।
पुत्ते जाये कवण गुण अवगुण कवण मुयेण ।
जा बप्पी की मुहडी चंप्पिज्जइ अवरेण ।

उपरोक्त दोहे उस काल की अपभ्रंश भाषा के उदाहरण माने

जाते है किन्तु कोई इन्ही को सुगमता पूर्वक पुरानी हिन्दी का उदाहरण मान सकता है।

सन् ९३३ मे देवसेन जैन ने श्रावकाचार ग्रन्थ लिखा। उनका उदाहरण देखिये, जो पुरानी हिन्दी का है।

जो जिय सासण भाषिअउ सो महकहिअउ सार।
जो पाले सइ भाउ करि सोतरि पावइ पार।

इसी प्रकार के दोहे हेमचन्द्र के व्याकरण, कुमारपाल प्रतिबोध, प्राकृति पिगल सूत्र आदि मे मिलते है। अतएव हम देखते हैं कि ईसवी दसवी शताब्दी मे हिन्दी साहित्यिक रूप मे आ गई थी। इससे भी पहले आठवीं शताब्दी के पुड अथवा पुष्य कवि का नाम दोहाकारो मे लिखा है, यद्यपि अभी तक उनके दोहो का उदाहरण नही मिलता। साहित्यिक होने के सौ दो सौ वर्ष पूर्व से भाषा जन समुदाय मे चलने लगती है। अतएव बोलचाल की पुरानी हिन्दी का उत्पत्ति-काल आठवी शताब्दी मे भी माना जाना असंगत नही ठहरता, विशेषतया ऐसी दशा मे, जब कि उस समय दोहो तक का बनना कहा गया है। सं० ८०० (सन ७४३) से लेकर बारहवी शताब्दी तक के तेईस कवियो के समय, नाम, नामग्रन्थ तथा उदाहरण हाल ही मे श्रीयुत राहुल सांकृतायन ने पुष्ट प्रमाणो के साथ प्रकाशित किये है। तेरहवी शताब्दी में हम नरपति नाल्ह और चन्द की कृतियो मे पुरानी हिन्दी परिपक्व रूप मे पाते है। हिन्दी के उत्पत्ति-काल मानने मे आजकल लेखकों मे कुछ मतभेद है। उपरोक्त प्रमाणो के सामने वह शान्त हो जाना चाहिये।

आदिम हिन्दी।

आदिम हिन्दी का समय अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रन्थ मिश्रबन्धु विनोद मे हमने आठवीं शताब्दी से सन् १३८७ तक माना

है, जिसमे सन् १२८६ तक पूर्व प्रारम्भिक तथा इसके पीछे उत्तर प्रारम्भिक समय कहा है। इस लम्बे काल मे अब तक हमे सन् १२८६ तक के ६३ हिन्दी के कवि मिले है, जिनमे ५३ महाराज हम्मीर देव के पूर्ववाले है, और १० पीछे के। इन्ही कवियो मे से २३ नये प्राप्त कवियो के अतिरिक्त पहले समय के २८ ग्रंथ मिले है और दूसरे के तेरह। इन सभो के स्थान निश्चित नही, किन्तु थोडे ही कवियो को छोड़कर शेष के दृढ़ है। जिनके स्थान अनिश्चित है, उनके छन्दादि पर विचार करके स्थानो के विषय मे भी कुछ अटकल लग सकती है। इस प्रकार जोड़ने से इन कवियो मे २० युक्तप्रांत तथा बुन्देलखण्ड के है, ११ राजपूताने के, छः महाराष्ट्र देश के, ५ मुसलमान, राजपूताना, गुजरात, दिल्ली आदि के और एक उज्जैन का। इस प्रकार जान पड़ता है कि इसी आदिम काल से हिन्दी रचना का क्षेत्र व्यापक था। पांच मुसलमान कवियो को ऐसे पुराने समय मे पाने से उसकाल उनमे उन्नति और विद्या प्रेम पाये जाते है, नही तो पराई भाषा मे वे इतना परिश्रम क्यो करते ? इतने कवियो मे १३ जैन थे जो बहुत करके धार्मिक विषयो पर रचना करते थे। इन ४३ कवियो मे दो राजा भी थे, अर्थात् कालिंजर नरेश नन्द तथा महाराष्ट्र देश के महाराजा सोमेश्वर जो सर्वज्ञ भूपाल कहलाते थे। महाराष्ट्र देशवालो का हिन्दी पर उस काल इतना प्रेम दिखलाना प्रकट करता है कि तब उनकी भाषा हिन्दी से उतनी पृथक् नही समझी जाती थी, जैसी कि अब। कहते हैं कि राजा नन्द ने महमूद ग़जनवी को हिन्दी कविता मे एक प्रार्थना पत्र भेजा था, जिससे प्रसन्न होकर उसने न केवल इनके राज्य पर चढाई न की, वरन् अपना जीता हुआ भी कुछ देश इन्हें सौंप दिया। यह कथन हमने किसी ऐतिहासिक ग्रन्थ मे नही देखा है। २३ नवीन प्राप्त कवि नाथ सम्प्रदाय के है जिनमे शाक्त पूजन की प्रधानता थी।

वीर गाथा ।

राज यश वर्णन मे उस समय कई ग्रन्थ बने, जिसके कारण हमने अपने विनोद मे लिखा है कि पूर्व प्रारम्भिक काल मे राजाओ के यश कीर्त्तन की प्रथा हिन्दी मे मुख्यतया स्थिर रही, किन्तु उत्तर प्रारम्भिक मे राजयश गायन की चाल कुछ शिथिल हुई, धर्म ग्रन्थो के प्रचार का प्रारम्भ हुआ, और प्रेम कहानी लिखने की जड़ पडी। पूर्व-काल मे अपभ्रंश या प्राकृतवत् मिश्रित हिन्दी का चलन रहा, किन्तु उत्तर मे अवधी, व्रजभाषा, राजपूतानी, पञ्जाबी, खडी बोली आदि सभी भाषाओ मे कवियो ने रचना की, अथच गद्य मे व्रजभाषा चली। यद्यपि महात्मा गोरखनाथ गोरखपुर के थे, तथापि गद्य मे उन्होने व्रजभाषा का प्रयोग किया, जिससे इसके उस काल सारे देश मे कुछ कुछ महत्ता युक्त होने का पता लगता है। जब अवधी प्रात का कवि अपनी प्रान्तीय भाषा को छोड़कर व्रजभाषा को सत्कारता है, तब अनुमान हो सकता है कि उस समय गद्य मे अवधी का प्रयोग न था, किन्तु व्रजभाषा का था, अथच वे गद्य ग्रन्थ अब तक प्राप्त नहीं हुए है। हमारे विनोद के पीछे साहित्य इतिहास के तीन लेखको ने पूर्व प्रारम्भिक काल मे न केवल वीर काव्य का प्राधान्य माना है, वरन् इसे वीर गाथा काल ही कहा है, इसलिये इस विषय पर भी कुछ विचार कर लेना चाहिये। इस समय हमे ग्यारह ऐसे कवि मिलते हैं, जिन्होने राजयश कीर्तन किया। उनके नाम है :—खुमान रासा कार (नाम अज्ञात), चन्द बरदाई, जल्हन, जगनिक, केदार, मधुकर, बारद्र वेणा, कुमारपाल चरित्रकार, नरपति नाल्ह, नल्लसिह और शारंगधर (शार्ङ्गधर)। अब इनका कुछ सूक्ष्म वर्णन भी दिया जाता है। खुमान रासो मे प्रक्षिप्त भाग बहुत है। यह निश्चय नही कि इसका कितना भाग उस समय बना। यह ग्रन्थ सन् ८१३ से ८४३ तक राज्य करनेवाले चित्तौर नरेश खुमान की

मुसलमानो पर २४ विजयो का कथन करता है, किन्तु पीछे से महाराणा प्रतापसिह तक के वर्णन देता है। यह महाराणा सत्रहवी शताब्दी के है। अतएव यह नही कहा जा सकता कि खुमान रासो का कितना भाग उन दिनो का है। चन्दबरदाई और तत्पुत्र जल्हन के तत्कालीन अस्तित्व पर ही पुरातत्ववेत्ता म० म० राय बहादुर प० गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझा ने संदेह प्रकट करने के कई प्रमाण दिये है। इस विषय पर यहां कथोपकथन अतिव्याप्ति मे चले जायेगे, अतएव केवल निष्कर्ष लिखा जाता है, कि चन्द्रकृत पृथ्वीराज रासो २५०० पृष्ठो का भारी ग्रन्थ होकर भी उसकाल कितना बड़ा था, सो अज्ञात है, क्योकि उसमे क्षेपको की ख़ासी भरमार है। था वह उन दिनो अवश्य, किन्तु आकार संदिग्ध है। नरपति नाल्ह का बीसलदेव रासो एक छोटा सा सौ सवा सै पृष्ठो का गीत काव्य है, जिसमे भी कुछ भाग क्षेपक है। इसमे कोई वीर काव्य है भी नहीं, वरन् एक वीर का शृङ्गारपूर्ण वर्णन मात्र है। जगनिक आल्हाकार है, किन्तु उनका ग्रन्थ पूर्णतया लुप्त है, और वर्तमान आल्हा मे उनका ढग ही ढग समझ पड़ता है। केदार और मधुकर ने महाराजा जयचन्द का यशगान किया, किन्तु उनके ग्रन्थ अप्राप्त होने से यह पता नहीं लगता कि उनमे वीर काव्य था या किसी और रस का। बारदर बेणा का नाम ही नाम शेष है। कुमारपाल चरित्र भी अप्राप्त सा होने से उसका विषय अज्ञात एवं अस्तित्व अनिश्चित है। नल्लसिह का विजयपाल रासो वीर काव्य है और शारंगधर का हम्मीर रासो भी। शारंगधर ने जहां एक वीर काव्य बनाया, वही दो और भी लिखे। फल यह निकलता है कि इस काल मे हमे केवल तीन वीर काव्य के दृढ़ ग्रन्थ मिलते हैं। जहां तीन इस विषय की पुस्तके है, वही कुल ग्रन्थो की संख्या २८ है। ऐसी दशा में इस पूरे समय को वीर गाथा काल कहना अनुचित समझ पड़ेगा। हां अन्य विषयों के साथ नृप यशगान अच्छा हुआ,

जैसा कि विनोद मे लिखित है। इस गान मे कुछ वीर काव्य भी बना।

जातियां।

उपरोक्त साहित्य के सम्बन्ध मे काव्य सबंधी गुण दोषो के विवेचन मे न जाकर हम अपने विषय पर ही चलेंगे। भारतवर्ष के लिये यह समय क्रान्ति का था। हमारे यहां अब तक चार क्रान्तियां हुई हैं, अर्थात आर्यागमन, बौद्धमत प्रचार, मुसलमानागमन तथा बृटिश साम्राज्य स्थापन। हमारी हिन्दी का प्रारम्भकाल तीसरी क्रान्ति से सम्बद्ध है, और हिन्दी ने चौथी क्रान्ति भी देखी। भारत प्रायः सदा से आगन्तुको का क्रीडास्थल रहा है। हमारे सबसे प्राचीन निवासी कौलेरियन कहलाते थे, जिनके पीछे द्राविडो का समय आया, किन्तु यह अज्ञात है, कि यह लोग यही के है अथवा कही बाहर से आये। सबसे पहले ज्ञात आगन्तुक आर्य हैं, जिनमे भारतीय आदिम निवासियो के कारण वर्णभेद स्थापित होकर समय के साथ जाति भेद मे परिणत हुआ। आर्यों का अनार्यो से द्वेषभाव बहुत थोड़े काल रहा। इन दोनों का प्रेमपूर्ण बर्ताव यजुर्वेद के समय से ही मिलता है। इनके धर्म शीघ्र एक हो गये और ये समाज में मिल गये। यद्यपि आर्यों की कन्याये अनार्यों मे न गईं तथापि अनार्य कन्याये आर्य महिला और आर्य माता के रूपो मे प्रतिष्ठित हुई, जिससे माता पक्ष से बहुत नहीं तो कुछ अनार्य अवश्य हमारे पूर्व पुरुष और पिंड भोक्ता हुए। समय के साथ यहां गुर्जर, कुशान, शक, हूण, सीदियन आदि प्रेमपूर्ण अथवा युद्ध गर्भित ढगो से आ आकर हममे मिलते रहे। ऋग्वेद के समय मे वही आर्य साथ ही साथ पुरोहित, युद्धकर्त्ता, व्यापारी एवं कृषक होता था, किन्तु जातिभेद के दृढ होने से शूद्रों का ऊचे कामो मे कम प्रवेश रहा,

तथा समय के साथ राज्य शासन मे वैश्यो का भी हाथ न रह गया। धीरे धीरे क्षत्रिय राजा और ब्राह्मण मत्री की प्रणाली स्थिर हुई। इससे भी घटकर राजकीय भार जातियो से व्यक्तियो मात्र पर रहने लगा, और देश प्रेम, एव जातीयता के विचार धर्म संस्थापन मे दृढ़ रहते हुए भी राज्य शासन प्रणाली मे शिथिल पड़ गये। देश रक्षा राजा ही की कृत्ति रह गई। नियम राजा भी नही बना सकता था, वरन् शिष्टो तथा समाज द्वारा स्थापित नियमो का पालन मात्र कर सकता था। नवीन कर साल साल नही बिठलाये जाते थे, वरन् राजाओ को बद्ध कर वसूल करके राजकीय व्यय उसी आय से निबटाना पड़ता था। वे कर व्यय के न्यूनाधिक्य से घटते बढते न थे, वरन् व्यय ही उन्ही के अनुसार चलता था। राजा लोग अपने अधिकार बढाने के प्रयत्न मे नही लगते थे, और राजा प्रजा दोनो सुखपूर्वक पालक पालित का काम चलाते थे। एक राज्यवंश के नष्ट हो जाने से दूसरा उन्ही नियमो पर चलने लगता था, और प्रजा को राज्यो के बनने बिगड़ने से कोई हानि लाभ न था। अतएव राज्य रक्षा की ओर उनका ध्यान भी न था, हां, यदि कोई राजा अनुचित कार्य करता तो पर चक्रवृद्धि के समय प्रजा छिपे छिपे शत्रु से मिलकर राजवंश परिवर्तन मे योग भी दे देती थी। इन कारणो से धीरे धीरे देशप्रेम और जातीयता के भाव बहुत मन्द हो गये, और देश रक्षण पर लोगो का विशेष ध्यान न रहा। समाज वर्ण-विचार पर सबसे अधिक ज़ोर गृहस्थो के लिये तथा गुरु प्रणाली पर धार्मिको के लिये देता रहा। कोई निगुरा अच्छा धार्मिक नही, और कोई जाति हीन व्यक्ति अच्छा मनुष्य नही। इतनी ही धारणाओ पर समाज का बल रहा। स्वय कबीर साहब को गुरुपन की भक्ति न होते हुए भी निगुरापन से बचने को गुरु करना पड़ा था। इसीलिये जबकि सन् १२४ के निकट आन्ध्र नरेश गौतमी पुत्र ने शक नहापा को परास्त करके उससे सौराष्ट्र छीन लिया, तब

पण्डितो ने लिखा कि उसने शक पहलव आदि जाति हीन विदेशियो को देश से निकाल दिया। फिर भी उसी शक नरेश की कन्या के साथ गौतमी पुत्र के बेटे का विवाह हुआ। उसपर कोप केवल इस कारण था कि नवागन्तुक विदेशी होने से शक लोग शायद जाति की कड़ाइयो को कम मानते थे। ठेठ दक्षिण के इतिहास मे आया है कि पौराणिक काल मे जब एक बार एक राजा ने दूसरे की राजधानी काची पर अधिकार जमाया, तब लूटने के स्थान पर वहां के मन्दिरो मे बहुत सा धन चढाया तथा पुजारियो के आशीर्वाद का वह भागी हुआ। प्रयोजन यह है कि भारत मे राजाओ की पराजय से भी बहुधा प्रजा पीड़न नही होता था, और न प्रजा राज संकट को अपना संकट समझती थी। उनका सकट सामाजिक पीडन मात्र से समझा जायगा, यही प्रथा सारे पौराणिक काल मे जारी रही।

हमारे प्राचीन आगन्तुको मे आर्यों के पीछे सबसे पहले फ़ारसी मग समझ पड़ते है, जिन्होंने कृष्ण पुत्र शाम्ब की सहायता से मुल्तान मे सूर्य पूजा स्थापित की। इसी से वे उसे मूल स्थान कहते थे, जिसका अपभ्रंश नाम मुल्तान है। भविष्य पुराण मे कुछ इशारा सा मिलता है, कि ये ही मग सबसे पहले हिन्दू बनाये गये। इनके अनन्तर गुर्जर लोग शाति पूर्वक आये। प्रमार इन्हीं की शाखा समझ पडते है। सिकन्दर के जीते हुये स्थानो को भारतीयो ने ६, ७ वर्षों ही मे जीत लिया, किन्तु उसके कुछ सैनिक फारस आदि मे रहे, जिनके वशधर सीदियन कहलाकर भारतीय सभ्यता मे मिल गये। अनन्तर यहां कुशान और शक आये जो विजयी होकर राज करने लगे, तथा भारतीय सभ्यता मे मिलकर ये भी क्षत्रिय हो गये। भारतीयो ने इनको अछूत अथवा असहभोज्य न माना, वरन् इनसे भी रोटी बेटी का व्यवहार बराबर रक्खा। हूणो ने लूट खसोट, मार कूट के बहुत उत्पात किये, किन्तु वे भी समय पर क्षत्रिय, जाट, आदि होकर

भारतीय सभ्यता मे मिल गये और कोई पार्थक्य न रहा। रोटी बेटी का सम्बन्ध क्षत्रियो ही तक सीमित न रहकर ब्राह्मणो से भी होता था। बुद्ध भगवान के समय मे ब्राह्मण कुमारी मागन्धी महाराजा उदयन को व्याही थी, तथा आठवी शताब्दी तक मे यायावर ब्राह्मण की स्त्री क्षत्रिय कन्या थी। यायावर ऐसे तपस्वी को कहते है जो केवल भिक्षा द्वारा गुजर करे और एक दिन से अधिक भोजन का सामान घर मे न रक्खे, अर्थात् नित्य भिक्षा द्वारा कालक्षेप करे। ऐसा तपस्वी भी क्षत्रिय कन्या से विवाह कर सकता था।

मुसलमानागमन।

अब मुसलमानो का हाल उठाया जाता है। सन् ७१२ ई० मे ख़लीफा बगदाद की सेना ने ब्राह्मण नरेश दाहर से सिन्ध छीनकर अपना अधिकार जमाया। यद्यपि हजरत मुहम्मद के ही समय मक्का मे प्रतिमा टूटकर प्रतिमालय मुसलमानी पूजनालय बना था, अथच बलप्रयोग द्वारा धर्म बढाया गया था, तथापि खलीफाओं ने सिन्ध मे राजकीय बल पर ही संतोष करके उक्त बातो का प्रयोग यहां न किया, जिससे तत्कालीन भारत मे मुसलमानो से कोई विभ्राट् न हुआ, वरन् दोनो जातियो मे प्रेम बढा और हिन्दू पण्डितों का बग़दाद मे बुलावा तथा समादर हुआ। तत्कालीन अरबो ने संगीत, वास्तुकला, वैद्यक, उपन्यास, चित्र, दर्शन, राज्य शासन, नीति आदि मे हिन्दुओ के बढे हुए ज्ञान से लाभ उठाया। उस काल तक अफ़ग़ानिस्तान भी भारत का अग चला आता था, यहांतक कि स्वयं महर्षि पाणिनि और चाणक्य अफगान थे। सिन्ध पराजय के पूर्व काबुल मे बौद्ध नरेश का शासन था, जो ख़लीफ़ा बग़दाद के कारण ध्वस्त तो हुआ, किन्तु उनका अधिकार काबुल मे न हुआ और काश्मीर की सहायता से वहां ब्राह्मण राज्य स्थापित हो गया।

अनन्तर पश्चिमीय प्रान्तो के बलशाली मुसलमानो ने उसे ध्वस्त करके वहा अपना अधिकार जमाया, और इधर सिन्ध मे अरबो का शासन रहा। इसको किसी हिन्दू ने उठाने का प्रयत्न न किया, और केवल दक्षिणी सिन्ध पर कुछ काल के लिये एक क्षत्रियवश शासक हुआ, अथच मुसलमानी राज्य स्थापन से अब तक वहा विदेशियो का ही अधिकार रहा है।

इधर गज़नी मे महमूद गजनवी शाह बना, जिसने सन् १००१ से १०२४ तक १२ धावे भारत पर किये। उसका विचार केवल लूट या विजय पर सीमित न था, वरन् वह यहां पर मुसलमानी धर्म का प्रचार भी चाहता था। तत्कालीन मुसलमानो ने हिन्दुओ मे मुशरिकपन (एकाधिक ईश्वर अर्थात ईश्वर का शरीकदार मानना) तथा बुतपरस्ती (प्रतिमा पूजन) के सबसे बड़े दोष समझे। मुशरिकपन यहा वास्तव मे न था, किन्तु साधारण हिन्दू अपना असली धर्म न जानकर एकाधिक ईश्वर अवश्य मानते थे। प्रतिमा पूजन बौद्ध एवं कुशान काल से पुष्ट होकर अपने यहां है ही। महमूद ने पजाब, गुजरात, क़न्नौज और बुंदेलखण्ड जीते, तथा सोमनाथ के प्रसिद्ध शैव मन्दिर की मूर्त्ति को तोडना चाहा। इस पर ब्राह्मणो के उत्तेजन से हिन्दुओं में भारी सनसनी फैली, और कराल युद्ध हुआ, किन्तु महमूद ही की विजय रही। तब ब्राह्मणो ने बहुत गिडगिडाकर तथा भारी धन का लालच देकर महमूद से प्रतिमा न तोड़ने की प्रार्थना की, किन्तु उसने कहा कि मुझे प्रतिमा बेचनेवाले के स्थान पर उसके तोड़नेवाले का यश प्रियतर है। उस प्रतिमा के तोड़ने से उसे भारी धनराशि भी मिली जो ब्राह्मणो के कहे हुए धन से कई गुना अधिक थी। प्रतिमा की निर्बलता दिखाने को ही महमूद ने ऐसा किया था किन्तु इससे हिन्दू धर्म तथा हिन्दुओ का भारी अपमान हुआ। महमूद ने उत्तर पश्चिमी पंजाब तथा सीमाप्रान्त का ब्राह्मण राज्य भी स्ववश कर लिया। इस ग़ज़नी वंश का

अधिकार पश्चिमी पंजाब मे सन् १००१ से ११७५ तक रहा। मुसलमानी अन्य शासको के समय निम्नानुसार है —

मुसलमानो राजवंश।

सार्वभौम शासक।

१।	गोरी वश	११६२	से	१२०६	तक
२।	गुलाम वश	१२०६	से	१२६०	तक
३।	खिल्जी वंश	१२६०	से	१३२०	तक
४।	तोगलक वंश	१३२०	से	१३६८	तक
	अराजकता	१३६८	से	१४१४	तक
५।	सैयद वश	१४१४	से	१४५०	तक
६।	लोदी वंश	१४५०	से	१५२६	तक
७।	मोगल पहले	१५२६	से	१५४०	तक
८।	सूर वश	१५४०	से	१५५५	तक
९।	मोगल वश	१५५५	से	१८५८	तक
१०।	खुसरो खां परवार	१३१७	से	१३१८	तक

स्थानीय शासक

१।	हिन्दू विजयनगर	१३३६	से	१५६५	तक
२।	मुसलमानी बहमनी	१३४७	से	१५२६	तक
३।	बीजापुर (आदिलशाही)	१४९०	से	१६८६	तक
४।	गोलकुण्डा (कुतुबशाही)	१५१२	से	१६८७	तक
५।	अहमदनगर (निजामशाही)	१४९०	से	१६३७	तक
६।	बीदर (बारीदशाही)	१४९२	से	१६०९	तक
७।	बरार (इमादशाही)	१४८४	से	१५७५	तक
८।	खानदेश (फारूकशाही)	१३८८	से	१५९९	तक
९।	मालवा (गोरी वश)	१४०१	से	१५६४	तक
१०।	गुजरात (तुर्क वंश)	१४०१	से	१५७३	तक

११।	बंगाल (पठान वंश)	१३४०	से	१५७६	तक
१२।	जौनपुर (तुर्क वंश)	१३६६	से	१४७६	तक
१३।	कश्मीर (स्वतन्त्र वंश)	१३२५	से	१५८६	तक

मुगलों के पीछे अन्य प्रान्तीय शासक।

बंगाल	१७२५	से	१७६४ तक
औध	१७३२	से	१८५६ तक
पंजाब (सिक्ख)	१७६०	से	१८४८ तक (सिक्खो मे अबभी कई शासक हैं, जिनमे पटियाला प्रधान है।)
निज़ाम दक्खिन	१७४०	से	वर्त्तमान
महाराष्ट्र	१६४६	से	१८१८ तक
पेशवा	१७१७	से	१८१८ तक (पेशवा महाराष्ट्रो मे है।)

बुंदेलखण्ड और राजपूताना प्रायः सदैव स्वतन्त्र।

महाराष्ट्रों के कई घराने अब भी वर्तमान शासक हैं। इनमें बडौदा, ग्वालियर, इन्दौर और कोल्हापुर प्रधान है।

मैसूर भी प्रायः सदैव स्वतन्त्र रहा है।

नैपाल भारत राज्य का अंग नहीं है तथा कश्मीर अब भी शासक है।

अनेकानेक अन्य सैकडो देशी रियासतें अब भी वर्तमान है। अगरेज़ी राज्य के समय से अन्य शासको के अधिकार ससीम है।

अँगरेजी साम्राज्य १७५७ से और प्रधानतया १८१८ से है।

अब हम मुसलमानी राज्य का कुछ सूक्ष्म वर्णन भी किये देते है। महमूद ग़ज़नवी ने पंजाब के अतिरिक्त क़न्नौज, बुंदेलखंड, और गुजरात जीते। जिसकाल केवल २४००० सुशिक्षित दल द्वारा महमूद उत्तरी भारत की दुर्गति कर रहा था, उसी समय ठेठ दक्षिण

का राजेन्द्र चोल छः लाख सेना का स्वामी था, किन्तु उत्तरी भारत से अपने को वह इतना असम्बद्ध समझता था कि उसने अपना बल बर्मा, बंगाल आदि जीतने मे लगाया, न कि महमूद को हराने मे। मध्यभारत के भोजदेव, बुंदेलखंड के धंग, तथा क़न्नौज, अजमेर, दिल्ली और ग्वालियर के नरेशो ने धर्म या भारतीयता के नाते से महमूद और उसके पिता सुबुक्तगीन से लड़ने मे पंजाब के ब्राह्मण नरेश की सहायता की थी। जोर इतना बढ़ा कि स्त्रियो ने आभूषण तक बेचकर युद्धार्थ चन्दा दिया था, किन्तु शताब्दियो से बिगड़े हुये ढग एवं अनुन्नत भारतीय युद्ध विद्या पाश्चात्य एशिया के समुन्नत युद्ध कौशल का सामना न कर सकी, और थोड़े ही से मुसलमान सैनिको ने भारतीय बडी बड़ी सेनाये सुगमता पूर्वक पराजित कर दी। फिर भी महमूद के द्वारा भारत को नोटिस (विज्ञप्ति) मात्र मिली। भारतीय तत्कालीन शैथिल्य महमूद से हारने मे इतना हीन न कहा जावेगा, जितना कि उसके बलहीन उत्तराधिकारियो से राज्य फेर न लेने मे कहलावेगा। सिकन्दर से भी पजाब हारा था, किन्तु केवल छः सालो मे फिर स्वतन्त्र हो गया। जो कौशल उस काल चाणक्य और चन्द्रगुप्त ने दिखलाया, वह प्रगट करने वाला गेरहवी शताब्दी मे कोई भारतीय न था।

महमूद का शरीरान्त १०३० मे हुआ और १०४१ में ही सल्जूकों से हारकर महमूदात्मज मसऊद को पजाब भाग आना पड़ा। सन् ११७५ में शहाबुद्दीन ग़ोरी उत्तर पश्चिमी पंजाब का स्वामी हो गया। इतने दिनों की मुसलमानी निर्बलता से हिन्दू लोग उन्हे जीत तो न सके, किन्तु उत्तरी भारत मे इनका बल बढ़ा। हम देखते है कि उसकाल अजमेर और दिल्ली के चौहानो, काशी क़न्नौज के परिहारो, मगध तथा पश्चिमी बंगाल के पालों और पूर्वी बंगाल के सेनो मे उत्तरी भारत बॅटा था। इनसे कुछ दक्षिण गुजरात, चित्तौर, ग्वालियर और बुंदेलखंड भी कुछ महत्ता युक्त थे। इनसे भी दक्षिण मध्य भारत,

हुआ और १२०६ मे शहाबुद्दीन की घक्करो द्वारा मृत्यु हुई, तथा दास वंश भारत का शासक हुआ। दासो मे कुतुबुद्दीन, अल्तमश, और बल्बन मुख्य शाह थे। दासो के समय मे मंगोलो के चार धावे भारत पर १२४२ तक हुये, जिनमे १२२१-२२ वाला चगेज़खां हलाकू का आक्रमण मुख्य था। इसमे बहुत मार काट हुई। तोग़रल बेग ने बंगाल मे राजविद्रोह खड़ा किया।

खिल्जी वश मे अलाउद्दीन प्रधान शासक था। इसका राजत्व-काल १२६४ से १३१४ तक रहा। इसने १२६४ से १३११ तक महाराष्ट्र देश का देवगिरिवाला यादव राज्य ध्वस्त किया, अथच १३०३ मे चित्तौर तथा १३०४ मे रणथम्भौर भी पराजित किये। इसके समय मे पूर्वकालीन मुसलमानी साम्राज्य सबसे अधिक विस्तृत हुआ। हिन्दुओ पर जज़ीया पहले ही से लगता था। अलाउद्दीन ने उसमे कडाई करके यह आज्ञा दी कि प्रत्येक हिन्दू यह कर अपने ही हाथ से दे जावे, किसी नौकर आदि द्वारा न भेजे। केवल ब्राह्मणो को यह कर नही देना होता था। खिल्जी वश के राजत्व-काल मे एक मुसलमान किया हुआ खुसरो खां नामी परवार एक साल के लिये शासक हो गया, और उसने मुसलमानो पर भी बहुतेरे अत्याचार कर लिये। तोगलक़ वंश बलहीन था। हिन्दुओ पर अत्याचार पहले ही से चले आते थे। फीरोज तुगलक ने इन्हे और बढ़ाया, तथा ब्राह्मणो से भी जजीया लिया। इस कर को हिन्दू लोग स्वभावश· बुरा समझते थे। अलाउद्दीन के सन् १३१४ मे मरने के पीछे अकबर के राज्यारम्भ काल तक दिल्ली का मुसलमानी साम्राज्य बलहीन रहा। इन लोगो के स्थायी विजय हुए १२०३ के बुन्देल-खंड पराभव तक अथवा अलाउद्दीन के समय मे। उत्तरकालीन दासबल भी शिथिल था। तोग़लक़ो के राज्य काल मे ही या उनके पीछेवाली अराजकता मे विजयनगर, बहमनी राज्य, जौनपुर, मालवा, गुजरात, दक्षिण, बंगाल आदि दिल्ली से स्वतन्त्र हो गये।

कश्मीर को १३२५ मे एक स्वतन्त्र मुसलमान शक्ति ने जीता। इसका राज्य १३२५ से १५५० के लगभग तक चला, और तब चक वंश का राज्य वहां १५८६ तक रहा। इसके पीछे वह मोग़लो के अधिकार मे आया। १३६८ वाले तैमूर के धावे से रहा सहा भी तोग़लक़ बल नष्ट हो गया, और तैमूर द्वारा दिल्ली मे भारी जन विनाश हुआ। वह तो लूट पाटकर चल दिया और यहाँ १३६८ से १४१४ तक अराजकता रही। अनन्तर बलहीन सैयद वश सन् १४५० तक राज्य करता रहा, किन्तु इसका राज्य दिल्ली ही के इर्द गिर्द था। लोदी शासक भी बलहीन थे, किन्तु बहलोल ने १४७३ में जौनपुर जीतकर दिल्ली मे मिलाया। १५२६ मे बाबर ने मुगल राज्य दिल्ली मे स्थापित किया। इसने बलशाली चित्तौर नरेश राणा सागा को पराजित किया तथा बंगाल और बिहार भी जीते।

सूर नरेशो में शेरशाह मुख्य था। इसने हिन्दुओ को भी राज्य में भारी भारी पद दिये। हुमायूं ने १५५५ मे खोया हुआ मुगल राज्य फिर से प्राप्त किया, किन्तु उसे साम्राज्य बनाने का श्रेय अकबर को है, जिन्होने १५५६ से १६०५ तक राज्य किया। आपने हिन्दुओ से बहुत प्रेमपूर्ण व्यवहार किया, राजपूतो से वैवाहिक सम्बन्ध खोला, तथा हिन्दुओ को राज्य मे ऊंचे से ऊचे पद दिये। इनका स्थिर किया हुआ सुव्यवहार १६६६ तक स्थापित रहा, और औरंगज़ेब (१६५८ से १७०७) द्वारा मंदिर तोड़ने, ज़जीया बाधने एवं दाक्षिणात्य मुसलमानी तथा महाराष्ट्र बल भंग करने के प्रयत्नो से ही नष्ट हुआ। अकबर ने जज़ीया छोड़ दिया था। मोग़ल साम्राज्य बहुत दृढ़तापूर्वक स्थापित था, और यदि वे शासक अकबर की नीति पर चले जाते तो वह जल्दी टूटनेवाला न था। उसका ध्वस राजकुमारो के राजद्रोह एवं औरंगज़ेब की कट्टरता से हुआ। मोग़ल शहज़ादे उचित उत्तराधिकार न मानकर अपने अपने को शासक बनाना चाहते थे। जहांगीर ने बाप का सामना किया। शाहजहां ने बड़े भाई को मारा

तथा पिता से युद्ध किया और औरंगज़ेब ने तीन भाई, कई भतीजो एवं दो पुत्रो को मारा या हराया, तथा बाप तक को क़ैद किया। औरंगज़ेब के पीछे भी ऐसे ही झगडे चलते रहे जिससे विशाल मोग़ल साम्राज्य अपने ही झोको से चूर हो गया, और औरंगज़ेब की मृत्यु के दश वर्ष ही पीछे पेशवा बालाजी विश्वनाथ ने दिल्ली मे घुस कर मोग़ल सम्राट को पदच्युत करके दूसरा बादशाह गद्दी पर बिठलाया। इसी समय से मोगल बल अस्त हो गया, और धीरे धीरे प्रान्तिक राज्य फिर से स्थापित हुए जैसा कि ऊपर के चक्र मे लिखा जा चुका है।

अगरेज़ो ने १७५७ से बंगाल मे राज्य सा स्थापित किया। यह अगरेज़ी बल क्रमशः बढ़ता हुआ १८१८ मे या इसके इधर उधर साम्राज्य के रूप मे परिणत हुआ। उस काल से, विशेषतया १८६१ से, प्रतिनिधि सत्ता का प्रभाव भारत में बढ़ रहा है। महाराष्ट्रो ने एक साम्राज्य सा स्थापित कर लिया था, किन्तु कई कारणो से वह स्थायी न हो सका। सिक्खो का एक धार्मिक सम्प्रदाय मात्र था, किन्तु औरंगज़ेब के कट्टरपन से उन्होने सामरिक शक्ति प्राप्त करके क्रमश: राज्य स्थापित किया, जो १७६० से १८४८ तक चला। उनमें महाराजा रणजीतसिंह की प्रधानता थी, तथा महाराष्ट्रो मे शिवाजी की।

हिन्दी साहित्य का प्रभाव।

भारतीय इतिहास का यह परम सूक्ष्म डोर दिखलाकर अब हम यह बतलाने का प्रयत्न करेंगे कि हिन्दी साहित्य का इस इतिहास पर क्या प्रभाव पड़ा? आठवीं शताब्दी मे कुमारिल्ल भट्ट और शंकराचार्य्य के प्रयत्नो से उत्तरी भारत मे बौद्ध मत की हेयता तथा हिन्दू मत की महत्ता हुई। शंकर स्वामी ने ज्ञान गरिमा पूर्ण अद्वैतवाद

चलाया। भारत के पीछेवाले आध्यात्मिक वाद बहुत करके इसी के सहारे चले है। आप शैव भी थे किन्तु आप के सिद्धान्तो मे ज्ञान की प्रधानता थी तथा भक्ति की ऊनता। इनके पीछे दो तीन शताब्दियो तक भारत ने कोई भी भारी गरिमापूर्ण व्यक्ति न उत्पन्न किया। महमूद के पहले हिन्दी कवियो मे नाथ कवियो के अतिरिक्त केवल पुण्ड या पुष्य बन्दीजन (आठवो शताब्दी), देवसैन जैन (९३३), और भुवाल (९४३) के नाम आते है। इनमे पहले वाले की कोई रचना नही मिलती, दूसरे की कविता बिलकुल साधारणी है, और तीसरे के भगवद्गीता का अनुवाद भाषा को देखते हुये उसका समय कुछ सन्दिग्ध कर देता है।

संवत कर अब करौं बखानू। सहस्र सो सम्पूरन जानू।

यह भाषा ऐसी सुव्यवस्थित है जैसी उस काल नही मिलती। यह उस काल के दो ढाई सै वर्ष पीछेवाली भाषा के समान है। ग्रन्थ भी अनुवाद मात्र होने से मौलिक नही है। अतएव कहना पड़ता है कि महमूद के पहले हमारी हिन्दो समाज को कोई कथन योग्य उपदेश नही देती। दसवी शताब्दी की अध्यात्म रामायण तथा बारहवी शताब्दो के गीतगोविन्द (जयदेवकृत) और हनुमन्नाटक (दामोदर मिश्र कृत) ऐसे ग्रन्थ है जिनके प्रभाव समाज पर पड़े, किन्तु ये सस्कृत ग्रन्थ हैं, हिन्दी के नही। ख़लीफ़ा मसूर (७५३-७४) तथा हारूनुलरशीद के समय बहुत से हिन्दू पंडित बग़दाद जाकर वहा प्रभाव डाल सके थे, किन्तु शकर के पीछे दो तीन शताब्दियो तक भारत पर किसी उपदेशक या कवि का भारी प्रभाव न पड़ा। महमूद के समय राजा नन्द कालिजर में थे, जिनकी रचना का प्रभाव स्वय महमूद पर पड़ा था, जैसा कि ऊपर दिखलाया जा चुका है।

महमूद के पीछे तथा शहाबुद्दीन के पहले हमे कई कवि मिलते हैं जिनके कुछ प्रभाव भी थे। महाराजा सोमेश्वर (११२७ से ३९) महाराष्ट्र देश के शासक तथा हिन्दी के कवि थे। आपके विद्या

प्रेम का उस ओर अच्छा प्रभाव पड़ा। खुमान रासो का प्राचीन भाग इसी समय अथवा इससे कुछ पूर्व का हो सकता है। उसमे वर्णन अच्छा है तथा राजयश कथन के अतिरिक्त भी उसका प्रभाव समझ पड़ता है। उसमे खुमान द्वारा कुछ बलहीन मुसलमानो का पराभव कथित है। अपना राज्य बचाने मे तो खुमान समर्थ हुये किन्तु मुसलमानो को यहां से निकाल न सके। देश बचाना भी महत्कार्य था, तथा खुमान रासोकार इन प्राचीन विजयो के वर्णनो द्वारा युद्धकर्त्ताओ को उत्तेजना प्रदायक तथा वीर यश कीर्तन एवं संरक्षण द्वारा ससार मे वीरता का बढानेवाला है। यही बात सभी ऐसे रासाओ अथच उत्कृष्ट वीर काव्यो के विषय मे कही जा सकती है। खुमान रासो प्राचीन इतिहास का भी अच्छा पोषक है, क्योकि इसी के वर्णनो द्वारा चित्तौर का तत्कालीन इतिहास सुरक्षित रहा, नही तो वह लुप्त हो सकता था। बीसलदेव रासो सन् ११५५ का ग्रन्थ है। यह गीत काव्य कहा जाता है, यद्यपि इसमे कोई गाने नही हैं और यह साधारण छन्दो का ग्रन्थ है। इसमे एक प्रबन्ध भी वर्णित है, यद्यपि कवि ने बीसलदेव के विजयो का वर्णन न करके उनकी घराऊ घटनाओ मात्र का कथन किया है। सस्कृत का ललित विग्रह राज नाटक उसी समय बना और उसमे खुमान के विजयो का अच्छा कथन है। फिर भी नरपति नाल्ह अपने बीसलदेव रासो मे साधारण घटनाओ मात्र में मस्त है। इस ग्रन्थ का कोई स्थिर प्रभाव पडना नही समझा जाता है। केदार, मधुकर और बारदर बेणा जयचंद तथा उनके पुत्र शिवजी के राजकवि थे। जयचंद ने भारत का भारी अपकार किया। यदि इनमे विकट मूर्खता न होती और पृथ्वीराज को कन्नौज की सहायता मिलती, तो उस काल भारत पतन न होता, यद्यपि पीछे ऐसा होना संभव था। इसीलिये संसार जयचंद के नाम को घृणा की दृष्टि से देखता है। इन्होने दूसरे ही वर्ष अपनी भूल का उचित दंड पाया, किन्तु भारत

सत्यानाश हो ही गया। इसीलिये किसी ने इन तीनो कवियों के ग्रन्थ सुनने न चाहे, और ये उचित ही लुप्त हो गये। जगनिक के आल्हा काव्य ने लुप्त होकर भी देश पर भारी प्रभाव छोड़ा है। अब तक ग्रामो मे आल्हा गाया जाता है, जिससे वीरवर आल्हा, ऊदल और मलखान के नाम अमर है, तथा वीरता का भारी उत्तेजन भारतीयो को होता है। आल्हा साधारण कवित्व गुण रखते हुये भी अपने ढग का अनमोल क्या अद्वितीय-प्राय युद्ध काव्य है। इसका प्रभाव देश पर बहुत व्यापक है। कुमारपाल चरित्र (सन् १२४३) लुप्त प्राय है, और इसका अब कोई प्रभाव नही है। नल्हसिह भाट कृत विजयपाल रासो (सन् १२९८) अच्छा युद्ध काव्य है, जिसमे उमंगवर्द्धन का विशेष गुण है। शारंगधर कृत हम्मीर रासो (सन् १३००) भी एक सुकवि की रचना का सुस्वाद देता है, ऐसा समझ पडता है। उस काल के रासो ग्रन्थो मे चन्द्र और जल्हन कृत पृथ्वीराज रासो सर्वोत्कृष्ट है। इसका रचना काल ११९२ के कुछ साल पहले से १२१५ के इधर उधर तक समझना चाहिये। अब सिद्ध हुआ है कि इस ग्रन्थ मे प्रक्षिप्त भाग बहुत अधिकता से है, और चन्द्र तथा जल्हन के छंद बिखर जाने से सन् १५८० के निकट महाराणा अमरसिह चित्तौर नरेश के समय में बहुत घटाव बढ़ाव के साथ यह ग्रन्थ पूर्ण हुआ। फिर भी जो कुछ है, पृथ्वीराज रासो एक अनमोल ग्रन्थ है, और तत्कालीन समाज का बड़ा व्यापक चित्र हमारे सामने उपस्थित करता है। युद्ध, मृगया तथा शृङ्गार के इसमे अनेकानेक परमोत्कृष्ट वर्णन है, जिससे भारतीय समाज तथा इतिहास पर इस ग्रन्थरत्न का भारी ऋण माना जा सकता है। इसके अधिकाश कथन ऐतिहासिक दृष्टि से अशुद्ध घटनाओ से पूर्ण हैं। यह प्रक्षिप्त भागो का फल है, किन्तु उन्ही के कारण इस ग्रन्थ का साहित्यिक मूल्य बहुत बडा है। जो हो, ग्रन्थ अब भी परमोत्कृष्ट समझा जाकर नवरत्नों मे रक्खा गया है। हमारे प्राचीन साहित्य

का यह एक भव्य ऐतिहासिक नही तो साहित्यिक रत्न अब भी हमारे सामने है। इसमें पुराणो के समान बहुत से प्राचीन कथन भी है।

इस काल उमाबाई (१२७२) और मुक्ताबाई (१२९३) नाम्नी दो महाराष्ट्र महिलाये भी हिन्दी कविता करती थी। ये अच्छे घरानो की कन्याये थी। मुक्ताबाई ने भक्ति भाव से कविता की। जैन कवि इस काल १३ मिले है, जिन्होने बहुधा धार्मिक ग्रन्थ लिखे। ज्ञानेश्वर महाराष्ट्र देश के अच्छे पंडित, उपरोक्त मुक्तबाई के पिता, और सुकवि थे। आपने खडी बोली मे अच्छा भक्ति काव्य छोडा है। अमीर खुसरो सन् १३२५ के लगभग थे। आपने कई बादशाहो की सेवा की, और खड़ी बोली एवं फारसी मे अच्छी कविता लिखी, तथा कही कही व्रजभाषा भी खडी बोली मे मिला दी है। आपका ग्रन्थ ख़ालिकबारी प्रकट करता है कि मुसलमानो ने उसी काल से भारतीय भाषा सीखने का अच्छा प्रयत्न किया। इनका एक छद नीचे उद्धृत किया जाता है।

ज़े हाले मिस्की मकुन तगाफुल दुराये नैना बनाये बतियां।
कि ताबे हिजरत नदारमैजां न लेहु काहे लगाय छतियां॥
शबाने हिजरा दराज चूं जुलफो रोज़ वस्लत चु उम्र कोता।
सखी पिया को जो मैं न देखूं तो कैसे काटूं अँधेरी रतियां॥

इनकी रचना उच्च श्रेणी की है।

आदिम काल के रचयिताओ मे गोरखनाथ भी बड़े प्रभावपूर्ण महात्मा थे। आप का रचना काल १३५० के लगभग समझा जाता है। आपके करीब ४० ग्रन्थ खोज मे मिले हैं, किन्तु वे प्रायः सब संस्कृत मे हैं। हिन्दी मे भी इनके कुछ ग्रन्थ है। एक हिन्दी गद्य ग्रन्थ भी आपका है, जिससे आप हमारे पहले गद्य लेखक है। आप ऋषियो, देवताओ, आदिकी भांति पुजते है। आपके पन्थ मे लाखों लोग हैं, जो बहुतेरे गोरखपुर के इधर उधर और कुछ महाराष्ट्र देश तक मे मिलते हैं। गोरख पन्थ मे उपासना तथा तत्ववाद

दोनो है। यह मत योग से सम्बद्ध है, और इसमे शारीरिक क्रियाये तथा कर्मकांड है। तथापि विवेकवाद एव दार्शनिक विषयो का अभाव सा है। यह मत विशेषतया साधुओ मे प्रचलित है, जिसमे बाम मार्ग भी पाया जाता है। इसका एक भाग अघोर पन्थ है। अन्य पन्थो की भाति इसका भी प्रचार प्रायः निम्न श्रेणी ही के लोगो मे है। हमारे मिश्र बंधु विनोद मे इस काल के सभी कवियो के वर्णन कुछ विस्तार के साथ पाये जायेगे। वीर काव्य प्रबन्धात्मक, गीतात्मक तथा मुक्तकात्मक रूपो मे मिलता है। हमारे आदिम काल मे इन तीनो रूपो मे वह प्राप्त है। कही कही एक ही वीर को लेकर कथन होता है, जैसा कि इस काल के जयकाव्य मे हुआ और कही रघुवंश की भांति वीर वंश का वर्णन होता है। यह बात इस आदिम काल मे नही है, यद्यपि पृथ्वीराज रासो मे इस का कुछ आभास है। कही कही ऐसे ग्रन्थो मे प्रोत्साहन की प्रधानता है, अथच वीरो का कथन गौण हो जाता है, तथा कही जीवन चरित्र प्रधान रहता है, और प्रोत्साहन गौण। कही कथा का प्राधान्य रहता है, और कहीं मुक्तकता का। इन दोनो मे कही कही काव्यांग की प्रधानता हो जाती है, जैसे शिवराजभूषण मे आगे चलकर देखी जावेगी। हमारे इस काल के जयकाव्य में प्रबन्धकता एवं व्यक्तित्व की प्रधानता है।

धार्मिक साहित्य।

अब धार्मिक साहित्य के विषय मे भी कुछ बतला देना ठीक होगा। लगभग सन् १००० के दाक्षिणात्य भारत मे संन्यासियों का एक संघ खडा हुआ। इसमे निर्गुण निराकार ब्रह्म की प्रधानता थी, अथच दार्शनिक विवेक वाद का मान था। ये लोग शांकर अद्वैत एवं मायावाद के प्रतिकूल थे। इन्ही महात्माओं में रामानुजाचार्य,

मध्वाचार्य, निम्बार्क, और विष्णु स्वामी प्रधान थे। स्वामी रामानुजाचार्य ने उपदेश तो संस्कृत मे दिये, किन्तु इन का प्रभाव हिन्दी पर भी आगे चलकर बहुत पड़ता है। आपका समय सन् १०१६ से ११३९ तक है। आपने ब्रह्म एव ईश्वर के अनेक रूपो मे नारायण का उपरूप प्रधान माना अथच मूर्त्ति को भी आराध्य, उपास्य और सेव्य समझा। आप आत्मा के तीन रूप बतलाते है, अर्थात बद्ध, मुक्त और नित्य। बद्धात्मा चैतन्य या अचैतन्य होती है। चैतन्यात्मा के लिये भक्ति और ज्ञान प्रधान हैं। इस प्रकार इसका नित्यात्मा अर्थात् परमात्मा से सेवक सेव्य भाव जुड़ता है। नित्यात्मा के तीन प्रधान उपरूप है, अर्थात् उत्पादक, (ब्रह्मा) पोषक, (विष्णु) और विनाशक (रुद्र)। यह नित्यात्मा स्वेच्छा से अवतार ग्रहण भी करती है। शंकर अद्वैत को वस्तुत. मानते हुए भी आप उसमे कुछ विशेषता बतलाते है। इसी से आपका मत विशिष्टाद्वैत कहलाता है। शकर शैव थे और आप वैष्णव। आप दाक्षिणात्य ब्राह्मण थे। वही आपने वैष्णव मत बहुत चलाया। नारायण को प्रधान मानते हुए भी आपने अवतारो को प्राधान्य न दिया, तथा गोपाल कृष्ण का वर्णन कभी न किया। बौद्धमत का पतन जैसे शंकर स्वामी द्वारा हुआ, वैसे ही जैन मत का इनके द्वारा। व्यास के पीछे ये दोनो महात्मा पौराणिक मत के प्राण ही थे। मैसूर के विष्णु वर्द्धन नामक शासक की सहायता से आपने जैन पंडितो से इस नियम से वाद किया कि जो हारे और फिर भी मत परिवर्तन न करे, वह कोल्हू मे पेर डाला जाय। इस प्रकार वाद करके आपने बहुतेरे जैन पंडितो को जिस पत्थर के कोल्हू मे पेरवा कर मार डाला, वह अब भी सुरक्षित है। निम्बार्क स्वामी का समय अनिश्चित है, किन्तु इतना ज्ञात है कि आप स्वामी रामानुजाचार्य के कुछ ही पीछे के हैं। आपकी मृत्यु का समय सन् ११६२ कहा जाता है। यह महात्मा भी दाक्षिणात्य ब्राह्मण थे, किन्तु

आपने अपनी भक्ति पद्धति का बंगाल और विहार में खूब प्रचार करके श्रीवृन्दावन मे वास ग्रहण किया। अद्वैत और मायावाद के प्रतिकूल आपने वेदान्त पर उत्कृष्ट टीका लिखी। कृष्णभक्ति के साथ राधावाली भक्ति जोड कर आप ही ने शुद्ध वैष्णव मत को बाम मार्ग के मेल से कलुषित किया। बाम मार्ग का वर्णन ऊपर आ चुका है। उसमे कहने को तो धर्म कथन है किन्तु अश्लीलता अथवा उसके आलंबन उद्दीपन के वर्णन द्वारा उसमे कलुषता जुड़ी है। बहुत लोग शुद्ध भाव से भी उसे धर्म मानते है, किन्तु वास्तव मे धर्म के नाम से वह जानते या न जानते हुए नीच प्रकृतियो का पोषण करता है। रामानुज द्वारा प्रतिष्ठित सेवक-सेव्यवाली भक्ति मे आपने मलिन शृङ्गारात्मिकता जोड़ दी। आपका भी एक संप्रदाय चलता है। इन का प्रभाव हिन्दी पर बहुत पड़ा है।

स्वामी मध्वाचार्य (सन् ११६०-१२७७) भी दाक्षिणात्य ब्राह्मण और सन्यासी थे। आपने भी अद्वैत एव मायावाद के प्रतिकूल लिखकर लक्ष्मी और विष्णु की भक्ति को प्रधान माना, किन्तु राधा का मान न करके केवल कृष्ण की भक्ति बढाई। इस प्रकार कार्ष्ण भक्ति को मानते हुए भी आपने उसे बाम मार्ग से दूर रक्खा। दक्षिण में लोग प्रायः कृष्ण को रुक्मिणी वल्लभ कह कर पूजते है, न कि राधारमण के रूप मे। विष्णु स्वामी भी एक प्रसिद्ध वैष्णवाचार्य थे, जिन्होंने इस भक्ति मे दार्शनिक विचारो का आधिक्य रक्खा। आपके विषय मे लोगो का ज्ञान कुछ संकीर्ण है। वल्लभाचार्यजी ने दार्शनिक सिद्धान्त विष्णु स्वामी पर अवलम्बित किये, तथा भक्ति निम्बार्क स्वामी पर। देखा जाता है कि कुछ आचार्य भक्ति को प्रधानता देते थे और कुछ दार्शनिकता को। मध्व स्वामी ने द्वैतवाद चलाया। आपके माध्व सम्प्रदाय में राम और कृष्ण पूजन की उपशाखाये हैं। इनमे नारायण की उपासना प्रधान है और भक्ति पर ज़ोर दिया गया है। चैतन्य महाप्रभु एवं

हितहरिवंश इसी सम्प्रदाय मे हैं, किन्तु महाप्रभु की शाखा सम्प्रदाय गौड़ीय है, और हित जी की राधावल्लभीय। विष्णु स्वामी का भी एक सम्प्रदाय है। आपका कुछ सकेत शिवोपासना की ओर भी है। आपने राधाकृष्ण का माहात्म्य कहा है, जो निम्बार्क सम्प्रदाय में विशेष बढ़ा हुआ है। विष्णु स्वामी मध्वाचार्ज के अनुयायी थे और निम्बार्क रामानुजाचार्य के। राधावल्लभीय सम्प्रदाय मे राधा रानी है और कृष्ण उनके दास मात्र। हम देखते है कि शैवमत दक्षिण से चलकर बगाल, तथा युक्तप्रांत के मध्य भाग मे प्रचलित हुआ, और वैष्णव मत भी वही से चलकर बंगाल विहार, और अवध मे फैलता हुआ, मथुरा वृन्दावन पहुचा तथा फिर वहां से समय पर मारवाड़ और गुजरात गया। शैव द्वादश ज्योतिर्लिंग प्रायः भारत भर मे फैले होने से इस मत की प्राचीनता और व्यापकता दिखलाते हैं। हमारे आदिम हिन्दी काल में जैन धर्म का भी अच्छा प्रसार था, जो दिनो दिन क्षीण होता गया। इस के श्वेताम्बर और दिगंबर सम्प्रदाय बौद्ध धर्म के हीनयान और महायान के समान है।

कर्नल टाड के आधार पर साहित्यिक प्रभाव।

अब कर्नल टाड द्वारा रक्षित कुछ ऐतिहासिक छदो तथा आधारो का कथन करके हम उस धार्मिक प्रभाव को उठावेगे जो मुसलमानागमन से भारतीय समाज पर देख पडा। हमारा इतिहास त्रयोमुखी है, अर्थात् वह अँगरेजी, मुसलमानी, और स्वदेशी आधारो के अनुसार चलता है। राजपूताना, बुंदेलखंड आदि का इतिहास बहुत करके हिन्दी साहित्य के ही सहारे से चला है। हम सबसे पहले टाड के आधारो का कथन करते हैं। इनमे से बहुतेरे आदिम काल के पीछे के हैं, किन्तु वर्णन पूर्णता के विचार से हम उन्हें यही एकत्र कहे देते हैं। टाड महाशय राठूरो का एक वंशवृक्ष देखना बतलाते हैं, जो

नाद्‌ोलई मन्दिर के जैन पुजारी से मिला था, और जो ५० फीट लम्बा था। उसमे राठौरो की उत्पत्ति युवनाश्व से लिखी है। दूसरा वंश-वृक्ष बहुत प्राचीन और राठूरो मे पूज्य है। वह कहता है कि नैनपाल ने संवत् ५२६ (सन् ४६६) मे कन्नौज जीता। इसमे औरंगजेब के समकालीन महाराणा यशवन्तसिह तक का कथन है। सूर्य प्रकाश ग्रन्थ राजा अभयसिह की आज्ञा से कुरनिधान द्वारा रचा गया। राजरूपक आखेट सूर्य वंश का कथन करता है। औरंगजेब के पीछेवाले महाराजा अजीतसिह के समय से इसमे वर्णन अच्छा है। विजय विलास मे विजयसिह तथा महाराष्ट्रो के कथन है। इन ग्रन्थो से राठूरो की प्राचीन कथा इस प्रकार ज्ञात होती है।

१। जयचन्दात्मज शिवजी सन् १२१२ मे खेर मे स्थापित हुये। सन् १३८१ मे चन्द ने मंडोर जीता।

२। सन् १४५६ मे ये लोग जोधपुर बसाकर वही रहे।

३। सन् १५८४ मे उदयसिह गद्दी पर बैठे। इन्होने एक ब्राह्मण बालिका से नीच व्यवहार किया, जिससे उसके पिताने यज्ञाग्नि में उसकी तथा अपनी बलि कर दी, किन्तु इसके पूर्व राजा को यह शाप दिया कि आज से तीन पहर, तीन दिन और तीन बरस में मेरा बदला पूरा हो, तथा इस बीच मे भी राजा को शान्ति न मिले। कहते हैं कि यह शाप पूरा का पूरा ठीक निकला। शेष राठूरी कथन आगे आवेंगे। टाड साहब कहते है कि मेवाड़, मारवाड़, अम्बर, बीकानेर, जैसलमेर, कोटा और बूंदी मे वंशवृक्षो तथा वीरकाव्यो द्वारा अच्छा ऐतिहासिक मसाला मिलता है, अथच जैसलमेर, मेवाड़ तथा मारवाड़ मे बड़े बड़े छन्दोबद्ध इतिहास ग्रन्थ हैं। मेवाड़ का इतिहास आपके अनुसार खुमानरासो, जगत विलास, राज प्रकाश तथा जैबिलास से मिलता है, और जैपुर का मानचरित्र से। आपके अनुसार खुमान रासो में राम, चित्तौर, अलाउद्दीन तथा प्रतापसिह के अच्छे वर्णन है। राजबिलास मान कवीश्वर कृत है। राव रत्नाकर सदाशिव भट्ट कृत है

और जय बिलास राजसिंहात्मज, जैसिह के समय अट्ठारहवीं शताब्दी मे बना। मामदेव प्रशस्ति जैन पुजारी के पास वशवृक्ष था। खुमान रासो कहता है कि खुमान २४ युद्धो मे लडे, तथा वह खुमान से समरसिह तक १५ नरेश बतलाता है। घराऊ वर्णनो मे भी समरसिह का नाम है। आप महाराज पृथ्वीराज के बहनोई तथा चित्तौर नरेश थे। ओझाजी इनके तत्कालीन अस्तित्व से इनकार करते है, किन्तु हमे वह मत अशुद्ध जॅचता है। कारण हमारे इतिहास ग्रन्थ तथा हिन्दी नवरत्न मे लिखे है।

कहते है कि झालावार के सोनिगुर राजा का पुत्र रणधवल था, जिसने चित्तौर जीत लिया। तब एक भाट कवि ने उसे छीना क्योकि चित्तौर नरेश रावल महप ऐसा करने मे अशक्त था। भाट ने राज्य स्वयं न लेकर रहप को दिया। महप समरसिह के बेटे कर्ण का पुत्र था, तथा रहप समरसिह के भाई सूरजमल का पौत्र। रहप १२०१ मे गद्दी पर बैठा। यह कथा टाड कृत राजस्थान मे लिखी है, और एक कवि की महत्ता प्रगट करके भारतीय इतिहास पर साहित्य का प्रभाव दिखलाती है। इससे राजकवियो की राज्य-भक्ति प्रकट होती है। टाड साहब खुमान रासो ग्रन्थ नवी शताब्दी का बतलाते हैं।

सन १२३२ मे अल्तमश ने परिहार सारंगदेव गवालियर नरेश पर आक्रमण किया। जब कोई और युक्ति न रही तब राजा लड़ मरने को चला। उस समय उसकी ७० रानियो ने कहा, "पहले हमैं जु जौहर पारी। तब तुम जूझौ कन्त सम्हारी।" ऐसा कहकर वे सब आत्महत्या करके मर गईं, और तब राजा लड़ मरा। यही जौहर कहलाता था, जो मानरक्षा के लिये किया जाता था। टाड महाशय ने दो और ऐतिहासिक छन्द इस काल के लिखे है।

रूमीपति खुरसानपति, है गै पाखर पाय।
चिन्ता तेरे चित्त लगि, सुनु जदुपति गजराय॥

जन पँवार थ्यां धार है, अरु धर थ्यान पँवार।
धार बिना पांवार नहिँ, नहिँ पँवार बिन धार॥

दूसरा दोहा पँवारो का धार से सम्बन्ध दिखलाता है, और पहला उस कथा का इशारा करता है जिसमे रूमी नरेश तथा खुरासानपति यदुकुल भव गजराय से प्रायः दशवी शताब्दी में लड़कर हारे थे। परमाल रासो भी एक प्राचीन ग्रन्थ है, किन्तु उसमे कथित घटनाये सब ठीक नही हैं। इसी से उसका विवरण पृथ्वीराज रासो से पृथक् नही किया जाता। उसमे चन्देलो का वंश वर्णन अच्छा है। यह नन्नुक से चलकर परमार्दि देव उपनाम परमाल तक चलता है, और खजराहो के प्रसिद्ध पाषाण लेख से टक्कर खा जाता है। यह वंशवृक्ष इतिहासो और पुरातत्व सम्बन्धी ग्रन्थो मे कथित होने से सबको विदित है, और हमारे भारतीय इतिहास मे भी है। इसीलिये यहा इसे नही लिखते है। इसी स्थान पर आदिम काल के पृथक् वर्णन समाप्त होते है, और हमको सामूहिकदृष्टि से इस पर विचार करना एव मुसलिम संघट्ट से हमारे समाज पर क्या प्रभाव पड़ा, सो देखना भर शेष है।

भारत मे सभ्यताओं का संघट्ट।

हमारे सामने आज दिन तीन प्रधान सभ्यताओ के रूप उपस्थित हैं, अर्थात पाश्चात्य, माध्यमिक और प्राच्य। भारत इन तीनो के एक प्रकार से मिश्रण का रंगमच है। इसी का आदान प्रदान हमको आज देखना है। सामाजिक उन्नतियो के प्रभाव विशेषतया धार्मिक, राजकीय, व्यापारिक और कला सम्बन्धी फलो से ज्ञात होते है। इनमे प्रथम तीन कृत्रिम है और चौथा स्वाभाविक। धर्म मे परलोक तथा समाज, इन दोनो का भय एवं लोभ लगा रहता है, सो धार्मिकता की उन्नति एवं विश्लेषण बहुधा व्यक्तिगत भावो से

कम होते है तथा अन्यो के आचार विचारो का प्रभाव चाहते या न चाहते हुए भी वक्ता के ऊपर पड़ जाता है, जिससे उसके तत्सम्बन्धी कार्यों एवं विचार प्रकाशन मे कुछ न कुछ कृत्रिमता आ जाती है। राजकीय सत्ता मे इतरो का प्रकट ही बहुत प्रभाव रहता है, सो उसमें हानि लाभ के विशेष भय एव आशा लगी रहने से कृत्रिमता स्वाभाविक ही है। व्यापार लाभार्थ होता है हो, और केवल मौज पर चलने से करोड़पती भी अति शीघ्र अकिचन हो सकता है।

अतएव कला ही ऐसी रह जाती है, जिसमे मौज को पूरा प्रकाश एव अवकाश प्राप्त है। कला तीन प्रकार की है, अर्थात् वास्तु सगीत, और साहित्य। वास्तु कला विविध प्रकार के साधनो के सहारे चित्रण ज्ञान का अच्छा किन्तु मूक तथा परिवर्तन हीन आनन्द दिखलाती है। उसका पूरा भाव समझने के लिये दर्शक मे विशेष चातुर्य एव ज्ञान की आवश्यकता है। इतना सब हो जाने पर भी उसका प्रकाश सीमित है। सगीत बहुत ही मनोहारी होने पर भी क्षणिक है और इधर साहित्य मे हमे हँसता, बोलता, खेलता, चलता, फिरता, असख्य भाव परिवर्तन दिखलाता हुआ स्थिर साधन मिलता है, जिसमे लेखक की मौज को पूर्ण अवकाश है। अतएव साहित्य सामाजिक मौज के प्रकाश का उत्तम साधन होकर हमे उसके विचारो का सच्चा, स्वतन्त्र तथा स्थायी रूप दिखलाता है। सुतराम् जातीय साहित्य समाज की उन्नतियो का हमारे सामने परम स्वतन्त्र एवं सच्चा रूप प्रकट करता है। इसलिये जब आप हमसे इतिहास पर हिन्दी साहित्य के प्रभाव की मीमांसा चाहते हैं, तब यही विदित होता है कि हमको समाज की स्वतन्त्र उमंग का फल जातीय सामूहिक परिणामों पर बतलाना होगा, अर्थात् यह दिखलाना होगा कि हम अपनी मौज़ को अपने सामूहिक जीवन मे कहां तक चला सके हैं, और उसका हमारे समूह पर कैसा परिणाम

आया है? प्रश्न बड़ी महत्ता का है और उत्तर भी देते बने तो वैसा ही होना चाहिये। ऐतिहासिक का काम चित्र निर्माण न होकर चित्रावलोकन मात्र है। हमको इससे प्रयोजन नही कि ऐसा होता तो कैसी ठहरती? यदि सभो होनेवाली आशाये पूर्ण हो जाती, तो यह संसार स्वर्ग होता, किन्तु है नही। ऐतिहासिक तो शुद्ध समालोचक अथच प्रवीण द्रष्टा है। उसकी समालोचना भविष्य के चित्र की भले ही उन्नति करे, किन्तु वह उन्नति ऐतिहासिक का मुख्य उद्देश्य नही है। उसका ध्येय है चित्र का यथावत निरीक्षण तथा उसके समय समय के परिवर्तनो का ज्ञान। हमको यह देखना है कि उपरोक्त तीनो सभ्यताओ के पारस्परिक आदान प्रदान से भारत मे क्या फल प्रकट हुआ? इसीलिये मुस्लिम आगमन के समय का अपना चित्र हमने पूर्ण से पूर्ण देने का प्रयत्न किया है। बहुत लोगो को समझ पड़ सकता है कि प्राचीन समयो का हमने उचित से बड़ा विवरण रक्खा है, किन्तु हमारी धारणा है कि यह विवरण बड़ा न होकर छोटा ही है। विवरण जितना ही दृढ़ होगा, चित्र उतना ही साफ़ आवेगा। पाश्चात्य सभ्यता का कैसा रूप हमारे सामने है? हम देखते है कि प्राचीन काल से गिरते, पड़ते, ठोकरे खाते, ज्ञान बढ़ाते हुए वह सभ्यता आज दिन जिस रूप में दृढ़ हुई है, वह जातीय सामूहिक जीवन की सांसारिक उन्नति है, जो सामूहिक सगठन एवं तद्भव बल से प्राप्त हुई है। जातीयता पाश्चात्य सभ्यता की प्राण है। माध्यमिक शक्ति कई प्रकार से बदलती हुई अन्त मे मुस्लिम सभ्यता के रूप मे हमारे सामने आती है। सातवी शताब्दी मे बलशाली होकर हज़रत मुहम्मद ने प्रतिमा विनाश एव बल प्रयोग द्वारा अपने भाइयो तक मे अपना मत बढ़ाया। इस माध्यमिक सभ्यता का एकेश्वरवाद प्राण है, तथा धार्मिक एव राजसत्ता को एकाधिपत्य से मिलाकर यह बढ़ो है। यहां राजकीय शक्ति प्रायः निरंकुश रही,

और सामूहिक बल उसी एकाधिपत्य के सहारे बढ़कर संसार मे शाही शक्ति के साथ मुस्लिम धर्म की उन्नति करता रहा। जब तक यह एकाधिपत्य अच्छा चला, तब तक इस धर्म का बल के साथ फैलाव होता गया, किन्तु राजकीय बल में क्षति आने से इसकी उन्नति रुक गई। तो भी जैसे पाश्चात्य जीवन मे जातीयता की कट्टरता है, वैसे ही माध्यमिक मे धार्मिकता की। जो हिन्दू चीन, आदि गये वे हिन्दूपन को छोड़कर धीरे धीरे चीनी आदि हो गये। बर्मा मे हमारी आखो के सामने यही दशा चल रही है। उधर जो मुसलमान चीन, बर्मा आदि गये, वे अब भी मुसलमान बने है। इस हिन्दू चारित्रयबलाभाव का एक यह भी कारण है कि जहां पाश्चात्य एव माध्यमिक सभ्यताओ मे सामूहिक जीवन का प्राधान्य एवं व्यक्ति गत साम्य की विशेषता है, वही हमारे यहां ऊंच नीच के विचार अधिक होने से सामूहिक जीवन मे न्यूनाधिक विश्रृङ्खलता एवं संगठनाभाव है। हिन्दू समाज पर इतिहास ने अधिक प्रकाश भी नही डाला है, और उसका यथावत रूप अभी हमारे सामने नही आया है। इसलिये भी प्राचीन बातो का हमने विशेष कथन किया है, जिसमे हमारा वर्तमान चित्र साफ आवै। अब एक सूक्ष्म सिहा-वलोकन द्वारा हम अपना सामाजिक चित्र अकित करना चाहते है।

समझ पड़ता है कि जहां योरोपीय सभ्यता ने धर्म्मेतर बातो को प्रधानता देकर अपना समाज सामूहिक शक्ति द्वारा सबल एवं संसारीपने मे उन्नत बनाया, अथच मुस्लिम सभ्यता ने धर्मप्राण होते हुये भी उसे राजशक्ति से मिलाकर संसार मे अपना फैलाव किया, वही हिन्दू सभ्यता ने दो पृथक् संस्थाये रक्खी, अर्थात् धर्म और राज्य की। वैदिक काल से वर्णभेद स्थापित होकर जब समय के साथ जाति भेद में परिणत हुआ, तब हमारे यहां परिश्रम का कार्य शूद्रों को मिला, व्यापार वैश्यो को, राज्य क्षत्रियो को और धर्म ब्राह्मणो को। परिश्रम और व्यापार तो व्यक्ति गत रूपो मे चलते

रहे, किन्तु राज्य एव धर्म मे इतरो पर भी प्रभाव पड़ने से ये दोनो संस्थाये समय के साथ प्रधान हुईं। समझ पड़ता है कि राज्य छोटे छोटे होने के कारण राजा प्रजा मे विवाद हुआ करता होगा, और नये कर अथवा अन्य नवीनताओ के समय लोग अन्य रियासतों के उदाहरण दिया करते होगे, जैसा कि इसकाल भी छोटी रियासतो मे होता है। धीरे धीरे टंटा मिटते मिटते राज्य तो पृथक् रहे, किन्तु नियम सब कही के कई बातो मे एक हो गये। इनके यथावत पालनार्थ बहुज्ञता की आवश्यकता पड़ने से मन्त्रित्व का पद ब्राह्मणो को मिला। हम देखते है कि तृतीय शताब्दी बी० सी० मे चन्द्रगुप्त के साम्राज्य के पूर्व तथा उसमे भी यही नियम जारी था। धीरे धीरे ब्राह्मणो के कार्य अन्य प्रान्तीय तथा दूरस्थ राज्यो पर भी ध्यान रखकर होने लगे, क्योकि यद्यपि राज्य बहुत थे, तथापि धार्मिक प्रणाली एवं नियमो मे साम्य था। इन राजाओ मे सन्धि विग्रह भी होते रहते थे, किन्तु इन बातो से नियमो मे साम्य के कारण प्रजा के अधिकारो पर हस्तक्षेप न होता था। एक ओर भूपालो मे युद्ध ठना रहता था और दूसरी ओर साधारण प्रजा सुखपूर्वक निर्विघ्न शान्ति के व्यापारादि चलाती थी। अतएव धीरे धीरे राज्यो के पतनोत्थान से प्रजा अपना विशिष्ट सम्बन्ध न समझने लगी और उसका झुकाव सर्वत्र व्यापी सामाजिक राजकीय एवं धार्मिक नियमो पर अधिकाधिक होता गया। भारतवर्ष एक बहुत बडा देश था और रेल, तार आदि का कोई प्रबन्ध न था, सो हम लोगो का वह सम्हाला न सम्हला। फिर भी साहस मे कमी न होने से बस हम सब कही गये। दक्षिण को दण्डकारण्य उपनाम महाकान्तारवन उत्तर से अलग करता था, अथच विन्ध्याचल भी बीच मे पड़ता था। तथापि अगस्त्य मुनि, परशुराम आदि के प्रयत्नो से आर्य लोग वहां भी बस गये। दक्षिण का मार्ग इतना दुर्गम था कि हम लोगो को उधर का स्मरण होने से देश पर ध्यान न जाकर पथ ही याद आता था, जिससे बेचारा

देश ही दक्षिण पथ कहलाने लगा, किन्तु आर्य सभ्यता स्थापित वहां भी हो ही गई। हम आपस्तम्ब और बोधायन के प्राचीन काल मे ही वहां ऐसी आर्य सभ्यता पाते है, जिससे उत्तरीय सभ्यता का कोई भेद नही रह जाता। यह दशा छठी शताब्दी बी० सी० के पूर्व की है। ठेठ दक्षिण मे भी चौथी पाचवी शताब्दी के पूर्व से यही दशा होने लगी थी। अतएव जहा भारत का फैलाव एक महती सभ्यता स्थापित करने मे हमारा साधक हुआ, वही राजकीय बल, एकाधीन न होने से धार्मिक महत्ता के आगे हमे बहुत हेय दिखने लगा, क्योकि धार्मिक सभ्यता जहा सारे देश मे एक होने से महती थी, वही राजे सैकड़ो होने से पोच समझ पडे। फल यह हुआ कि हमारा आर्य समाज धार्मिक एवं अन्य सामाजिक बन्धनो मे तो दृढ तथा महान रहा, किन्तु उसी के साथ देश प्रेम एव जातीयता का सशक्त रूप हमसे तिरोहित हो गया। इसीलिये शक, कुशान, हूण आदि जब यहा स्थापित हुये, तब उनके केवल राजकीय बलेच्छु होने से हमारा उनका कोई वास्तविक विग्राड न हुआ और समय पर वे हमारे सामाजिक बल के पोषक भी बने। इन्ही कारणो से यहां दो पृथक् संस्थाये स्थापित हो गईं, अर्थात् राज-सम्बन्धिनी तथा सामाजिक संस्था। यही दूसरी सस्था धार्मिक, दाय सम्बन्धी, तथा ऐसे ही अन्य विषयो की अधिकारिणी थी। इन अधिकारो मे केवल ब्राह्मण कर्ता, धर्ता, विधाता न थे, वरन् ये नियम समाज के सभी अङ्गो के बहुमत पर चलते थे, तथा ब्राह्मण लोग ग्रन्थो मे उनका कथन मात्र कर देते थे, और ऐसा करने मे अपनी तर्क शक्ति द्वारा उनका समर्थन भी करते रहते थे। ब्राह्मण यहां तक सर्व सम्मति के मुखापेक्षी हुये, कि अपने प्रिय विषयो तक को छोड़कर बहु सख्या के ही अनुसार चलने लगे। इसीलिये आजतक न्यायालयो मे हिन्दू धर्मशास्त्र हिन्दू ला और कस्टम कहलाता है।

इसका एक बहुत अच्छा उदाहरण धार्मिक विकास से दिया जाता है, जिससे वह विकास ज्ञात हो जावेगा, तथा भारतीय नियम स्थापन प्रणाली पर भी प्रकाश पड़ेगा। अवैदिक काल में हमारे यहा कराल देवताओ का पूजन चलता था, तथा तरु, नदी आदि के साथ उत्पादिनी शक्ति के प्रतिमूर्त्ति सजीव विशेषाग का भी पूजन होता था। ऋषियो के प्रभाव से जब यहा वैदिक मत चला, तब भी आर्यों ने अनार्यों के पूजन में कोई बाधा नही डाली, केवल अन्तिम पूजन को परम निन्द्य समझ कर उसका घोर विरोध किया। इस बात की दो ऋचाये ऋग्वेद मे है। अन्य विषयो के साथ हमें याज्ञिक भक्ति ऋग्वेद तथा यजुर्वेद ने बीज रूप से बतलाई, तान्त्रिक भक्ति उसी प्रकार अथर्ववेद ने, तथा शुद्ध भक्ति सामवेद ने। शायद इसीलिये गीता मे भगवान ने कहा है कि वेदो मे सामवेद मैं ही हूं। ब्राह्मण काल मे याज्ञिक भक्ति बढ़ी, किन्तु जब समाज ने उसके प्रतिकूल अश्रद्धा दिखलाई, तब राजन्यगण के सहयोग से ब्राह्मणो ने औपनिषत् ज्ञान चलाया। फिर भी याज्ञिक विधि चलती रही। समय पर समाज ने बौद्ध और जैन वाद चलाकर वैदिक धर्म का प्रतिवाद किया। ऐसी दशा में सूतो की स्मरण शक्तिपर आश्रित जो हमारा पौराणिक साहित्य था, उसी को ब्राह्मणो ने भी उठाया, और अपना वैदिक धर्म छोड़कर नया पौराणिक चलाया, जिसने समय पर बौद्ध एवं जैनधर्म का सर्व साधारण मे पराभव कर दिया। फिर भी समझ पड़ता है कि इन मतो के पण्डित लोग झगड़ा मचाते रहे। इनका अहिसावाद एव राजनियम द्वारा भी प्रतिपादित माता पिता आदि की असीमप्राय भक्ति कौटुम्बिक जीवन तक मे हस्तक्षेप करती थी, जिससे व्यक्तिगत स्वतन्त्रता मे बाधा थी। इन कारणो से सर्व साधारण ने तो इन मतो को छोड़ दिया, किन्तु पण्डित लोग इन्हे पकड़े रहे, और वादरत बने रहे। अतएव हमारे पण्डितो ने भी तार्किक सिद्धान्त दृढ़ किये। हम देख आये है कि शङ्कराचार्य एव

रामानुजाचार्य के तर्कों से बौद्ध तथा जैन पण्डित पराजित हुये, और पण्डित समाज से भी इन मतो का मान हट गया। हिन्दी के प्रारम्भिक काल मे हम छः महात्माओ को देखते हैं, अर्थात् शङ्कराचार्य, रामानुजाचार्य, निम्बार्क स्वामी, मध्वाचार्य, विष्णु स्वामी और गोरखनाथ। गेरहवी बारहवी शताब्दी मे हम बंगाल मे तान्त्रिक विचारो का बल पाते है, यहांतक कि वहा के बौद्ध तथा हिन्दू ये दोनो मत उस काल तान्त्रिक रंग मे रँग गये। बंगाल मे हमे शक्ति पूजन भी मिलता है, जिसका कथन ऊपर हो आया है। गोरखनाथजी ने जो गोरख पन्थ चलाया, वह तार्किक बल पर अवलम्बित न होकर शैवमत प्रधान बाम मार्गों पर चलता था। अतएव वह शैवपूजा तो युक्तप्रान्त की लिये हुये था, किन्तु बंगाल के विचारो से बहुत प्रभावित था। उपरोक्त शेष पांचो सम्प्रदाय तार्किक बल पर अवलम्बित थे। शङ्कराचाय शैव होकर भी ज्ञान ही पर बल लगाते है, भक्ति पर नही। रामानुजाचार्य तार्किक महत्ता स्थिर रखते हुये भी भक्ति पर पूरा ज़ोर देते है। फिर भी अवतार तथा प्रतिमा को मानते हुये आप केवल नारायण को प्रधान रखते है। आपका प्रभाव दक्षिण ही मे रहा, और उत्तरवाले सर्व साधारण मे वह उस काल बहुत विस्तृत न हुआ। निम्बार्क स्वामी तार्किक होकर भी राधाकृष्ण की भक्ति पर झुके। विष्णु स्वामी शिव तथा राधाकृष्ण को मानते थे, और मध्वाचार्य राधा को न मानकर एवं नारायण को प्रधानता देते हुये रामकृष्ण को पूजते थे। अतएव हम देखते हैं कि या तो बंगाल का शाक्त बाम मार्ग दक्षिण भी पहुचा, या वहां के महात्माओ ने स्वतन्त्र रूप से उसे निकाला। जो हो, बाम मार्ग बंगाल, युक्त प्रान्त एवं दक्षिण इन तीनो प्रान्तो मे न्यूनाधिक समादृत हुआ। दाक्षिणात्यो मे मध्वाचार्य राम पर विशेषता रखते हैं, और दो महात्मा कृष्णपर। शैवमत के आदर करनेवाले शंकर, गोरखनाथ और विष्णु स्वामी

थे। अतएव अपने पौराणिक धर्म मे हम आदिम हिन्दी काल में उपरोक्त विचारो की वृद्धि पाते हैं। हमारे हिन्दी साहित्य में उस काल गोरखनाथ के विचार तो आये, किन्तु इतरो के नही। प्रारम्भिक काल मे नाथ कवियो के अतिरिक्त ४३ कवियो में केवल ९ ब्राह्मण थे, ५ मुसलमान, १३ जैन, १० भाट और ६ स्फुट जातियो के। ९ ब्राह्मणो मे से ५ महाराष्ट्र थे और केवल ४ युक्तप्रान्त के। इनमे भी गोरखनाथ के अतिरिक्त कोई महत्तायुक्त न था।

अब हम मुसलमानी सघट्ट का कथन करते हैं। अब तक जितने विजयी भारत में आये थे, वे सब केवल राजा के शत्रु थे, समाज के नही; न सामाजिक धर्म ने अबतक कभी पराजय पाई थी। उसको किसी बाहरी शक्ति का सामना भी नही करना पड़ा था। ब्राह्मण लोग शारीरिक बल का भरोसा न करके केवल मानस बल के अभिमानी थे। हमारा समाज राजबल की ओर तादृश ध्यान न देकर धर्मभीरु, धर्मप्राण तथा धर्माभिमानी था। मुसलमानो ने न केवल भारतीय राजबल का वरन् हमारी धार्मिक शक्ति का भी सामना किया। उन्होने न केवल राजाओ को जीता वरन् समाज को भी प्रतिमा पूजक तथा मुशरिक कहकर उसकी निन्दा की। ऐसे धार्मिक निन्दापूर्ण कथन भारत मे नवीन न थे, किन्तु ऐसे अस्त्र नवीन थे। पण्डितो को धार्मिक विवादो से इनकार न था, किन्तु मुसलमानो ने नवीनता यह की, कि धार्मिक बल का मानस बल से सामना न करके उसका भी सैन्य बल से ध्वसन प्रारम्भ किया। यह बात उनके लिये साधारणी तथा हमारे लिये नवीन थी। हम तो समझते थे कि हमारे राजा बलहीन है तो तुम्ही सही, मज़े में राज्य करो, कर उगाहो, प्रबन्ध करो, किन्तु शान्तिप्रिय प्रजा के मानस बल का ह्रास सैन्यबल से न करो; हमारे विश्वासो, शान्तिपूर्ण आचारो आदि से तुमको प्रयोजन नही। जब मानस बल से हमे न हराकर उन्होने सैन्यबल से हमारी मानस शक्ति का भी सामना

किया, तब भारतीयो ने दबने के स्थान पर उन्हे परम नीच और अस्पृश्य तक समझा। हमको उनके छूने तथा उनकी छुई हुई वस्तु के खाने तक से इनकार हुआ। ऐसा बहिष्कार भारत ने किसी प्राचीन विजयी का नही किया था। पहले के विजयी लोगो से हमारे समाज का अतिशीघ्र रोटी बेटी तक का सम्बन्ध होने लगता था, किन्तु मुसलमानो का हमने घोर अपवाद से स्वागत किया। शारीरिक शक्ति तो हममे पर्याप्त थी नही, सो आत्मबल से समाज ने उनसे युद्ध आरम्भ किया। उन्होने हम पर जजीया लगाया, ज़बरदस्ती हमे मुसलमान बनाया, तथा हमारे मन्दिर तोडे फोडे, किन्तु हम दबे नही। हमने उनके साथ अपने उन भाइयो तक का बहिष्कार किया जो बलपूर्वक भी पर धर्म मे गये थे। अतएव कुछ लोग छीन लेने के सिवा मुसलमानी सभ्यता प्रारम्भिक काल मे हमारे ऊपर कोई प्रभाव न डाल सकी। यदि हम उस काल परधर्म ग्राही अपने भाइयो तक का बहिष्कार न करते, तो शायद समय पर हिन्दूमत का पता न लगता। जो हम अबतक वही बहिष्कार किये जा रहे हैं, वह दूसरा प्रश्न है। कुछ मुसलमानो ने हिन्दी कविता भी की, किन्तु धार्मिक नही। कोई भी मुसलमानी राजवंश बना या बिगडा, हमारे समाज को उससे प्रयोजन न था। हमारे कवियों ने जो कुछ युद्ध वर्णन किया, उसमे हिन्दू वीर या तो मुसलमानो को कूटते रहे अथवा पूर्ण शौर्य्य के साथ मरे। जो घृणास्पद कादरपन वास्तव मे हमने रणक्षेत्रो मे दिखलाया, उसकी छाया हमारे ग्रन्थो मे नही है। हमारा साहित्य हममे पूर्ण शौर्य स्थापित करता रहा।

हिन्दी साहित्य के कुछ ऐतिहासिक लोग हिन्दू पराभव मे हमारी घोर निराशा देखते है। हम्मीर के पीछे कुछ काल तक वीर-काव्य के अभाव मे वे हमारी अन्तिम आशा का विनाश अनुभव करते हैं। ये विचार मानस कल्पनाओ भर के फल है, न कि किसी ऐतिहासिक आधार के। हमारा कोई भी ग्रन्थ हम मे निराशा

अथवा पराजित मानस का बोध नही कराता। हम वास्तव में हारे भी न थे, वरन् युद्ध कर रहे थे। कुछ राज्यो का पतन हो गया था, किन्तु प्रजा हारी न थी, वरन् आत्मबल से पूर्ण दृढता के साथ युद्ध मे प्रवृत्त थी। हमने चंगेज खां हलाकू, तैमूरलंग और नादिरशाह के कत्लआम सहे, किन्तु अपने सामाजिक बहिष्कारवाले अस्त्र को ८०० वर्षों के भीतर कभी अणुमात्र ढीला नही किया, न यथा साध्य अपने धर्म तथा समाज का रूप बिगडने दिया। वीर काव्य का तत्कालीन अभाव भी परम साधारणी घटना है। हिन्दी मे ऐसा काव्य तत्कालीन किसी ब्राह्मण ने नही लिखा, वरन् वे राजाश्रित भाटो की कृतियां थी। जब उत्तर भारतीय राज्य ही नष्ट हो गये, तब ऐसे भाटो का व्यापार जाता रहा। ऐसी दशा मे वैसी रचनाओ का बन्द हो जाना परम स्वाभाविक था। समाज नेता उस काल भाट न थे, न वे समाज के मुख्यांग थे। राज्य नष्ट होनेसे एक प्रकार का व्यापार अर्थात भाटो द्वारा नृप यशगान जाता रहा। इसमे न कोई निराशा परिलक्षित होती है न समाज का उत्साहाभाव। समाज तो पूर्ण उत्साह से आत्मरक्षण एवं शत्रु प्रहार के निराकरण मे लगा था। हम यदि निराशा धारण करते या उत्साह छोड़ते, तो ५०० वर्षों के मुसलमानी शासन के पीछे एक भी हिन्दू देख न पडता। इसके विपरीत हम देखते हैं कि हमारा साहित्य एवं समाज दिनो दिन उन्नति करता आया है, और आज भी उन्नतिशील है। हमारे समाज के केवल अधोभाग से कुछ लोग मात्र मुसलमान हुए, सोभी भारी से भारी दबाव पडने पर। उच्च श्रेणियो से केवल कुछ भूमिप्रिय क्षत्रिय भूमि एवं अधिकार का लालच न संवरण कर सकने के कारण सुखपूर्वक मुसलमान हुए। शेष जितने उच्चश्रेणी के लोग परधर्म मे गये, वे परवश होकर गये, न कि स्वेच्छा से। अन्याय की मात्रा यहांतक बढी थी कि चार भाइयो मे यदि एक मुसलमान हो जाय तो उसे सबका भागतक दिलाने का न्यायालय

प्रयत्न करता था। मन्दिर टूटते और उपद्रव होते थे, किन्तु यह सब सहकर भी समाज ने साहस न छोडा। देश बडा तथा हमारी जनसंख्या असंख्य प्राय होने से मुट्ठी भर मुसलमान समाज की सम्मति के प्रतिकूल अपनी अन्याय पूर्ण इच्छाओ को कम से कम दूरस्थ स्थानो मे प्रयोग रूप मे ला भी नहीं पाते थे। जितना कुछ अन्याय वे कर लेते थे, समाज उससे दबने के स्थान पर यही सोचता था कि यह भी सही। समाज के लिये दबने का प्रश्न न था।

इसी स्थान पर हमारा प्रारम्भिक इतिहास समाप्त होता है।

पूर्व माध्यमिक हिन्दी

(सन् १३८७ से १५०३ तक)।

इस काल में साहित्य का विकास बहुत अच्छा हुआ। यदि आगे चलकर सूर तुलसीकाल इतना चामत्कारिक न होता, तो शायद यही समय बहुत प्रौढ़ कहलाने लगता। प्रारम्भिक समय में सिवा चन्द बरदाई, जल्हन और अमीर खुसरो के कोई सुकवि नहीं हुआ, किन्तु इस पूर्व माध्यमिक काल मे यद्यपि साहित्यिक दृष्टि से केवल विद्यापति और कबीर ही सुकवि थे, तथापि कविता के विषयो का फैलाव बहुत अच्छा हुआ और वर्णन प्रणाली ने ख़ासी उन्नति कर ली। सेन कवि की रचना वर्त्तमान कविता तक का सामना कर सकती है। यही दशा कई और कवियो की है। इस काल हमको ५० कविगण मिलते हैं, जिन सब के वर्णन हमने मिश्रबन्धु विनोद मे किये है, जो ग्रन्थ हम मिश्रबन्धुत्रय कृत है। हमारे उत्तरी रंगमच से अपने राजाओ के लुप्तप्राय हो जाने से भाट कवियो का अस्तित्व इस काल बिलकुल जाता रहा, तथा नृप यशगान की प्रणाली एकदम उठ गई। इस काल हम भीमा नामक केवल एक बहुत ही साधारण प्रतिभा युक्त चारण कवि पाते हैं, किन्तु ब्राह्मण इन ५० कवियो में ३० से अधिक होगे तथा उनकी रचना भी प्रौढ़ है। 'गोरखनाथ' और विद्यापति की देखा देखी ब्राह्मणों ने अपना प्राकृतिक साहित्य रंजन का कार्य हिन्दी मे भी एकदम उठा लिया, और उसे बड़े उत्साह के साथ बढ़ाया। करते वे यह कार्य प्रारम्भिक काल मे भी थे, किन्तु उस समय उनका ध्यान संस्कृत की ओर विशेष था। मुसलमानो मे इस काल कबीरदास, कमाल, कुतबन शेख़ तथा

तीन और रहस्यवादी कविगण हुये। रहस्यवाद का इसी काल से उत्थान हुआ, जैसा कि आगे कुछ विस्तार के साथ दिखलाया जावेगा। धर्मप्रचारको मे इस समय हम स्वय स्वामी रामानन्द, नामदेव, कबीरदास, चैतन्य महाप्रभु, वल्लभाचार्य तथा बाबा नानक को पाते है। इनके अतिरिक्त सेननाई, धना, रैदास, भवानन्द, अनन्तदास, पीपा, कमाल और धर्मदास नामक अच्छे अच्छे महात्मा हिन्दी साहित्य मे योग देते हुये देख पड़ते है। समझ पडता है कि जनता पर मुसलमानी धार्मिक आक्रमण से उत्तर भारतीय सन्तो को समाज रक्षा की आवश्यकता प्रतीत हुई, जिससे संस्कृत छोड वे देशभाषा हिन्दी मे बड़े उमगपूर्ण बचनो मे उपदेश देने लगे। पीपा महाराज गागरौन गढ़ के राजा थे। स्वामी रामानन्द के उपदेशो का इन पर इतना प्रभाव पडा कि ये राज छोड़ सन्त हो गये, तथा भजन पूजन एवं हिन्दी साहित्य मे प्रवृत्त हुये। सेननाई ऐसे भारी महात्मा थे कि स्वयं रीवा नरेश, ऊची जाति का अभिमान छोडकर, इनके शिष्य हुये। महाराणा कुम्भकर्ण चित्तौर नरेश का समय १३६२ से १४१२ तक था। आप स्वय हिन्दी कवि थे, तथा आपके आश्रय मे बहुतेरे कवि रचना करते थे, किन्तु अब उनके नाम लुप्त-प्राय हो गये है। इस काल तीन जैन और ५ महाराष्ट्र हिन्दी कवि उपलब्ध है, तथा एक गुजराती महिला भी हिन्दी साहित्य मे योग देती थी। धना, रैदास, भवानन्द, अनन्तदास, पीपा, सेननाई, कबीरदास आदि सब स्वामी रामानन्द के शिष्य थे। विद्यापति के अतिरिक्त इस काल जैदेव तथा उमापति नामक दो मैथिल कवि भी मिलते हैं। नारायण देव (हरिश्चन्द्र पुराण), विष्णु गोपाल (महाभारत कथा, स्वर्गारोहण तथा रुक्मिणी मंगल) और पुरुषोत्तम (धर्माश्वमेध) नामक तीन ऐसे भी कवि मिलते है, जिन्होने पौराणिक कथाओ को भाषा मे कहा। आदिम काल मे चन्दकृत रासो मे भी ऐसे वर्णन हैं किन्तु यह निश्चय नही है कि वे चन्द कृत

है अथवा १५८० के इधर उधर नवीन सम्पादको ने उन्हें जोडा है। चरणदास ने ज्ञान सरोवर बनाया। दामो ने लक्ष्मणसेन पद्मावती की काल्पनिक प्रेम कथा रची, किन्तु सूफी कवियो की भांति इसमे रहस्यवाद न रख सीधी सादी कथा औपन्यासिक रीति पर कही। इस ढंग की यह पहली पद्य रचना हिन्दी मे हुई। इन सब रचनाओ का कुछ सविस्तार वर्णन विनोद मे हम दे चुके है। यहां केवल हवाला दे देना बस है। स्वामी रामानन्द के उपदेशो से हम नामदेव दर्जी, रैदास चमार, सेननाई, दादू धुन्ना तथा कबीर जुलाहा की महत्ता देखते है। नीची कहलाने वाली जातियो की यह उन्नति महात्मा रामानन्द के भारी प्रभाव को प्रकट करती है। बाबा नानक अथच पीछे के शिवनारायण, जगजीवन दास आदि ने नाम तथा सद्गुण की तो महिमा गाई, किन्तु मूर्त्ति पूजा, अवतार, जाति पाति तथा कर्मकांड का विरोध किया। हिन्दी मे भक्त कवियो के प्रयत्नो से रासो कालवाली एकागता कुछ दूर हुई तथा व्यापकता के समावेश से हमारे साहित्य मे चमत्कार आया। राजसेवक रचनाकारो मे स्वतन्त्रता की मात्रा स्वभावश कुछ कम होती है, क्योकि उन्हें अपने स्वामी के भी विचारो पर चलना पड़ता है, तथा उसकी अनुचित स्तुति ये साधारणतया नही छोड पाते। इन कारणो से ऐसी रचनाओ मे कुछ इकंगीपन तथा व्यापकता की कमी दिखने लगती है। धार्मिक प्रथा के इस प्रकार स्थापित होने से व्यापकता बढ़ी। अब हम इस काल के प्रमुख साहित्य सेवियो के वर्णन द्वारा अपने ऐतिहासिक डोर को फिर से उठावेगे।

विद्यापति।

महामहोपाध्याय विद्यापति ठाकुर का रचना काल १३८८ समझा जाता है। आपने संस्कृत मे कई ग्रन्थ रचे, तथा विहारी हिन्दी मे भी मधुर कोमल कान्त पदावलीपूर्ण भारी साहित्य बनाया, जिसकी

मिथिला तथा बंगाल मे बड़ी प्रशंसा है। काम-काज के अवसरो पर आपके गीत मैथिल गृहस्थो के यहा गाये भी जाते हैं। इनके ग्रन्थ में ८४१ पद् राधाकृष्ण के शृङ्गार विषयक, ४४ शिव पार्वती के, ३१ विविध विषयो के, और अन्त मे २० कूट और पहेलियो के हैं। आपके कुछ पद् प्राकृत रूप मिश्रित भाषामे भी मिलते है। आपका साहित्य प्रौढ़ श्रेणी का है। फिर भी आपकी कृष्णभक्ति सम्बन्धिनी रचना मे लौकिक शृङ्गार की ध्वनि बहुत देख पडती है, यहां तक कि अश्लीलता की मात्रा कुछ प्राचुर्य के साथ आ गई है। हिन्दी मे ऐसी रचनाओ के आप ही अगुआ है। चैतन्य महाप्रभु आप के पदो को बड़े प्रेम से गाया करते थे। आपकी कविता प्रणाली पर गीत गोविंदकार जयदेव का तथा बंगाल और मिथिला मे तत्काल प्रचलित तान्त्रिक एव बाममार्गस्थ विचारो का भारी प्रभाव समझ पडता है। आपने दो नाटक ग्रन्थ भी रचे।

उदाहरण।

सरस बसंत समै भल पाओलि दछिन पवन बहु धीरे।
सपनेहु रूप बचन यक भाखिय मुख सेदुर करु चीरे।
तोहर बदन सम चांद होअथि नहिँ जैयो जतन बिह बेला।
कैबेर काटि बनावल नव कय तैयो तुलित नहिँ भेला।
लोचन तूअ कमल नहिँ भैसक से जग के नहिँ जाने।
से फिर जाय लुकेनह जल मय पकज निज अपमाने।
भनहिँ विद्यापति सुन बरजौमति ईसम लछमि समाने।
राजा शिवसिँह रूपनरायण, लछिमा दइ प्रतिमाने।

जयदेव तथा उमापति मैथिल की रचनाये भी इसी ढंग की है।

धार्मिक साहित्य।

[रामानन्द]

श्रीस्वामी रामानन्दजी कान्यकुब्ज ब्राह्मण प्रयाग के निवासी सन् १३६६ के लगभग हुये। आप एक प्रसिद्ध वैष्णव मत संस्थापक तथा संस्कृत के भारी विद्वान थे। आप सिद्ध योगी हो गये हैं। महात्मा कबीरदास इन्ही के शिष्य थे, अथच महात्मा तुलसी भी इन्ही के शिष्य सम्प्रदाय मे हुये। इनके अन्य शिष्यो का कथन ऊपर हो चुका है। रामानन्दी सम्प्रदाय में आज भी हजारो सन्त है। अवध प्रान्त मे यही बहुत चलता है। कहना न होगा कि आप समाज तथा हिन्दी के अमोघ उपकारको मे से है। आप महात्मा रामानुजाचार्य के चेले देवाचार्य के शिष्य हरिनन्द के शिष्य राघवानन्द के चेले थे। महात्मा रामानन्द का प्रभाव उत्तरी वैष्णवता पर बहुत अच्छा पड़ा। स्वामी रामानुजाचार्य शूद्रो को अपने सम्प्रदाय मे नही रखते थे, किन्तु आपने चमारो तक को अपनाया, और मुसलमान कबीर को भी शिष्य बना ही लिया। रामानुज ने नारायणोपासना पर बल देकर अहिसा का प्राधान्य एव हिसायुक्त बलि तथा ऐसे कर्मकांड का निरादर किया। इधर आपने रामोपासना पर बल दिया। उन्होने संस्कृत मे शिक्षा दी, और इन्होने सस्कृत न छोडकर हिन्दी मे भी उपदेश दिये, तथा कुछ काव्य रचना की। गोस्वामी तुलसीदास के पूर्व रामानन्दियो मे अध्यात्म रामायण की मुख्यता थी। पीछे से न केवल रामानन्दियो वरन् पूरे भारत मे तुलसीकृत रामायण की महत्ता हुई। उत्तरी भारत मे दक्षिण मार्गस्थ शुद्ध वैष्णवता के प्रचार मे सर्व प्रथम तथा सर्व श्रेष्ठ प्रभाव स्वामी रामानन्द का ही पड़ा। गोस्वामी तुलसीदास तथा कबीरदास के साधारण जनता पर जो भारी प्रभाव है, उनका भी बहुत कुछ श्रेय स्वामी रामानन्द को है। दक्षिण में जो पद रामानुज का है, वही

उत्तर मे इनका समझना चाहिये। आपने सीताराम सम्बन्धिनी पवित्र भक्ति का प्रचार किया और परमेश्वर को न भुलाते हुए ईश्वर पर प्रधानता रक्खी। ईश्वर के आपने चार आदर्शीकरण माने, अर्थात् अर्चा (मूर्त्ति), व्यूह विभव (अवतार), पर (चतुर्भुज नारायण) और अन्तर्यामी (सर्वव्यापी)। व्यूह मे मन, बुद्धि, चित्त, और अहङ्कार को मानकर उनके अवतार आपने क्रमश' भरत प्रद्युम्न, रामकृष्ण, शत्रुघ्न अनिरुद्ध और लक्ष्मण बलदेव माने। उपदेश हिन्दी मे देते हुए आपने सिद्धान्त सस्कृत मे लिखे, और सारे भारत का पर्यटन करके उनका खूब प्रचार किया। ससार के लिये वर्णभेद को मान्य कहते हुये केवल उपासना तथा सन्तो के लिये आपने उसका तिरस्कार किया। इससे प्रकट है कि रामानन्द लोकयात्रा के समुचित सिद्धान्तो से नही हटते थे। यदि उस काल आप जाति भेद को ससारी लोगो से भी हटाना चाहते, तो समाज मे भारी खलबली मचकर वह बलहीन हो जाता और उस पर जो मुसलमानी मत का आक्रमण हो रहा था, उसका वह संवरण न कर सकता। अतएव शूद्रो का सन्तो मे उचित समादर करते हुए भी आपने सामाजिक स्थिति देखते हुए उस मे विश्रृङ्खलता न आने दी। यह रामानन्द ही से महोपदेशको के प्रयत्न का फल था कि हमारा समाज विधर्म्मियों के आक्रमण से अपनी रक्षा कर सका।

नामदेव।

नामदेव दर्ज़ी (दाक्षिणात्य) पढरपुर के महात्मा, और वैष्णव सम्प्रदाय में ज्ञानदेव के शिष्य थे। इनका समय १४२३ के लगभग माना जाता है, यद्यपि उत्पत्ति काल कुछ लोग बहुत पुराना बतलाते हैं। आपकी भाषा व्रजभाषा है, जो सुव्यवस्थित रूप मे देख पड़ती है। आपने एकेश्वरवाद को प्रधानता देकर राम रहीम की एकता का उपदेश दिया, किन्तु मूर्त्ति पूजा तथा सगुणोपासना को नही

छोड़ा। आपकी रचना मे मुसलमानी मत का प्रभाव देख पडता है, और आप हिन्दू मुस्लिम ऐक्य के उपदेशक है। आपने जाति पांति की एकता, ज्ञानात्मक ब्रह्मानन्द की महत्ता तथा भक्ति को प्राधान्य दिया। अरबी फ़ारसी के भी शब्दो को कुछ मान देकर आपने भाषा उन्नत लिखी। फिर भी आपकी रचना का सूफी मत से लगाव न था, अथच उसमे ब्रह्मवाद का प्रेम प्रधान भाव कम था। आपका व्यक्तिगत प्रभाव अधिक न पड़ा, किन्तु सन्तो के प्रयत्नो का जो तत्कालीन सामूहिक प्रभाव पडा, उसमे आपका भी अच्छा योग था। पीछे की रचना मे आप कुछ निर्गुण की ओर भी झुके है।

कबीर

महात्मा कबीरदास [illegible] का समय १३९८ से १५१८ तक है। आप मानस बल में भीम थे। हिन्दुओ के केन्द्र काशी मे उत्पन्न होने तथा भक्त मानस के होने से आपके ऊपर हिन्दू विचारो का प्रभाव अधिकता से पड़ा था। आप महात्मा रामानन्द के शिष्य तथा सिद्धहस्त कवि एवं पहुचे हुये वैष्णव सन्त थे। मन्त्र तो इन्होने रामनाम का पाया और उसका जाप कभी न छोड़ा, किन्तु प्रौढ रचनाओ मे उसके साथ आपने सत्यनाम भी मिलाया, तथा राम का अर्थ ररकार मूलक लगाकर उसे अपने निर्गुणवाद के अनुरूप बनाया। पहले रामानन्दी होकर भी समय पर आप कट्टर निर्गुणवादी हुये, वरन् आपके विचार निर्गुण ब्रह्म के भी आगे बढ़कर शुद्ध औपनिषत्साहित्य से मिल गये, तथा आप पक्के परब्रह्मवादी हुए। अपरब्रह्म, ईश्वर, विष्णु, शिव, अवतार आदि के विचारो से आप बहुत आगे बढ गये, अथच सच्चे अद्वैतवादी बने रहे। आप सगुण की भक्ति तथा निर्गुण का ज्ञान बतलाते थे, किन्तु अपने ईश्वर मे भक्ति करने योग्य बहुत कम गुण स्थापित करते थे, क्योकि

आपके ब्रह्मविचार मे भक्ति के समय भी निर्गुणता की मात्रा अधिकता से बनी रहती थी। ऐसे ईश्वर की भक्ति क्यो की जावे? इस प्रश्न का उत्तर आप बहुत हृदयग्राही नही दे पाते थे, क्योकि आपके ईश्वर मे निर्लेपता बहुत अधिक रहती है। आत्मा की तो आपने बहुत उत्कंठा दिखलाई है, किन्तु परमात्मा बिल्कुल उदासीन रहता है। शायद आप जानते है कि आपका ईश्वर भक्ति के योग्य कम है। इसी से आप उल्टवासी तथा इतर अन्योक्तियो का प्रयोग बहुतायत से करते है। फिर भी उन अन्योक्तियो में केवल मूर्ख-मोहिनी विद्या रहती है। होती यही बात कुछ कुछ सगुण भक्ति मे भी है, किन्तु उसपर सच्चे विश्वास का आवरण रहता है, और सशयात्मा विनश्यति की फटकार बनी रहती है। उल्टवासी मे ये बाते भी नही है। उनकी यथार्थता न श्रोता मानता है न वक्ता, बुद्धि वैभव मात्र का चमत्कार है। ऐसी दशा मे कोई पण्डित उससे क्यो मोहित हो? इसी से जहां आपका ज्ञान बड़े बड़े पण्डितो के योग्य है, वही उल्टवांसी आदि मे निम्नश्रेणी को ही आनन्द आवेगा। फल यह है कि आपकी भक्तिवाली रचना मे साधारण लोगो के लिये रुचिकर मसाला कम है। या तो वह पूर्ण पण्डितो को मोहित करेगी या मूर्खों को। भक्ति से इतर उपदेश आपके अवश्य ऊचे हैं, जिनके कारण गोस्वामी तुलसीदास के पीछे उत्तर भारतीय जनता पर आप ही का सब से बढ़कर प्रभाव पड़ा है। उत्पन्न तो आप मुसलमान के घर हुये, किन्तु थे मुसलमाननुमां हिन्दू, अर्थात् मुसलमान होकर भी वास्तव मे हिन्दू थे। चले तो थे भक्ति करने, किन्तु उन्नत मानस ने अपरब्रह्म के लिये चित्त में स्थान ही न रक्खा। आप न हिन्दूपन ढंढते थे, न मुसलमानी, वरन् सच्चे ज्ञानपन्थी थे। खरी रचना ऐसी की है कि हिन्दू मुसलमान दोनो को फटकार बतलाया ही करते थे। फिर भी हिन्दुओ की निन्दा बहुत करते थे तथा मुसलमानो की कम। इसी भांति सिद्धान्त भी हिन्दूपन के ही

ग्रहण करते थे, और इस ओर भी मुसलमानो पर बहुत कम झुकते थे। जाति पाति, तृमूर्त्ति, अवतार, प्रतिमा, रोजा, नमाज आदि सभी के आप निन्दक थे। मानते थे केवल शुद्ध परमात्मा तथा शुद्ध दैवी प्रेम को। ग्रन्थ भी पचास से ऊपर लिखे है, जिनमे बीजक की मुख्यता है। रचना सब मुक्तको मे है। भाषा बनारस की, बिहारी तथा अवधी थी। खडी बोली भी लिखते थे। भाव बहुत ऊचे है, किन्तु उनके आगे भाषा कुछ दबी हुई है। एक प्रकार के पैगम्बर थे। कवि भी बहुत ऊचे दर्जे के थे। हमने इन्हे भी हिन्दी नवरत्न मे स्थान दिया है।

उदाहरण।

मोको कहा ढूंढता बन्दे मै तो तेरे पास मे।
ना मैं छगरी, ना मै भेडी, ना मै छुरी गडास मे।
मै तो रहू सहर के बाहर मेरी पुरी मवास मे।
कहे कबीर सुनो भइ साधो सब सासो की सास मे।
कहू उस देश की बतियां, जहां नहिँ होत दिन रतियां।
सुहंगं नाद नहिँ भाई, न बाजे संख सहनाई।
निहद्धर जाप तहँ जापै, उठत धुनि सुन्नते आपै।
सरगुन की सेवा करो निरगुन का कर ज्ञान।
निरगुन सरगुन के परे रहे हमारा ध्यान।
सन्तो बीजक मत परमाना।
कैयक खोजी खोजि थके कोइ विरला जन पहिँचाना।
अगम अगोचर धाम धनी का सबै कहे हाँ जाना।
दिखे न पन्थ, मिले नहिँ पन्थी खोजत ठौर ठिकाना।
कोउ ठहरावे सुन्यक कीन्हां जोति एक परमाना।
कोउ कह रूप रेख नहिँ वाके, धरत कौन को ध्याना?
पच्छ अपच्छ सबै पचि हारे करता कोइ न विचारा।
कौन रूप है साचा साहब नहिँ कोई निरधारा।

कुसलै कुसल कहत जग बिनसल कुसल काल को फासी हो।
कह कबीर सब दुनिया बिनसल रहल राम अबिनासी हो॥

कोई ध्यावै निराकार को कोइ ध्यावे साकारा।
वह तो इन दोउन ते न्यारा जाने जानन हारा॥
रेंडा रूख भया मलयागिरि चहुँ दिसि फूटी बासा।
तीनि लोक ब्रह्मण्ड खंड मे देखै अध तमासा॥

किंगरी सारँग बजे सितारा। अच्छर ब्रह्म सुन्न दरबारा॥
द्वादश भानु उये उजियारा।

खटदल कवल मँझार शब्द रँरकारा है।

कहे कबीर विचारि के जाके बर्न न गॉव।
निराकार औ निर्गुना है पूरन सब ठॉव।
मुरली बजत अखंड सदा ये तहँ सोहं झनकारा है।
खोड़स भानु हस को रूप। बीना सम धुनि बजे अनूप।
यहि घट चन्दा यहि घट सूर। यहि घट गाजै अनहद तूर।
यहि घट बाजै तबल निसान। बहिरा शब्द सुनै नहिँ कान।
बीज मध्य ज्यो बिरछा दरसे, बिरछा मध्ये छाया।
परमातम मे आतम तैसे आतम मध्ये माया।
चोट कापै करौ उलटि आपै डरौ जहा देखौ तहा प्रान मेरा।

भजूं तो को है भजन को, तजूं तो को है आन।
भजन तजन के मध्य मे, सो कबीर मन मान।

झीनी झीनी खीनी चदरिया।

काहेक ताना काहेकि भरनी कौन तार ते हीनी चदरिया।
इँगला पिँगला ताना भरनी सुखमनतार ते बीनी चदरिया।
आठ कँवल दस चरखा डोलै पाच तत्व गुन तीनी चदरिया।
साइं को सियत मास दस लागे ठोकि ठोकि कै लोनी चदरिया।
सो चादर सुर नर मुनि ओढ़ी ओढ़ि के मैली कीनी चदरिया।
दास कबीर जतन ते ओढ़ी ज्यो की त्यो धरि दीनी चदरिया।

प्रभुता को सब कोउ भजै प्रभु को भजै न कोय।
कह कबीर प्रभु को भजै प्रभुता चेरी होय॥

निन्दक एकहु मति मिलै पापी मिलै हजार।
इक निन्दक के सीस पै कोटि पाप को भार॥

चलौ चलौ सब कोउ कहै पहुँचै बिरला कोय।
एक कनक अरु कामिनी दुर्गम घाटी दोय॥

कर बहियां बल आपनो छांडु पराई आस।
जाके आंगन है नदी सो कस मरे पियास॥

मन मुरीद संसार है, गुरु मुरीद कोउ साधु।
जो मानै गुरु बचन को, ताको मता अगाधु॥

मन के हारे हार है, मन के जीते जीत।
कह कबीर प्यौ पाइये, मन ही की परतीत॥

नवन नवन बहु अन्तरा, नवन नवन बहु बान।
ये तीनौं बहुतै नवैं, चोता, चोर, कमान॥

जिन ढूंढा तिन पाइया, गहिरे पानी पैठि।
हौ बौरी बूडन डरी, रही किनारे बैठि॥

सबका साखी मेरा साईं।

ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर लौं औ अव्याकृत नाईं।
सुमति पचीस पांच तै करि लै यह सब जग बौराया।
अकर उकार मकार मातरा इनते परे बताया।
जाग्रत सुपन सुषुप्त तुरीया, इनते न्यारा होई।
राजस, तामस, सात्विक, निरगुन, इनते आगे सोई।
सुछम थूल कारन महँ कारन इन मिलि भोग बखाना।
तैजस विश्व पराग आतमा इनमे सार न जाना।
परा पसन्ती मधमा बैखरि चौबानी ना मानी।
पाच कोष नीचे करि देखो इनमे सार न जानी।

कुरम सेस किरकिला धनजय देवदत्त कहँ देखो ।
चौदह इन्द्री, चौदह इन्द्रा, इनमे अलख न पेखो ।
ततपद त्वम्पद और असीपद बाच्य लक्ष्य पहिँचाने ।
जहद लच्छना अजहद कहने अजहद जहद बखाने ।
सतगुरु मिलि सत शब्द लखावै सार शब्द बिलगावै ।
कहत कबीर सोई जन पूरा जो न्यारा करि गावै ।

कबीर साहब ने सूफी सिद्धान्त पर भी कुछ श्रद्धा पूर्ण कथन किये है, किन्तु आपका उपदेश तर्कवाद पर अवलम्बित है, जो औपनिषत् ज्ञान के सहारे चलता है। बहुज्ञता आपकी अच्छी थी, किन्तु शुष्क ज्ञान कथन के कारण कबीर पन्थ मे न तो उच्च कोटि के लोग आये न साधारण, क्योकि साधारणो के लिये उसमे कुछ था नही और उच्च कोटि के लोग केवल ज्ञानार्थ सिद्धान्त पढते है। उन्हे किसी सम्प्रदाय मे जाने से क्या प्रयोजन, क्योकि अपने ही यहा किस सिद्धान्त की कमी है ? पहले लिखे हुये हिन्दू शास्त्रीय विचारो पर मनन करने से कबीर साहब को मानसिक उच्चता प्रकट हो सकती है। इन्ही कारणो से हम देखते है कि इनको उल्टवासी, अन्योक्ति, आदि से चकित होकर केवल निम्नश्रेणी के लोग कबीर पन्थ मे गये, और स्वामी रामानन्द, तुलसीदास आदि के उपदेशो को भाति वह हिन्दू समाज के गले का हार न हो सका, क्योकि वह समाज हिन्दू मुसलमान सिद्धान्तो की एकता तथा जाति पाति का निराकरण मानने को तैयार न था। एकता का विरोधी मुसलमान व्यवहार था, और जाति पाति छोडने से संगठन बिगडता था, जिससे सामाजिक शक्ति घट जाने का भय था। कबीरदास के पन्थ मे कई शाखाये हुई, जिन मे से दो के मुखिया इनके पुत्र कमाल तथा शिष्य धरमदास हुए। इस पन्थ मे थोड़े से मुसलमान भी है।

अध्यापक हुए। थोडे ही वर्ष पीछे आप संन्यासी होकर जगन्नाथ पुरी, वृन्दावन आदि मे उपदेश करते, और अपनी प्रगाढ भक्ति से ससार को पुनीत एव वैष्णवता को वृद्धिगत करते रहे। ४८ वर्ष की अवस्था मे आपने पुरी मे शरीर छोडा। आप कभी कभी ऐसे प्रेमोन्मत्त हो जाते थे कि तन बदन का होश भी न रख सकते थे। ऐसी ही दशा मे एक बार समुद्र मे घुस पड़े, और इसी प्रकार आपका अन्त हुआ। मूर्छित तो प्राय. हो जाया करते थे जौर भक्ति के प्रेम मे उन्मत्त होकर नृत्य भी किया करते थे। एक बार आपने कहा था कि मनुष्य को अवतार मानना पाप है। फिर भी कभी अपने को राधा और कभी कृष्ण कहने लगते थे। लोग आपको कृष्ण का अवतार मानते हैं। बगाल के शाक्त सिद्धान्तो से प्रभावित होकर आपकी भक्ति बाम मार्ग की ओर चली गई, यद्यपि स्वय आपका चरित्र बहुत उच्च था। आपकी भक्ति का प्रभाव बंगाल, बिहार तथा वृन्दावन मे बहुत पडा। आपका सम्प्रदाय गौडीय कहलाया। आप वल्लभाचार्य के सहपाठी तथा पूरे ऋषि थे। आपके शिष्य रूपसनातन वृन्दावन मे रहने लगे। इन्ही के प्रभाव से गौडीय सम्प्रदाय की महिमा वृन्दावन में बढी, तथा उसके विचारो का मान अन्य सम्प्रदायो मे भी हुआ, जिससे वैष्णवता मे बाम मार्ग बढा। चैतन्य महाप्रभु स्वयं हिन्दी के कवि न थे, किन्तु इनका प्रभाव हमारे कवियो पर पडा है।

वल्लभ।

महाप्रभु वल्लभाचार्य वल्लभीय सम्प्रदाय के सस्थापक दाक्षिणात्य ब्राह्मण थे। आप संस्कृत के धुरन्धर पण्डित और सुकवि थे। अपने सम्प्रदाय मे आप श्रीकृष्ण के अवतार माने जाते हैं। कृष्ण भक्ति सम्बन्धी वैष्णव सम्प्रदाय दो ही बहुत चले, अर्थात बंगाल मे गौडीय और युक्तप्रान्त मे वल्लभीय। रामानन्दी सम्प्रदाय भी

युक्तप्रान्त मे बहुत चलता है। हिन्दी कविता भाडार वल्लभाचार्य के शिष्यों की रचनाओ से बहुत भरा है। व्रज भाषा का प्राधान्य जो हमारी कविता पर है, उसके मुख्य कारण यही है। अष्टछाप इन्ही के सम्प्रदाय की है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, महाप्रभुजी ने अपने भक्ति सम्बन्धी विचार निम्बार्क स्वामी पर अवलम्बित किये है, और दार्शनिक विष्णु स्वामी पर। आप शुद्धाद्वैत मत के प्रवर्त्तक हैं। आपके प्रभाव से वैष्णवता का बल माडवार और गुजरात में भी पहुँचा। अतएव हम देखते है कि युक्तप्रान्त में वैष्णवता के दो प्रधान अङ्ग हुये, एक तो सीताराम सम्बन्धो रामानन्दी और दूसरा राधा कृष्ण सम्बन्धी वल्लभीय। पहले का केन्द्र अयोध्या मे हुआ और दूसरे का वृन्दावन मे। महाप्रभु के पुत्र विट्ठलनाथजी तथा पौत्र गोकुलनाथजी के भी प्रभाव बड़े थे। इससे इनके वंशधरो की कई गद्दियां स्थापित होकर पुजने लगी। इन गद्दीधरो मे से समय पर कई की चरित्र हीनता से वैष्णवता को धक्का पहुँचा। अयोध्या और वृन्दावन सम्बन्धी दोनो शाखाये चली तो दक्षिण से थीं, किन्तु अयोध्यावाली सीधी युक्त प्रान्त आई तथा दूसरी बंगाल और बिहार को प्रभावित करती हुई, वृन्दावन पहुँची। शुद्ध दार्शनिक धर्म ससार मे कम व्यापक हुआ, किन्तु रागात्मक एव विश्वासात्मक भक्ति वाद शैव तथा वैष्णव दोनों सम्प्रदायो के रूपो मे चला। शैवमत भी दक्षिण से चलकर बङ्गाल तथा युक्त प्रान्त के मध्य भाग मे सबल हुआ।

सूफ़ी साहित्य।

सन् १५०१ मे कुतबनशेख़ ने मृगावती नामक प्रेम कथा मूलक ग्रन्थ अवधो भाषा के दोहा चौपाइयो मे बनाया। यह पहला प्राप्य ग्रन्थ है, जिससे सूफी वाद का प्रसार अपनी कविता मे हुआ। इस

प्रणाली मे मलिक मुहम्मद जायसी प्रधान थे। उनका रचना काल १५१८ से १५४३ तक है। इन्होने अपने पहले के चार ऐसे हो ग्रन्थो के नाम लिये हैं, अर्थात् मुगधावती, मृगावती मधुमालती और प्रेमावती। इनमे से मृगावती की खण्डित प्रति के अतिरिक्त केवल मधुमालती अबतक मिल सकी है, जो मझन कवि की रचना है। इन्होने अपनी प्रेम कथा मे नायक नायिका के साथ उपनायक उपनायिका भी रक्खी है। इस प्रकार मझन मे आदर्शवाद भी आगया है। यह ग्रन्थ सन् १५०२ से १५३८ तक कभी बना होगा, ऐसा लोगो का विचार है। उसमान कवि ने सन् १६१३ मे चित्रावली बनाई। इन्होने सूफी रहस्यवाद के साथ कथा मे पौराणिक पुट भी रक्खा है। १६१८ मे शेख नबी ने ज्ञानदीप कहा तथा १७३१ मे काशिमशाह ने हस जवाहिर बनाया। १७४४ मे नूर मोहम्मद ने बढिया साहित्य पूर्ण इन्द्रावती नाम्नी कथा कही। ये सारी कथाये सूफी रहस्यवादात्मिका है। इन लोगो ने आध्यात्मिक रहस्यवाद कहा है, जिसमे कथा चलती तो लोक पक्ष लिये हुये है, किन्तु साथ ही साथ उसमे लोकोत्तर आध्यात्मिक रहस्य भी व्यंजित रहते है। फ़ारसी मे मसनवियां भी इसी ढग पर चलती है, किन्तु उनमे मुसलमानी कथाये रहती है, तथा इन भारतीय रहस्यवादी मुसलमानो ने प्राय· सदैव हिन्दू कथाये लेकर इसी समाज का चित्रण किया है, अथच हिन्दू चाल ढालो, देवी देवताओ, तीर्थव्रतो आदिसे ऐसी सहृदयता रक्खी है, मानो कोई हिन्दू ही कथा कह रहा हो। इतना सब होते हुये भी चलते ये लोग मुसलमानी सूफीवाद के ही समर्थन मे है, और प्रयोजन इनका कट्टर खोदावाद की उन्नति का है। उसे ये लोग कट्टरता से अलग करके प्रेमपूर्ण बनाना अवश्य चाहते है, किन्तु कबीर की भाति उसकी बुराइयो की निन्दा नही करते न हिन्दुओ ही के अवगुणो की ओर दृष्टिपात करते हैं। ये कविगण सच्चे प्रेमी हैं, और संसार को प्रेम ही से

उन्नत करना चाहते है। दोहा चौपाइयो द्वारा अवधी भाषा मे ये कथा कहते है। इनके ग्रन्थ पढ़कर कट्टर से कट्टर हिन्दू या मुसलमान को धार्म्मिक जोश भव क्रोध न आवेगा। इसी प्रकार की कथाये जो हिन्दू कवियो ने कही है, उनमे दामो कृत लक्ष्मणसेन पद्मावती (सन् १४५६), पुहकर कृत रस रतन काव्य (१६१६), काशी राम कृत कनक मञ्जरी (१६५८), हरसेवक मिश्रकृत काम रूप की कथा, प्रेम पयोनिधि (१८५५) आदि गिनाई गई हैं। इनमे सीधा सादा प्रेम मार्ग है, किन्तु रहस्यवाद का अभाव है।

सूफ़ी मत।

सूफी मत मनुष्य मे नफ़ूस (इन्द्रिय), रूह (आत्मा), कल्ब (हृदय) और अक़्ल (बुद्धि) मानता है, तथा नफ़ूस का दमनश्रेय बतलाता है। कल्ब और रूह द्वारा साधन का कार्य किया जाता है। कल्ब पर सभी वस्तुओ का प्रतिबिम्ब पड़ने से उनका ज्ञान होता है। बुद्धि ज्ञान की मुख्य साधिका है। सूफी लोग चार जगत भी मानते है, अर्थात आलमे नासूत (भौतिक जगत), आलमे मलकूत या अरवाह (चित् जगत्), आलमे जबरूत (आनन्द लोक), तथा आलमे लाहूत् (सत्संसार या ब्रह्म लोक)। क़ल्ब वाला सिद्धान्त हमारे यहा के बिम्ब प्रतिबिम्ब वाद से मिलता है। अरब के विद्वान इब्न ने आत्मा और परमात्मा ब्रह्म की सत्ता के दो पटल माने है। सूफी मत ब्रह्मवाद तथा एकेश्वरवाद को प्रधानता देकर प्रेमपूर्ण रागात्मिका भक्ति तथा विश्वासवाद को लेता हुआ पैगम्बर तथा खोदावाद का भी सहायक था। मुसलमानी मत सातवी शताब्दी मे चला और लोगो का विचार है कि सूफी सिद्धान्त नवी शताब्दी से उठे। ये लोग जीव तथा जगत (जगत्) को भी ईश्वर से अभिन्न मानकर अद्वैत सिद्धान्त को अपनाते थे। सूफी मत भारत मे पहले पहल सिन्ध देश मे चला और पीछे वैष्णवता से भी प्रभावित होकर

अहिसावाद की ओर झुका। सूफियो का परमेश्वर निर्गुण निराकार होकर भी अनन्त प्रेम का भाडार है। तो भी धार्मिक प्रतिबन्ध के कारण सूफी कवियो ने रहस्य गर्भित कल्पित कथाओ द्वारा ईश्वरीय प्रेम एक नवीन ढग से व्यंजित किया। उनके कथानक बहुधा हिन्दू समाज पर अवलवित है, तथा उससे पूर्ण सहिष्णुता रखते है। खोदावाद ने जिस धनुष को एक ओर झुका रक्खा था, उसे सीधा करने को सूफी लोग दूसरी ओर खूब झुकते है। इतने पर भी भाषा शैथिल्य, साहित्यिक उच्चता की कमी, खोदावाद के अत्याचारो से तत्कालीन मुसलमानो के प्रति हिन्दू द्वेष, रहस्यवाद की गूढता, लोगो का उसपर साधारणतया ध्यान न जाना, एवं पौराणिक सिद्धान्तो की भारी लोकप्रियता के कारण मुसलमान रहस्यवादी कवियो का हिन्दू जनता पर कोई कहने योग्य प्रभाव न पडा। उधर सूफी कवियो की हिन्दुओ के प्रति बढी हुई सहानुभूति एवं हिन्दी मे रचना होने के कारण इस साहित्य को मुसलमानो ने भी न अपनाया। अब तक यह उच्च सिद्धान्त गर्भित कुछ अशो मे श्रेष्ठ कविता ससार मे अपने योग्य क्या प्राय कुछ भी मान पा न सकी। हम ऊपर देख आये है कि इस रचनावली के प्राप्य ग्रन्थ १५०१ से १७४४ तक बने। इनमे जायसी तथा नूर मुहम्मद की रचनाये साहित्यिक दृष्टि से भी उत्कृष्ट हैं। उनके कुछ उदाहरण यहा लिखे जाते है।

जायसी के उदाहरण।

कीन्हेसि मानुस दिहिसि बड़ाई। कीन्हेसि अन्न भुगुति तहँ पाई।
कीन्हेसि राजा भोजहि राजू। कीन्हेसि हत्थ घोर तहँ साजू।
कीन्हेसि तिहि कहँ बहुत विरासू। कीन्हेसि कोइ ठाकुर कोइ दासू।
कीन्हेसि दरबि गरबु जेहि होई। कीन्हेसि लोभु अघाय न कोई।
कीन्हेसि राकस भूत परेता। कीन्हेसि भूकस देव दयेता।
कीन्हेसि बन खँड औ जड़ मूरी। कीन्हेसि तरवर तार खजूरी।

कीन्हेसि कोइ निमरोसी, कीन्हेसि कोइ बरियार।
छारहि ते सब कीन्हेसि, पुनि कीन्हेसि सब छार।

कहउँ लिलार दुइज कइ जोती। दुइजइ जोति कहा जग अ ेती ?
सहस किरन जो सुरज दिपाये। देखि लिलार वहउ छिपि जाये।
का सिर बरनउँ दिपइ मयंकू। चादु कलंकी वह निकलंकू।
तिहि लिलार पर तिलकु बईठा। दुइज पास मानहु ध्रुव दीठा।

गोरइ दीख साथु सब जूझा। अपन काल नेरे भा बूझा।
कोपिसिंह सामुइ रन मेला। लाखन सन ना मरइ अकेला।
जेइ सिर देइ कोपि तरवारू। सइँ घोरे टूटइँ असवारू।
टूटि कंध सिर परइँ निरारी। माठ मँजीठ जानु रन ढारी।
तुरक बोलावइँ बोलइ नाहा। गोरइँ मीचु धरी मन माहाँ।
कहिकइ गरजि सिंह अस धावा। सुरजा सारदूल पहँ आवा।

नूर मोहम्मद के उदाहरण।

जब लगि नैन चारि रहु चारी। राजकुँवर कहँ ठग अस मारी।
दामिनि चमक चाह अधिकाई। दुअऊ चितै रहे चित लाई।
बहेउ पवन लट पर अनुरागे। लट छितरानि पवन के लागे।
परो बदन पर लट लटकारी। तपा दिवस भइ निसि अँधियारी।
मोहि परा दरसन कर चेरा। हना बान धन आखिन केरा।
यह मुख, यह तिल, यह लटकारी। ये तो कहि कइ गिरा भिखारी।
नहिँ मुरझा मुख देखि सयाना। लट परतहि मुख पर मुरझाना।
एक कहा लट नागिनि कारी। डसा गरल सो गिरा भिखारी।

गजलो मे मुसलमान कविगण नायिका के स्थान पर लडके का कथन करते है, और उसे खोदा मानकर इश्क़ मजाजी के स्थान पर इश्क़ हक़ीक़ी का अस्तित्व स्थापित करना चाहते हैं। इधर सूफ़ी

कवि ईश्वर को स्त्री रूप मे मानकर नायिका के प्रति प्रेम को ईश्वरीय प्रेम बतलाते हैं। मुसलमानी कविता मे नायक का प्रेमोन्माद बहुत है, किन्तु हमारे यहा नायिका का प्रेम अधिक वर्णित है। जो हो, प्रायः ढाई सै वर्ष हिन्दू मुसलमानो मे मेल उत्पन्न करने का यह सूफी प्रयत्न अन्य मुसलमानो की कट्टरता तथा हिन्दुओ के तद्भव असन्तोष से असफल होकर बैठ गया। हमारे पूर्व माध्यमिककाल मे चार मुसलमान सूफी कवि हुये, जिनमे से दो की रचना मिलती है।

देश की दशा पर प्रभाव।

प्रकट है कि प्रारम्भिक काल मे हिन्दू मुस्लिम् सभ्यताओ का जो सघट्ट हुआ, उसके परिणाम एक ओर से बलप्रयोग और दूसरी ओर से बहिष्कार मात्र देखने मे आये। महात्मा गोरखनाथ ने उसी प्राथमिक समय मे नवीन पन्थ संस्थापन मे ही समाज का कल्याण देखा, अनन्तर इस पूर्व माध्यमिक समय मे पन्थ सस्थापन की प्रथा वृद्धिगत होकर कबीर तथा नानक पन्थ भी दृढ़ होते दिखते है, और आगे चलकर प्रौढ माध्यमिक समय मे इसी प्रकार दादू पन्थ चलता है। इन पन्थो ने निम्न श्रेणी के हिन्दुओ मे काम् करके समाज के प्रति उनकी उदासीनता कम की तथा उत्साह वृद्धि करके समाज सरक्षण मे उनका साहाय्य स्थापित किया, जिससे अच्छे फल प्राप्त हुए। फिर भी हमारे समाज ने केवल पन्थ प्रवर्त्तन पर भरोसा न किया, न उच्च कक्षा मे इनका आदर हुआ। सबसे बडा प्रयत्न इस विषय मे महात्मा रामानन्द का हुआ, जिन्होने युक्तप्रान्त मे रामानन्दी सम्प्रदाय स्थापित करके वैष्णवता द्वारा धार्मिक बल लगा समाज संगठन का महत्कार्य चलाया। जैसा कि हम ऊपर देख चुके है, आपने सन्तो के लिये

जाति पाति का बन्धन छोड़ दिया, किन्तु समाज सगठन मे उससे भी काम लेकर धार्मिक वृद्धि द्वारा शूद्रो को भी उन्नत बनाया, तथा पूरे समाज की शक्ति उसको रक्षा मे लगाई। आपका प्रभाव भी बहुत पडा, जैसा कि हम ऊपर देख आये है। अनेकानेक अन्य ऋषियो ने इसी प्रभाव द्वारा प्रोत्साहन पाकर वहा काम चलाया। उधर अधिक सम्पर्क से हिन्दू मुसमानो मे कुछ प्रेम भी बढा, और महात्मा नामदेव तथा बाबा नान्क ने अपने अनुयायियो सहित इन दोनो जातियो के एकीकरण का प्रयत्न किया। महात्मा कबीर दास किसी श्रेणी मे न होकर एक स्वतन्त्र कक्षा के थे। आपका भी भारी प्रभाव ऐक्य स्थापन की ओर लगा, तथा सूफी कवियो ने अधिक प्रेमपूर्ण रीति से यही काम उठाया। जहा कबीर दास ने दोनो समाजो की कट्टरता का तीक्ष्ण प्रतिवाद करके मेल बढाना चाहा, वही सूफी कवियो ने प्रेमपूर्ण मार्ग द्वारा वही प्रयत्न उठाया। कहते है कि,—

गुरु जिमि सिखवै वेद, मित्र मित्र ज्यो सत कथा।
काव्य रसन को भेद, श्रुति सुखदान तियानि लौं॥

सो जहां कबीर दास वेद की भाति आज्ञा करते है, वहां सूफीवादी स्त्री के समान वही शिक्षा मीठे शब्दो मे देते है। पूर्व माध्यमिक काल नई प्रणालियो के उठाने मे बहुत सहायक हुआ। इसने शृङ्गार, भक्ति, सूफ़ी, हिन्दू कथात्मिका कविता, ऐक्यपूर्ण साहित्य, तथा कबीरदास वालो प्रणालियों को उठाया, एव रामानन्दी से इतर वल्लभीय, गौड़ीय तथा नानकपन्थी प्रणालियो को बगाल, युक्तप्रान्त, और पञ्जाब मे स्थापित होते हुए देखा। पौराणिक समय मे उत्तरी भारत ने महत्ता दिखलाई थी, तथा आदिम हिन्दी काल मे दाक्षिणात्यो मे गौरव एवं उत्तरी भारत मे शैथिल्य देख पड़ा था। इस पूर्व माध्यमिक समय मे युक्तप्रान्त, बंगाल, और पञ्जाब ने साथ ही साथ महापुरुष उत्पन्न किये। सम्पत्ति शास्त्रीय सिद्धान्त है ही

कि मांग वस्तु उत्पन्न करा लेती है। इस काल हमको समाज रक्षा के लिये महात्माओ की आवश्यकता थी, सो वे भी मिल ही गये। आदिम काल मे चन्द सर्वश्रेष्ठ कवि थे, और इधर पूर्व माध्यमिक काल मे हमें कबीरदास मिलते हैं, जो अपने समय तक के हमारे सर्वश्रेष्ठ कवि है। मुसलमानी शक्ति उठती गिरती हुई सन् १३१४ तक सबल ही रही। अनन्तर १३१७–१८ मे खास दिल्ली मे एक साल के लिये एक परवार गद्दी पर बठकर मुसलमानो पर अनेकानेक अत्याचार करके मानो उनको नोटिस दे गया कि उनकी कट्टरता चलनेवाली नही है। फिर भी उन्होने अपना ढग न बदला, जिससे थोडे ही दिनो मे हिन्दुओ का विजयनगर साम्राज्य स्थापित हुआ, चित्तौर ने खासा प्रभाव बढाया और अनेकानेक स्वतन्त्र मुसलमान राज्य यत्रतत्र जमे, तथा दिल्ली का बल दबा रहा। यही दशा न्यूनाधिक रीत्या १५५६ तक चलती रही। न दिल्ली के शासको ने समाज से युद्ध छोडा और न उनका बल पनपने पाया। फल यह हुआ कि एक ओर १३६८ मे तैमूर द्वारा हम दिल्ली मे क़तलाम, सम्राट् का पदच्युत होना तथा षोड़श वर्षीय अराजकता का स्थापन देखते है, और दूसरी ओर १३६६ मे महात्मा रामानन्द को मज़े मे उपदेश देते तथा अन्य महात्माओ एव कवियो को अच्छे से अच्छे छन्द बनाते पाते है। प्रजा का सम्राट् से कोई प्रेम का सम्बन्ध न था, वरन् उनका दुःख प्रजा का सुख था। तोग़लक़ो ने ब्राह्मणो पर भी जजीया लगाया। समाज ने सोचा अच्छी बात है, यह भी सही। इतना ही उसका फल हुआ। पहले मुसलमानो ने ब्राह्मणो को अपने सैयदों के समान समझ कर जज़ीया से अलग रक्खा था, किन्तु पीछे जब उन्हे समझ पडा कि यही लोग प्रजा द्वारा झगड़ों के नेता हैं, तब इनकी भी ख़बर ली गई। दिल्ली के पराजित पृथ्वीराज के वंशधरों ने रणथम्भौर मे जमकर एक बार फिर मुसलमानो का सामना किया, किन्तु इस बार भी वे हारकर राजपूताना चले गये,

जहा उन्होंने समय पर बहुत थोड़ा प्रभाव डाला, किन्तु यह कहने योग्य नहीं है। काशी कन्नौज नरेश जयचन्द के वशधर मारवाड में स्थापित होकर इस काल महत्ता उपार्जन के प्रयत्न मे थे, जहां अन्तमे जोधपुर राज्य प्राप्त करके वे कुछ बलवान हो सके। बगाल के पाल और सेन भूपाल ऐसे थकित पराक्रम हो चुके थे, कि एक बार गिरकर बिगड़े क्या अन्तर्धान ही हो गये और आजतक न पनपे। मुसलमानो के आने से हमारे स्त्री समाज पर बहुत अत्याचार हुए। उनके युद्ध कर्त्ता यहा आये थे किन्तु उनकी स्त्रिया समुचित सख्या मे न आ सकी थी, जिससे हिन्दू ललनाये छीन छीन कर उन्होंने अपने घर बसाये। जब हम लोग अपनी स्त्रियो की रक्षा मे समर्थ न हो सके, तब मुसलमानो की भाति हमे भी पर्दा प्रणाली का आधार लेना पड़ा। कबीरदास की रचना मे हम प्राय: पहले पहल स्त्री समाज की भारी निन्दा देखते हैं। पीछे से सन्तो मे ऐसे कथन बहुत साधारण हो गये। अब सभ्यता की वृद्धि से ऐसे ओछे विचार हट रहे है।

अब तक हमारे जितने समय हो गये थे, उनपर दृष्टि डालने से समझ पड़ता है कि अवैदिक काल ने हमें मुख्यतया कराल देवता तथा शिश्न पूजन प्रथा दी, वैदिक साहित्य से अनेकानेक भाव निकले तथा खींचतान द्वारा और भी अधिक निकाले जाते हैं, किन्तु मुख्यतया उसने हमे विनती का विधान, भक्ति, याज्ञिक विधि, तैंतीस देवता, शैव ईश्वरत्व, वर्णभेद और उत्तर वैदिक काल मे गो ब्राह्मण महिमा का बीजारोपण दिये। ब्राह्मण कालीन साहित्य से हमने ईश्वरता की महत्ता पाई, और सूत्रकाल मे नियम वृद्धि, विशेषतया व्याकरण का स्थापन प्राप्त हुआ। ब्राह्मण काल मे वैष्णव ईश्वरता का भाव भी प्राप्त हुआ। बुद्धकाल ने हमे प्रतिमा पूजन तथा अवतार वाद सिखलाया, और पौराणिक साहित्य मे तृमूर्त्ति का भाव दृढ़ हुआ, विशेषतया शिव और विष्णु के व्यक्तित्व एव

होड का। पौराणिक काल मे देवालय यत्रतत्र स्थापित हुए तथा तीर्थों एव नदियो आदि का माहात्म्य बढा। आदिम हिन्दी काल मे हमारे यहा सम्प्रदायो का चलन चला, प्रतिमा पूजन और तीर्थों का बल स्थापित रहा, तथा एकेश्वरवाद का ओर रुचि बढी और त्रिमूर्त्ति का तार्किक रीति से स्थापन तथा तर्कवाद का प्रसार हुआ। पूर्व माध्यमिक काल मे साम्प्रदायिकता दक्षिणी भारत से बढकर बगाल और युक्तप्रान्त मे भी फैली, तथा मुसलमानो के धार्मिक आक्रमण बचाने मे हमारे समाज ने अच्छी सफलता पाई। इस काल मे अवतारवाद का प्रभाव कुछ बढा। आदिम समय मे इसकी महत्ता मे कोई वृद्धि न हुई थी। इन दिनो व्रज, अवधी, पूर्वी और पञ्जाबी भाषाओ मे रचना हुई।

प्रौढ़ माध्यमिक समय (१५०३-१६२३)।

सौरकाल (१५०३-१५७३)।

पूर्व माध्यमिक समय मे हमारी भाषा खूब उन्नत हो चुकी थी, जिससे हमारे यहा सुकवियो के प्रादुर्भाव का समय आ गया। इसके प्रारम्भ के पहले ही से मुसलमानी बल क्षीण था। यह दुर्बलता सैयद काल १४५० तक बहुत रही थी, किन्तु लोदी काल (१४५०-१५२६) तक भी कुछ कमी के साथ बनी हुई थी। हमारा समाज आदिम हिन्दी समय के उत्तरार्ध मे कुछ संगठित होने लगा था, अथच पूर्व माध्यमिक समय मे बहुत कुछ सयत हो गया था। पौराणिक समय मे हमने अवतार, त्रिमूर्त्ति, प्रतिमा तथा तीर्थों मे विशेष मन लगाया। प्रतिमा के साथ अवैदिक समय का पूजन भी शिवलिंग पूजन के साथ स्थापित हुआ, यद्यपि जनता इसको लिंग न समझकर बहुत करके पूर्ण शरीर समझती थी। पौराणिक समय

के प्रायः अन्त तथा पूर्व माध्यमिक हिन्दी काल मे हमारे यहा तर्कवाद बल के साथ चला, जिससे अवतार पूजन का प्रभाव कुछ घटती हुआ दिखा तथा नारायण के साथ समाज मे एकेश्वरवाद की ओर रुचि बढ़ी। पूर्व माध्यमिक काल मे हम भक्ति के साथ श्रद्धावाद तथा तर्कवाद मे कुछ होड़ सी पाते है। सूफीवाद संचारित करके मुसलमान सतो ने भी हमारे धार्मिक विकास मे योग दिया, तथा गोरखनाथ, कबीरदास और बाबा नानक के साथ हम पन्थवाद भी चलते हुये देखते हैं। हमारा तर्कवाद अपना काम कर चुका था। बौद्ध और जैन पण्डित पराजित हो चुके थे, तथा मुसलमानी खोदावाद पाण्डित्य पूर्ण वाद मे प्रविष्ट न होकर बल प्रयोग से धार्मिक विचार समाज मे फैलाता था। अतएव पौराणिक धर्म का सामना करनेवाला देश मे कोई रह न गया था, और किसी को धार्मिक सिद्धान्त समझने की इतनी आवश्यकता न थी जितनी कि समाज संगठन की। इसीलिये हम देखते है कि दर्शन शास्त्र के पूर्णज्ञ तथा सूफियो आदि से सफल वाद करनेवाले हमारे महात्मा रामानन्द तर्कवाद तथा एकेश्वरवाद से मुख्यता हटाकर श्रद्धापूर्ण सीताराम की भक्ति का उपदेश देकर समाज का चातुर्वर्ण्य रूप मे ही संगठन करते हैं। उन्ही के शिष्य महात्मा कबीरदास हमारे परमोच्च औपनिषत् ज्ञान को सगुण भक्ति से भी मिलाकर जाति पाति के प्रतिकूल बहुत ही सच्चा और ऊचा उपदेश देते है, किन्तु समयानुकूल न होनेसे वह समाज पर तादृश प्रभाव नही डालता। नानक पन्थ का प्रभाव पड़ता भी है तो जातीय बधन शिथिल होने से सामाजिक निर्बलता से हिन्दू संख्या मे तुलनात्मक दृष्टि से क्षति आती है। इसी अवसर पर महाप्रभु वल्लभाचार्य और भी अधिक लोकप्रिय बाममार्ग पूर्ण भक्ति का उपदेश देते है।

वल्लभीय तल्लीनता।

प्रौढ माध्यमिक काल मे हम उपरोक्त अनमिल उपदेशो का प्रभाव समाज पर देखते है। यह काल १२० वर्षों का है, जिसमे से ७० वर्ष सौर काल की प्रणाली का चलन रहता है, तथा पीछे के ५० वर्ष तुलसी प्रणाली का। हम इन दोनो भागो का पृथक् कथन करेगे, क्योकि दोनो प्रौढ माध्यमिक होकर भी आपस मे बहुत अनमिल से है। समयानुसार पहले सौरकाल उठाया जाता है, जो १५०३ से १५७३ तक चलता है, यद्यपि महात्मा सूरदास का शरीरान्त १५६३ के ही इधर उधर होना समझ पडता है। यह समय रामानन्दी उपदेशो के चलने का न होकर बहुत करके वल्लभीय काल है। इसमे सूरदास, अष्टछाप के अन्य कविगण, विट्ठलनाथ, गोकुलनाथ, मीराबाई, हितहरिवंश, हरिदास, विट्ठल विपुल, रसखानि आदि महात्मा अच्छे साहित्यिक एवं भक्त थे। रसखानि मुसलमान होकर भी शुद्ध भक्त और प्रभावशाली वैष्णव थे, अथच २५२ वैष्णवो की वार्त्ता मे इनका भी कथन है। साहित्य के लिये तल्लीनता एक आवश्यक गुण है। इसीके कारण योद्धा समरांगण मे तिल तिल अग कटने पर भी आनन्द पाते है, स्त्री पति के शव के साथ चितापर जल मरने से प्रसन्न होती है, तथा प्रेमी लौकिक अथवा ईश्वरीय प्रेम के पीछे सब तजकर भी अपने को धन्य मानते है। ऐसे ही अनेकानेक अन्य उदाहरण दिये जा सकते है। तल्लीनता एक भारी बल है, जो कही भी लगे, कुछ करके दिखला देगी। हिन्दी के सौभाग्य से भक्तो की यह तल्लीनता हरिगुण गान के साथ हिन्दी साहित्य बर्द्धन मे लग गई, जिससे हमारा काव्य भांडार भर गया। भाषा उच्च हो ही चुकी थी, और तल्लीनता भी मिल गई। फिर क्या था, सोने मे सुगंधवाली कहावत चरितार्थ हुई और हिन्दी के सुदिन आ गये। सौरकाल विशेषतया कृष्ण भक्ति का समय था। सबसे बड़ा प्रभाव वल्लभ सम्प्रदाय

का पड़ा, जिसमे उत्तमता तथा संख्या इन दोनो मे रचना अपूर्व हुई। इनमे अष्टछाप, विट्ठलनाथ और गोकुलनाथ की प्रधानता थी। विट्ठलनाथ महाप्रभु वल्लभाचार्य के पुत्र तथा उनकी गद्दी के अधिकारी थे। आपही ने चार पिता के तथा चार अपने सत्कवि शिष्य छांटकर अष्टछाप बनाई, जिसमे सूरदास, परमानन्ददास, कुम्भनदास, कृष्णदास, गोविदस्वामी, छीत स्वामी, चतुर्भुजदास तथा नन्ददास की गणना है। वल्लभीय के पीछे हित सम्प्रदाय की महत्ता मान्य है। यह हितहरिवश का चलाया हुआ है, तथा इसमे के १५० महात्माओ का पद्यात्मक वर्णन हमने श्रीमान् महाराजा छतरपुर नरेश के पुस्तकालय के एक ग्रन्थ मे देखा है। इनमे से अधिकाश कवि भी थे, जिनमे स्वयं हितहरिवंश तथा हितध्रुव अथच चाचा वृन्दावनदास की प्रधानता है। इस मत मे राधा का पद कृष्ण से भी बहुत आगे है। हरिदास निम्बार्क सम्प्रदाय मे थे, किन्तु इन्होने टट्टीवाली शाखा सम्प्रदाय चलाई, जिसमे विरक्ति और ब्रह्मचर्य का बल है, तथा मूर्त्ति पूजा की कुछ कमी है। आपके सम्प्रदाय मे नागरीदास तथा शीतलदास सुकवि है, जिनके वर्णन आगे यथा स्थान होगे। मीराबाई गिरिधर गोपाल की भक्तिन थीं। सौर काल के यही मुख्य सम्प्रदाय थे। नानक पन्थ तथा रामनन्दी सम्प्रदाय भी चल रहे थे। रामनन्दी मे इस काल कोई सुकवि नही हुआ। नानक मत का कथन आगे यथा स्थान आवेगा। हमने उसके दशों गुरुओ का वर्णन एक ही जगह ठीक समझा है, जिससे उसका पूरा प्रभाव एक साथ प्रकट हो जावे। सूफी मत के इस काल जायसी वर्तमान थे, जिनका विवरण ऊपर आ चुका है।

भक्ति।

इसी स्थान पर भक्ति का भी कुछ कथन आवश्यक समझ पड़ता है, जिससे इन लोगो के विचारो पर कुछ विशेष प्रकाश पड़े। इस

वर्णन से इनके साहित्यिक भाव भी समझने मे सुभीता होगा। भक्ति नवधा होती है तथा पाच भावो से की जाती है।

श्रवणङ्कीर्तनविष्णो: स्मरणम्पाद सेवनम्।
अर्चनं वन्दनन्दास्यं सख्यमात्म निवेदनम्॥

यह तो नवधा भक्ति हुई। भक्ति के पाच भाव है, शान्त, दास, वात्सल्य, सख्य और शृङ्गार। शान्त भाव की भक्ति बिना किसी कारण के स्वभावश: की जाती है, जैसी कि प्रह्लाद की थी। दास्य भाव की भक्ति तुलसीदास, हनुमान आदि की है। मुसलमानी भक्ति भी इसी भाव से चलती है। वात्सल्य भक्ति ऐसी होती है, जैसी माता पिता पुत्र से करते है, या और कोई ऊचे सम्बन्धी छोटो के प्रति करैं। इसके उदाहरण दशरथ, यशोदा आदि थीं। सख्य भाव की भक्ति मित्रता के ढग से रहती हैं। सूरदास ऐसी भी भक्ति करते थे। शृङ्गार भाव की भक्ति का यह प्रयोजन है कि पुरुष भाव केवल ईश्वर में है, और भक्त की दशा उसपर आश्रित होने से स्त्री के समान है। इसी भक्ति को सखी सम्प्रदाय की भी कहते है। कबीरदास, कृपानिवास, अग्रदास, नाभादास आदि की भक्ति इसी प्रणाली की है। जिन भक्तो के नामो के पीछे अली शब्द लगा हो, यथा हरिवश अली, बाल अली आदि, वे सखी सम्प्रदाय के समझने चाहिये। राम सखे, श्याम सखे, आदि सखा भाव के भक्त हैं। जिन जिन भक्तो की भक्ति जिस जिस भाव की होती है, उसी प्रकार के विचार उनकी रचना मे निकलते है। सूरदास सखा, सखी और वात्सल्य भावो के भक्त थे।

सौर काव्य।

इस काल के प्रमुख भक्त कवियो के व्यक्तिगत वर्णन आगे आवेंगे। हम देखते हैं कि इस काल के भक्त साहित्य के लिये रचना न करके ईश्वर भजनार्थ करते थे। इसकी दृढ़ता होने से

जो मुसलमानो की प्रेम कथा पूर्ण सूफ़ी प्रणाली थी, वह कुछ दब गई, तथा हिन्दुओ की उपन्यासात्मिका कथा प्रणाली उन्नत न हुई। ससार ने साहित्यानन्द को भक्ति से मिलाकर इसी रचना को अधिक पसन्द किया। इस काल छीहल कवि ने पचसहेली नामक औपन्यासिक ग्रन्थ लिखा, किन्तु वह उच्च श्रेणी का न था। कृपाराम ने दोहो मे आचार्यता पूर्ण अलकार ग्रन्थ बनाया, किन्तु वह भी महत्ता युक्त न ठहरा। जैनो मे तीन ही चार कवि मिलते है, सो भी साधारण। यही दशा भाटो की है। मुसलमानो मे जायसी के अतिरिक्त हम रसखानि को पाते है, किन्तु उन्होंने कबीरदास या सूफी कवियो के ढर्रे पर न चल वल्लभीय प्रणाली का अनुसरण किया। आपका कथन आगे भी आवेगा। सम्प्रदायात्मिका भक्ति से इतर हम जायसी के अतिरिक्त निपट निरंजन और नरोत्तमदास नामक दो सुकवि पाते है, जिनके कथन आगे भी आवेंगे। सौरकाल पहले के हमारे सभी कालो से छोटा है, किन्तु इसमे हम दो सै से अधिक कवि पाते हैं। उत्कृष्ट गद्य का भी चलन इसी समय से चलता है। अब आगे हम मुख्य कवियो का व्यक्तिगत कथन करके इस काल को समाप्त करेंगे।

सूरदास।

महात्मा सूरदास का रचनाकाल १५०३ से १५६३ तक कूता जाता है। आपका मुख्य ग्रन्थ सूरसागर है, जिसमे एक लक्ष पदो का होना कहा जाता है, और आजकल भी इनके पांच छः सहस्र पद मिलते है। आपकी भक्ति का ब्योरा ऊपर आचुका है। आप यद्यपि रामकृष्ण, भगवान आदि को एक ही मान, शेष देवताओ को रंक भिखारी कहकर त्याज्य बतलाते है, तथापि वर्णन श्रीकृष्ण ही का करते है, सो भी उनके बाल चरित्रो का। सूरदास के कृष्ण कंस निकन्दन, कई वीरो और कंस प्रेरित राक्षसो के मारनेवाले,

नटखट किन्तु प्रिय बालक, अच्छे मित्र, और उत्कृष्ट रसिक है, तथा गोपियो के छूट जानेपर उनको निर्गुण ब्रह्म की भक्ति का ऊधव द्वारा सन्देश भेजकर व्याज से ऊधव का ज्ञानगर्व चूर्ण करते है, क्योकि गोपियो को निर्गुण भक्ति तो वे सिखला नही पाते, वरन् स्वयं उनसे सगुण भक्ति सीखते है। सूर ने जितने भारी वर्णन किये है, वे सब पूर्ण और उत्कृष्ट है। कुछ लोगो का मत है कि सूर ने सारे साहित्यिक भाव कह डाले, जिससे पीछे के कवियो को न चाहते हुये भी इनके भाव लेने पड़े है। बाल लीला, माखन चोरी, ऊखल बन्धन, रासलीला, मथुरागमन, तथा उद्धव सवाद् सूर ने बहुत ही बढ़िया कहे है, और भक्ति मे दैन्य भाव का भी अच्छा कथन किया है। आपके पद् गानेवाले परम प्रचुरता से व्यवहार मे लाते है। श्रृङ्गार-पूर्ण वर्णन भी आपने बहुत किये है, यहां तक कि दो तीन स्थानो पर परम स्वाभाविक रीति से नायक नायिकाओ के पूर्ण विहार विस्तार पूर्वक कह दिये है। फिर भी आपका श्रृङ्गार भोड़ा नही है, और इनकी रचना से बहुत उपदेशप्रद्, भाई बहनो तक के आगे पढनेवाले परमोत्कृष्ट पदो का संग्रह हो सकता है, वरन् स्वयं हमने ऐसा एक दो ढाई सै पृष्ठो का सग्रह कई साल हुये प्रकाशित भी कराया था। तुलसीदास के पीछे सूरदास हमारे सर्वोत्कृष्ट हिन्दी कवि है। इनकी भाषा परम परिपक्व और भाव बहुत बढिया है। अपने पात्रो के शील गुण भी आपने परम प्रकृष्ट प्रकट किये है। यद्यपि आपकी रचना मुक्तकात्मिका है और उसके भारी विस्तार के कारण ही वह प्रबन्ध के रूप मे भी दिखलाई गई है, तथापि है मनोहर तथा उपदेशप्रद। इतना सब होते हुये भी बाम मार्गस्थ होने के कारण आपका साहित्य पंडित मडली मे तुलसीदास तथा कबीरदास के बराबर उपदेशप्रद उचित ही नही माना गया है, यद्यपि साहित्यिक दृष्टि से वह कबीर की रचना से बहुत श्रेष्ठ है। श्रृङ्गारात्मक होने के कारण आपका साहित्य तो प्रबल है, किन्तु उपदेशक का संदेश उसमे डूब सा गया है,

या कम से कम उतना प्रकट नही है, जितना कि एक सन्त की कृति मे होने की हम आशा कर सकते थे। फिर भी अपने से साम्प्रदायिक रचयिताओ मे आप सबसे कम शृङ्गार लेकर चले है। आपके कृष्ण शृङ्गारिक नायक तो है, किन्तु अन्य प्रकार से भी बहुत ऊचे उठे हुये है, तथा खडिता आदि के कथन करते हुये भी आप उन शिकायतो मे ऐसे नही डूबे है कि भगवान की महत्ता तिरोहित या शिथिल हो जाती। इनके समय के हित सम्प्रदायवाले तथा कुछ अन्य कविगण भगवान का जो वर्णन करते है, उसमे वे प्रायः रातभर नायिकाओ के साथ जगने से लाल नेत्र किये अलसाये हुये प्रातःकाल उठते है, और फिर भी उन्ही की ताक झांक मे रहते है। ऐसे कवियो की शृङ्गारात्मिका भक्ति ऐसी कुछ निन्द्य देख पड़ती है कि आश्चर्य होता है, कि शुद्ध भक्तो के मुखो से ऐसे गर्हित और तिरस्करणीय वर्णन निकले कैसे? फिर भी इस काल के कवियो मे से अधिकांश शुद्ध भक्त थे, ऐसा उनके चरित्रो तथा रचनाओं से भी प्रकट हो ही जाता है। यही कहना पड़ता है कि इनके मानस बाम मार्ग की अशुचि भक्ति से कुछ ऐसे प्रभावित हो गये थे, कि ये उसकी अधोगति का सचमुच बोध नही करते थे। फिर भी चरित्र और स्वभाव से शुद्ध, भक्त होने से इन लोगो के भजनो आदि का प्रभाव समाज सगठन मे अच्छा ही पडता था, यद्यपि शृङ्गाराधिक्य के कारण उसमे थोडी बहुत क्षति अवश्य थी, और समय पर जब ऐसे भक्तो के चरित्र वास्तव मे ऊंचे न रहे, तब ऐसी वैष्णवता सभ्य समाज से तिरस्कृत हो गई और केवल बहुत ही कट्टर, धर्म के नाम पर सभी कुछ मान लेनेवालो के लिये भर, वह धर्म शिक्षा रह गई।

सूरदास के उदाहरण

अब मैं नाच्यो बहुत गोपाल।
काम क्रोध को पहिरि चोलना कंठ विषय की माल॥
महा मोह के नूपुर बाजत निन्दा सबद रसाल।

भरम भस्रो मन भयो पखावज चलत कुसगति चाल ॥
तृष्णा नाच करति घट भीतर नाना विधि दै ताल।
माया को कटि फेटा बाधे लोभ तिलक दै भाल ॥
कोरिक कला काछि दिखराई जल थल सुधि नहिँ काल।
सूरदास की सबै अविद्या दूरि करौ नँदलाल ॥

हरिमुख निरखत नैन भुलाने।
ये मधुकर रुचि पंकज लोभी ताहीते न उड़ाने ॥
कुडल मकर कपोलन के ढिग मनु रबि नैन बिहाने।
कुचित अलक सिलीमुख मानहुँ लै मकरन्द निदाने ॥
तिलक ललाट कठ मुकुतावलि, भूषन मनि मै साने।
सूरदास स्वामी अँग नागर ते गुन जात न जाने ॥

अकबर बादशाह ने आपके दर्शन किये थे।

अष्टछाप।

अष्टछाप के शेष कवियो के भी वर्णन ८४ तथा २५२ वैष्णवो की वार्त्ताओ मे है। उनमे सूरदास गऊघाटवाले कहे गये है। परमानन्द दास कनौजिया ब्राह्मण क़न्नौज निवासी थे। लिखा है कि आप सुकवि और योग्य पुरुष थे, तथा कीर्त्तन बहुत अच्छा गाते थे। आपका भजन सुनकर एक बार, महाप्रभु वल्लभाचार्य ऐसे प्रेम गद्गद हुये कि मूर्छित होकर दो तीन दिनो तक देहानुसन्धान रहित रहे। इसी से इनकी रचना का प्रभाव प्रकट है। कुम्भनदास जमुनावती गॉव के लिखे हैं। कीर्त्तन अच्छा गाते थे। अकबर शाह के बोलाने से बहुत कष्ट करके एक बार फ़तेहपुर सीकरी गये। सवारी पर चढ़ते न थे, तथा शाही भेट स्वीकार न करते थे। बेचारे बहुत परेशान होकर लिखते है,—

सन्तन का सिकरी सन काम।
आवत जात पनहियां टूटी बिसरि गयो हरि नाम ॥

जिनको मुख देखे रिस उपजति तिनको करिबे परी सलाम।
कुम्भनदास देव गिरधर बिन और सबै बे काम॥

कृष्णदास शूद्र होकर भी एक प्रधान मन्दिर के अधिकारी नियत हुये। किसी कारण से अप्रसन्न होकर इन्होने स्वय विट्ठलनाथजी की ड्योढी उस मन्दिर से बन्द कर दी। विट्ठलेश को देव दर्शन बिना बडा कष्ट होता था, किन्तु पिता द्वारा प्रतिष्ठित अधिकारी का मान रखकर आप किसी प्रकार निर्वाह करते थे। जब महाराजा बीरबल ने ऐसा सुना तब कृष्णदास को कैद कर दिया। इसपर विट्ठलनाथ ने यह समझकर खाना पीना छोड दिया कि मेरे पिता के शिष्य एक पूज्य वैष्णव को यह दुःख! तब महाराजा ने कृष्णदास को कारागार से मुक्त कर दिया और उनके होश भी ठिकाने हो गये, अथच विट्ठलनाथ से सारा झगडा सुलझ गया, तथा इनकी आज्ञा से वे फिर वहा के अधिकारी नियत हुये। गोविद स्वामी सनाढ्य ब्राह्मण थे। आपने एक बार साढ़े बारह धमार कही थी। स्वयं अकबर शाह इनका गाना सुनने पधारे थे। आप गाना खूब गाते थे। वार्त्ता का कथन है कि आपने स्वयं तानसेन को गाना सिखलाया। छीत स्वामी चौबे महाराज बीरबल के पुरोहित थे। चतुर्भुजदास कुम्भनदास के पुत्र थे। नन्ददास किसी तुलसीदास के भाई थे। आपने गद्य मे नासकेतु पुराण का अनुवाद किया, तथा पद्य मे कई बढ़िया ग्रन्थ बनाये, जिनमे दशम स्कन्ध तथा रास पञ्चाध्यायी प्रधान है। सूरदास को मिलाकर यही आठो महात्मा अष्टछाप के कवि थे। ये सब उत्कृष्ट पदो में वल्लभीय सम्प्रदाय के अनुसार हरिगुण गान करते थे, और सब समकालीन थे। सूरदास के अतिरिक्त इनमे बडा छोटा कहना कुछ बेजा है, तो भी परमानन्द दास तथा नन्ददास सातो मे उत्कृष्टतम समझे जा सकते है। इन ८४ तथा २५२ वैष्णवो की वार्त्ताओ से प्रकट है कि उस काल के आसकरन राजा, मेहाढीमर, रसखानि, तानसेन गायनाचार्य, पृथ्वीराज तथा ओड़छे के मधुकर

शाह भी इसी सम्प्रदाय के वैष्णव तथा कवि थे। विट्ठलनाथ महाप्रभु वल्लभाचार्य के पुत्र तथा शिष्य थे। आपका समय १५१५ से १५८५ तक था। आपने श्रृङ्गार रस मडन नामक एक ५२ पृष्ठो के व्रजभाषा गद्य ग्रन्थ मे राधाकृष्ण विहार का वर्णन किया। प्रसिद्ध अष्टछाप का संगठन आप ही ने किया। महाप्रभु के पीछे आप वल्लभीय सम्प्रदाय के परम प्रभाव पूर्ण नेता हुये। आपके प्रभाव से हिन्दी साहित्य की अच्छी उन्नति हुई। आपने कुछ भजन भी कहे। आपके सात पुत्र थे जिनमे गोस्वामी गोकुलनाथ प्रधान थे। इन्होने ८४ तथा २५२ वैष्णवो की वार्त्ता नाम्नी दो पुस्तके उसकाल की प्रचलित शुद्ध व्रजभाषा में लिखी। इनकी भाषा बड़ी प्यारी लगती है। इन वार्त्ताओ मे भक्तो के हाल होने से ऐतिहासिक दृष्टि से ये बड़े काम की है, किन्तु जहातक हो सका है, इनमे भक्तो के कथनो मे असम्भव घटनाये लाई गई है। उस काल कुछ ऐसा विचार था कि जब तक कोई सन्त कुछ अनहोनी न कर दिखलावे तब तक वह भक्त ही नही है।

उदाहरण

गोस्वामी विट्ठलनाथ की रचना से।

प्रथम की सखी कहत है, जो गोपीजन के चरण विषै सेवक को दासी करि जो इनके प्रेमामृत मे डूबि कै इनके मन्द हास्य ने जीते है अमृत समूह, ताकरि निकुंज विषै श्रृङ्गार रस श्रेष्ठ रचना कीनी सो पूर्ण होत भई।

गोस्वामी गोकुलनाथ की रचना से।

श्रीरघुनाथजी परम दयाल हैं, ताते स्वर्ग दीयो, नातर दशरथ को स्वर्ग की योग्यता न हुती, काहेते अपनो बचन सत्य करिबैं को बनवास पठाय दीयौ, ऐसो कर्म कीयौ।

———

रसखान।

रसखान (या रसखानि) ने १६१४ मे प्रेम वाटिका ग्रन्थ रचा। यह है तो एक छोटा सा दोहा ग्रन्थ, किन्तु इसके भाव बहुत ऊचे है। आप बादशाह वश के पठान थे। आप एक बनिये के बालक पर बहुत आसक्त थे और उसका जूठा खाया करते तथा उपहास की कुछ परवा न करते थे। एक बार चार वैष्णवो ने आपस मे बाते करते हुये कहा कि ईश्वर मे ऐसा ध्यान लगावै जैसा रसखान ने साहूकार के लड़के मे लगाया। यह सुन रसखान ने उनसे कहा कि ईश्वर का रूप देखैं, तब विश्वास आवै। इस पर वैष्णवो ने इन्हे श्रीनाथजी का चित्र दिखलाया, जिसे देखते ही रसखान का चित्त लौकिक प्रेम से उचट कर भगवान मे लग गया। अब आप वेष बदल कर मन्दिर मे जाने लगे किन्तु पौरिया ने पहॅचान कर जाने न दिया। तब ये बिना कुछ खाये पिये तीन दिन तक गोविद कुंड पर पड़े रहे। यह देख विट्ठलनाथजी ने इन्हें मुसलमान होने पर भी वैष्णव कर लिया, और इनकी गणना गोसाईं जी के २५२ मुख्य शिष्यो मे हुई। २५२ वैष्णवो की वार्त्ता मे लिखा है कि इन्होने अनेक कीर्त्तन, कवित्त और दोहे बनाये। इनके विषय मे पंडित राधाचरण गोस्वामी का छन्द दर्शनीय है।

दिल्ली नगर निवास बादसा बंस बिभाकर।
चित्र देखि मन हरो भरो पन प्रेम सुधाकर॥
श्रीगोवर्द्धन आय जबै दरसन नहिँ पाये।
टेढ़े मेढ़े बचन रचन निर्भै ह्वै गाये॥
तब आप आय सुमनाय कर सुश्रूषा महमान की।
कवि कौन मिताई कहि सकै (श्री) नाथ साथ रसखान की॥

रसखान कृत छन्दो के उदाहरण।

दम्पति सुख औ विषय रस, पूजा निष्ठा ध्यान।
इनते परे बखानिये, शुद्ध प्रेम रसखान॥
मित्र कलत्र सुबन्धु सुत, इनमे सहज सनेह।
शुद्ध प्रेम इनमे नही, अकथ कथा सबिसेह॥
इक अगी बिनु कारनहिँ, इकरस सदा समान।
गनै प्रियहि सरबस्व जो, सोई प्रेम प्रमान॥
डरै सदा चाहै न कछु, सहै सबै जो होय।
रहै एकरस चाहिकै, प्रेम बखानै सोय॥
देखि गदर हित साहेबी, दिल्ली नगर मसान।
छिनहिँ बादसा बंस की, ठसक छोड़ि रसखान॥
प्रेम निकेतन श्री बनहि, आय गोबरधन धाम।
लह्यौ सरन चित चाहिकै, जुगल सरूप ललाम॥

मानुस हौ तो वही रसखानि बसौ मिलि गोकुल गांव गुवारन।
जो पसुहौ तौ कहा बसु मेरो चरौ नित नन्द कि धेनु मँझारन।
पाहन हौ तो वही गिरि को जो भयो व्रज छत्र पुरन्दर कारन।
जो खग हौं तो बसेरो करौ उन कालिँदी कूल कदम्ब की डारनि।

हित

हितहरिवश राधावल्लभी सम्प्रदाय के चलानेवाले प्रसिद्ध वैष्णव महात्मा थे, किन्तु इनके सम्प्रदाय मे बाम मार्गस्थ शृङ्गार साहित्य का प्राचुर्य था। इनके विषय मे बहुत बाते ऊपर आ चुकी है। इनका साहित्य बहुत मधुर है, और यद्यपि इनके केवल ८४ पद मिलते है, और उनके विचार भी ऊचे भावपूर्ण न होकर भगवान का केवल प्रेमी रूप दिखलाते है, तथापि केवल साहित्य की दृष्टि से हम इन्हे सत्कवि अवश्य कहेगे। संसार ने इस सम्प्रदाय का भी अच्छा मान किया,

और इसमे सख्या एव रचना सौन्दर्य मे कविगण वल्लभीय सम्प्रदाय के प्राय: समान ही से है।

उदाहरण ।

नव ब्रज तरुणि कदम्ब मुकुट मणि श्यामा आजु बनी।
नख शिख लौ अँग अग माधुरी मोहे श्याम धनी।
यो राजत कबरी गूथित कच कनक कज बदनी।
चिकुर चन्द्रकनि बीच अरध बिधु, मानहु ग्रसत फनी।

चलहि किन मानिनि कुंज कुटीर।
तो बिन कुँवर कोटि बनितायुत मथत मदन की पीर।
गद्गद सुर विरहाकुल पुलकित श्रवत विलोचन नीर।
क्वासि क्वासि वृषभानु नन्दिनी बिलपत विपिन अधीर।

हरिदास ।

संस्कृत मे भी आपने रचना की है। आपका समय १४७३ से १५५२ तक है। स्वामी हरिदास सस्कृत के अच्छे पंडित थे। इनके विषय मे ऊपर बहुत कुछ कहा जा चुका है। आपके सम्प्रदाय मे भी बहुतेरे सुकवि थे, जिनमे इनके मामा विट्ठल विपुल, बिहारिनिदास, दो नागरी दास, सरस दास, नवल दास, नरहरि दास, चौबे ललित किशोरी, मौनीदास आदि के नाम गिनाये जा सकते हैं। आपके कई ग्रन्थ मिले है, जिनमे उच्च श्रेणी का भी साहित्य मिलता है। आप गाना भी अच्छा जानते थे और बहुत ही बेलौस थे। इन्हे तो किसी राजा महाराजा आदि के यहा जाना न था, और बिना मौज के गाते भी न थे, उधर अकबर शाह को इनका गाना सुनना ही था, सो वे इनके यहां रूप बदलकर तानसेन के साथ गये और तानसेन ने जानबूझकर गाने मे ग़लती कर दी। इस पर स्वामी हरिदास ने उन्हे फटकार कर शुद्ध रूप मे गाना गा दिया, और फिर मौज मे आकर कई भजन सुनाये, जिससे अकबर की इच्छा पूर्ण हुई। १५५०

और १५६० वाले आपके ग्रन्थ मिले है। मीराबाई भी इस काल की भारी भक्तिन थी। इनके विशुद्ध लोकोत्तर चरित्र तथा उच्च साहित्य का समाज पर बडा प्रभाव पड़ा है। इनका जन्मकाल १५१६ है। आपका विवाह चित्तौर के युवराज भोजराज के साथ हुआ। भक्ति की उमंग मे ये घर मे न रहकर दूर दूर निकल जाती थी, तथा साधु सगति मे पर्दा इत्यादि की परवाह न करती थी। इन कारणो से इनके स्वजनो ने इन्हे विष देकर मारना चाहा, किन्तु वे सारे प्रयत्न निष्फल हुये। आपकी रचना उच्चकोटि की है। आपकी महत्ता से तत्कालीन वैष्णवता का मान संसार मे बहुत बढा। आपका स्वर्गवास छोटी ही अवस्था मे हो गया। इनके पद गाने वालो मे अब भी बहुत प्रचलित है।

उदाहरण।

बसो मेरो नैनन मे नँदलाल।
मोहनि मूरति सांवरि सूरति नैना बने रसाल॥
मोर मुकुट मकराकृत कुंडल अरुन तिलक दिये भाल।
अधर सुधा रस मुरली राजति उर बैजती माल॥
क्षुद्रघटिका कटि तट सोहति नूपुर शब्द रसाल।
मीरा प्रभु सन्तन सुखदाई भक्त बछल गोपाल॥

निपट निरञ्जन।

स्वामी निपट निरञ्जन हिन्दी के प्रकृष्ट कवि एवं सिद्ध योगी थे। आपका समय १५३८ के लगभग कहा जाता है। कहते है कि आपकी भी भेट अकबर शाह ने की थी। आपकी रचना ज़ोरदार तथा यथार्थ भाषिणी है। कबीर की भांति इन्होने साधारण बातो में ज्ञान कहा और अन्योक्तियो का भी प्रयोग किया। व्रजभाषा मे आप कुछ कुछ खड़ी बोली भी मिलाते थे।

उदाहरण।

छन मन छाका जाके छके ते अछक होत,
अछन छका है, घूम घूमत घुमारी का।
दिन निसि निसि दिन जब सुधि आवति है
तब उपजावै सुधि साहब सुमारी का॥
निपट निरञ्जन अमर मरने का नही,
एक मार मारू' नाम आवै ना दुबारी का।
हौ तो मतवाला ओछे मद का न लेन वाला
पूर करु प्याला खोज रहै ना खुमारी का॥

है जग मूत और मूत ही को बन्यो मूत को भाजन मूत मै पाग्यो।
खेत मे मूत खतान मे मूत और मूत ही मूत दसौ दिसि जाग्यो॥
भाषै निरञ्जन अमृत मूत है मूत ही सो जग है अनुराग्यो।
तात को मूत औ मात को मूत तैं नारि को मूत लै चाटन लाग्यो॥

नरोत्तम।

नरोत्तमदास १५२४ के लगभग ज़िला सीतापुर के बाड़ी नामक स्थान के कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। आपका प्रायः ३४ पृष्ठो मात्र का सुदामा चरित्र ग्रन्थ मिलता है, किन्तु इसी मे आपने परमोच्च कवित्व शक्ति दिखाई है।

उदाहरण

तै तो कहै नीकी सुनु मोसो बात जीकी
यह रीति मित्रयी की नित प्रति सरसाइये।
चित के मिले ते बित चाहिये परसपर जेंइये
जुमीत के तो आपने जिमाइये।
वे है महाराज जोरि बैठत समाज भूप
तहां यहि रूप जाय कहा सकुचाइये।
दुखै सुखै अब तौ बनत दिन भरे मूलि
बिपति परे पै द्वार मीतके न जाइये।

कोदौ सवां जुरते भरि पेट तौ चाहती ना दधि दूध मठौती।
सीत बितीत भयो सिसियातही हौं हठती पै तुम्है न हठौती॥
जो जनती न हितू हरि से तुम्है काहेक द्वारिकै पेलि पठौती।
या घर ते कबहू न टरै पिय टूटो तवा अरु फूटी कठौती॥

दक्षिण।

इस काल के अन्य कविगण भी इसी प्रकारकी रचना करते थे। तो भी सौर काल मे हम भक्ति प्राचुर्य के साथ वर्णनो मे व्यापकता नही पाते है। इसी समय १५७१ मे दक्षिण मे एकनाथ नामक प्रसिद्ध वैष्णव हुये, जिन्हे वहा भी दृढ रूप से भागवत धर्म स्थापित करने का श्रेय प्राप्त है। जो दशा उत्तरी भारत मे प्रारम्भिक एव माध्यमिक काल मे थी, वही महाराष्ट्र देश मे इसकाल उपस्थित हुई। विजयनगर तथा बहमनी साम्राज्य जब तक स्थापित रहे, तबतक दाक्षिणात्य हिन्दुओ पर कोई भारी बोझ न पड़ा, किन्तु इनके पीछे मुसलमानी बल बढ़ा। फिर भी इतना भेद था कि उत्तरी मुसलमानी राज्य बाहर से समय समय पर आनेवाले मुसलमान सैनिको द्वारा समर्थित रहता था, किन्तु दाक्षिणात्य मुसलमानी शक्ति प्रान्तीय हिन्दुओ की सहायता बिना दृढ़ नही रह सकती थी। अतएव उत्तर की भाति अत्याचार वहां नही किये जा सकते थे। फिर भी हिन्दू समाज पर मुसलमानी धार्मिक दबाव पडता ही था। इसीलिये वहा भी भारी सन्त संघ स्थापित हुआ, जिसने अपनी वाणी द्वारा समाज एवं जाति मे उमग उत्पन्न करके हिन्दूधर्म की रक्षा की। इसी संघ के महात्मा इस काल एकनाथ हुये, तथा आगे चलकर तुकाराम और रामदास के पवित्र नाम आवेगे। एकनाथजी ने ज्ञानेश्वरी नाम्नी उत्कृष्ट पुस्तक हिन्दी साहित्य मे रची तथा और भी कविता की। आपका समाज पर अच्छा प्रभाव पड़ा।

प्रौढ़ माध्यमिक हिन्दी

तुलसीकाल (१५७३-१६२३)
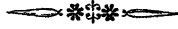
तुलसीकाल मे क्या सारे हिन्दी साहित्य मे महात्मा तुलसीदास अद्वितीय हैं। हिन्दी की जो कुछ महत्ता है, उसका एक बहुत बडा अश इन्ही के कारण है। इनके समय मे हिन्दी साहित्य मे व्यापकता भी अच्छी बढी। अब उसके कारणो पर विचार करके हम अन्य विषयो का कथन करेगे।

अकबरी दरबार।

शहाबुद्दीन ग़ोरी के समय ११९२ से अकबर कालारम्भ १५५५ तक प्राय साढे तीन सै वर्ष हम मुसलमानो का भारतीय समाज से शान्ति मे भी युद्ध देखते चले आये है। जिस मुस्लिम पौरुष ने हमारी राजकीय शक्ति को हँसते हुये मिट्टी में मिला दिया, उसी का सारा बल समाज के दबाने मे इतने दिन लगा रहा, किन्तु वह सब निष्फल हुआ। ग़ोरी, ग़ुलाम, खिल्जी, तोग़लक, सैयद, लोदी, आदिम मुगल और सूर घराने हमारे रंगमच पर आये और चले गये। समाज ने न उनका स्वागत किया, न उनके लिये कोई अश्रुपात करनेवाला था, हा, सूरवश ऐसा निकला, जिसने समाज से यह युद्ध समाप्त करना चाहा, हिन्दुओ को राज्य मे उच्चपद दिये तथा उन्नति के कुछ और भी लक्षण दिखलाये, किन्तु समय के फेर से मुगलो की शक्ति उसके लिये असह्य निकली। यही एक ऐसा घराना था, जिसके लिये हिन्दुओ ने भी कुछ प्रयत्न किया। हम अपने हेमू बक्क़ाल को सूरवश के लिये मुग़लो का सामना करते तथा प्राण देते देखते है। जब केवल १३ वर्ष की अवस्था मे राजकुल

तिलक सम्राट् अकबर तख़्त पर बैठे, तब उनके अधीन एक छोटा सा राज्यमात्र था। उन्होने आदि ही मे सोचा कि क्या कारण है कि साढे तीन सै साल के लम्बे समय मे भी मुसलमान भारत मे जड़ न जमा सके, और बड़े बडे राज घराने थोड़े ही से धक्के से निर्मूल हो गये? अकबर की प्रखर बुद्धि ने इस प्रश्न का उत्तर तुरन्त ही दे दिया। उन्होने समझ लिया कि मुसलमानी राज्य भारतीय राजशक्ति को निर्मूल करने मात्र से संतुष्ट न होकर भारतीय समाज पर भी धार्मिक आतक जमाने के प्रयत्न मे प्रजा मे भो अपने धार्मिक युद्ध द्वारा घोर असन्तोष फैलाता आया है, जिससे उसकी लोक-प्रियता का अस्तित्व नही के बराबर रहा आया है। इसी कारण उसके सामर्थ्य मे सदैव भारी क्षति रही है।

यही सोच समझकर इस दूरदर्शी सम्राट् ने यह प्रणाली यकबारगी छोडकर अपना राज्य लोकप्रिय बनाया। साढे तीन शताब्दियो का धार्मिक युद्ध समाप्त हुआ। समाज विजयी हुआ। भारत मे एकाएकी सत्ययुग सा आ गया। अकबर ने न केवल धार्मिक युद्ध समाप्त किया, वरन् भारतीय सन्तो का अच्छा मान भी आरम्भ किया। इसके अतिरिक्त आपने क्षत्रियो से रोटी बेटी का भी व्यवहार खोलना चाहा। यदि अकबर के पूर्व मुसलमानी अत्याचारो तथा कट्टर धार्मिक झमेलो का इतिहास न होता, तो हिन्दू मुसलमानो का मेल वैसा ही हो जाता, जैसा कि शको, हूणों, सिदियनो आदि से हुआ था, किन्तु इस शत्रुता पूर्ण लम्बे इतिहास के कारण मुसलमानो का बहिष्कार हिन्दुओ के लिये न केवल सामाजिक बर्ताव वरन् निश्चित धर्म हो गया था। अतएव रोटी का व्यवहार तो उस काल एक अनहोनी घटना थी जिसका प्रश्न ही न उठा। रहा बेटी का व्यवहार, सो हिन्दुओ को समझ पड़ा कि मुसलमानो की बेटी ब्याहने से अपने सन्तान मुसलमान हो जावेंगे, किन्तु यदि इनकी बेटी

किसी मुसलमान को ब्याही गयी, और भविष्य मे इन्होने उससे खानपान का बर्ताव न रक्खा, तो इनकी जाति न गई। इस विचार से पहले जैपुर नरेश ने अपनी बेटी स्वय अकबर को ब्याही तथा कुछ ही काल मे अन्य राजपूत घराने भी यही करने लगे, केवल उदयपुर के महाराणाओ ने ऐसा कभी न किया तथा महाराणा प्राताप सिह उदयपुर नरेश का इसी कारण अकबर से घोर युद्ध हुआ, जिसका वर्णन आगे आवेगा। कुछ काल तो ऐसा करनेवाले राजपूत नरेश समाज मे बहुत स्वार्थी माने गये, किन्तु पीछे से इस बात की प्रणाली पड़ गई और स्वार्थादि का कोई प्रश्न ही न रहा। सम्राट् अकबर के राज्यासीन होने के दस ही वर्ष पीछे विजयनगर का हिन्दू साम्राज्य दाक्षिणात्य मुसलमानी आक्रमणो से नष्ट हो गया, तथा बहमनी साम्राज्य १४६० से अपने प्रान्त खोने लगा, अथच १५२६ मे ध्वस्त ही हो गया था। इमादशाही और फारूकशाही नाम्नी रियासतो को १५७५ तथा १५६६ मे अकबर ने चूर्ण कर दिया, तथा १५६४ मे मालवा, १५७३ में गुजरात, १५७६ मे बगाल और १५८६ मे कश्मीर स्ववश किया। बारीदशाही १६०६ मे जहागीर ने छीनी और निजामशाही १६३७ मे शाहजहा ने। अकबर की हिन्दुओ को प्रसन्न रखकर स्वराज्य स्थापन की नीति शाहजहा के स्वामित्व १६५८ तक चलकर औरंगज़ेब के समय थोड़े ही दिनो (१६६८) मे भग हुई। इसका कथन यथास्थान होगा। जो शान्तिमय उच्चाशय पूर्ण सिद्धान्त सम्राट् अकबर ने स्थापित किया, उससे भारत मे सौ वर्ष से ऊपर सत्ययुग का सा आनन्द रहा, तथा मुसलमानो का राज्य ऐसा दृढ़ हुआ जो टूटते टूटते भी प्राय· दो शताब्दियो तक चला। यदि धर्मान्ध औरंगज़ेब ने अकबर की उच्च नीति उलट न दी होती, तो उसके पीछे भी साम्राज्य टूटने का कई शताब्दियो तक प्रश्न ही न उठता।

अकबरी कविगण।

अकबर ने न केवल हिन्दू समाज मे शाति स्थापित की, वरन् हिन्दी साहित्य का भी बहुत अच्छा मान और प्रचार किया। वे स्वयं कविता करते थे तथा उनके मन्त्रिमण्डल एवं दरबारियो में कई अच्छे कवि थे। इनमें नरहरि बन्दीजन, टोडरमल, बीरबल, गग, फैजी, अबुल्फज्ल, तानसेन, पृथ्वीराज, मनोहर, गंग भट्ट, होलराय, खानखाना रहीम, मानसिंह आदि के नाम गिनाये जा सकते है। इनके अतिरिक्त बहुत से छोटे बडे मनुष्य तथा साधारण कविगण भी अकबरी दरबार से सम्बद्ध थे, जिनमे से कई ऐसे सुकवि थे, कि उनका पृथक् वर्णन आवश्यक होगा। महाराजा टोडरमल अकबर के माल तथा मालगुजारी विभाग के प्रधान मन्त्री थे। आपने जब देखा कि सरकारी दफ्तर मे हिन्दी के होने से हिन्दूलोग फारसी नही पढते, जिससे उनकी पदोन्नति नही होती, तब दफ्तर हिन्दी के स्थान पर फारसी मे कर दिया। इतने दिनो तक मुसलमान बादशाहो के दफ्तर हिन्दी मे ही रहते थे। महाराजा टोडरमल की इस आज्ञा से हिन्दी की हानि हुई किन्तु हिन्दुओ को लाभ पहुँचा। आप व्रजभाषा मे कविता भी करते थे, जो साधारण श्रेणी की थी। आप ही के अधीन सडीले के सूरजदास अमीन थे, जो गौड वैष्णव सम्प्रदाय मे थे तथा सन्तो के इतने बड़े भक्त थे कि सरकारी मालगुजारी मे से १३ लाख उन्हे खिला बैठे और सरकारी सन्दूको मे पत्थर भर कर निम्न दोहे के साथ रवाना करके आधी रात को स्वयं भग खडे हुये :—

तेरह लाख सँडीले आये सब साधुन मिलि गटके।
सूरजदास मदन मोहन कवि राति आधि ही सटके॥

यह हाल जानकर अकबरशाह ने आपको क्षमा प्रदान करके अमीनी पर फिर से वापस बुलाया, किन्तु लज्जावश आप न गये और शेष जीवन वृन्दावन मे बिताते रहे। आपके बहुतेरे पद प्रसिद्ध महात्मा

सूरदास के पदो मे मिल गये है, क्योकि दोनो की छाप एक ही नाम से थी। इससे आपकी रचना बहुत कम मिलती है। महाराजा बीरबल अकबर को परम प्रिय थे। इनसे मजाक भी हुआ करता था। आपका साहित्य भी उच्चश्रेणी का था। ओड़छे के प्रसिद्ध कवि केशवदास की प्रार्थना पर उस राज्य पर जो शाही दरबार से एक करोड का जुर्माना हुआ था, वह आपने माफ करा दिया, तथा अपनी जेब से भी केशवदास को छ लाख रुपये एक ही छन्द पर दिये। आपके औदार्य्य की बडी प्रशंसा थी। एक बार कावुल जीतने को आप सेना सहित उधर भेजे गये। उस युद्ध मे दूसरे शाही सेनापति से आपकी मन मैली हो गई जिससे आपका अफ़गानो द्वारा ससैन विनाश हो गया। इस पर अकबर शाह ने बडा दुख मनाया।

अकबर शाह के उदाहरण।

दीन देखि सब दीन, एक न दीन्हो दुसह दुख।
सो हम कहँ अब दीन, कछु नहिँ राख्यो बीरबल॥

शाह अकब्बर बाल कि बाहिँ अचिन्त गही चलि भीतर भौने।
सुन्दरि द्वारहि दीठि लगायकै भागिबे को भ्रम पावत गौने।
चौकति सी चहु ओर बिलोकति सक सकोच रही मुख मौने।
यो छवि नैन छबीली के छाजत मानो बिछोह भरे मृग छौने।

महाराजा बीरबल के उदाहरण।

(कविता मे आप अपना नाम ब्रह्म रखते थे।)

एक समै हरि धेनु चरावत बेनु बजावत मञ्जु रसालहिँ।
दीठि गई चलि मोहन की वृषभानुसुता उर मोतिन मालहि।
सो जबि ब्रह्म लपेटि हिये कर सो कर लै कर कज सनालहिँ।
ईसके सीस कुसुम्म कि माल मनो पहिरावति व्यालिनि व्यालहिँ।

फैज़ी और अबुलफज़्ल अकबर के प्रधान मन्त्रियो मे थे। ये फ़ारसी के भारी विद्वान थे और हिन्दी कविता भी कुछ कुछ करते थे। तानसेन उपनाम तृलोचन मिश्र भारत के प्रधान गानेवाले

समझे जाते है। अब तक इनके बराबर का गानेवाला इस देश मे दूसरा नही गिना जाता। आप ग्वालियर निवासी ब्राह्मण थे, किन्तु गाना सिखलाने मे उस्ताद गौस ने अपनी जिह्वा इनकी जिह्वा मे लगा दी और इसी लिये उनके मुसलमान होने के कारण बेचारे तानसेन भी मुसलमान मान लिये गये। आप हिन्दी कविता भी करते थे। सूरदास की प्रशसा मे आपने निम्न दोहा लिखा जिसके उत्तर मे सूरदास ने भी एक दोहा कहा —

किधौ सूर को सर लग्यो, किधौ सूर की पीर।
किधौ सूर को पद लग्यो, तन मन धुनत शरीर। (तानसेन)
विधिना यह जिय जानि कै, सेसहि दिये न कान।
धरा, मेरु सब डोलते, तानसेन की तान। (सूरदास)

बैजू बावरे और सदारंग भी प्रसिद्ध गायनाचार्य और तानसेन के समकालीन थे। तानसेन ने नाद शास्त्र मे महात्मा हरिदास को भी अपना गुरु किया था। कहते है कि अकबर शाह के यहां एक बार विवाद उठा कि तानसेन विशेष गुणी थे या बीरबल। इससे बादशाह बोले कि यदि मै बीरबल को बडा कहूं तो तानसेन को समझ पड़ेगा कि मेरा निर्णय मित्रता के कारण है। अतएव यह फैसला मैं अपने एक मात्र शत्रु महाराणा प्रतापसिंह पर छोडता हू। निदान महाराजा बीरबल और तानसेन दोनो मेवाड़ के जङ्गलो मे महाराणाजी से मिले, क्योकि उस काल उनका राज्य छूट चुका था, और वे जङ्गलो मे रहकर सम्राट् अकबर से युद्ध करते थे। तानसेन ने तो गाना बजाना सुनाकर महाराणाजी को बहुत प्रसन्न किया, किन्तु जब महाराजा बीरबल की बारी आई, तब बहुत से चुटकुले छोड़ने पर भी उन्होने देखा कि उनकी बुद्धिमानी की प्रशसा तो हुई, किन्तु रंग पूरा न जमा। बेचारे राजमन्त्री और कवि होकर एक गाने वाले के सामने क्या गुण दिखलाते? कोई राजकाज का भारी प्रश्न होता, तो चातुर्य प्रकट कर सकते। कवि थे अवश्य अच्छे,

किन्तु नादशास्त्र मे जो स्थान तानसेन का था, उसका आधा भी इनका साहित्य मे न था। रंग जमता तो क्या जमता? अन्त मे सोच समझ कर बोले कि अपना गुण तो मै श्रीमान् के सामने प्रकट कर ही चुका हू, अन्त मे एक इतनी बात और कहनी है कि मैं हू ब्राह्मण कुमार, जीतूगा तो गोशत देकर सौ सुयोग्य ब्राह्मण जिमाऊगा, और यदि ये मियां तानसेन जीते, तो अजमेर की दरगाह मे सौ गौवो की कुरबानी करेगे। आप हिन्दू कुलसूर्य और हिन्दूपति है, चाहिये सो निर्णय कर दीजिये। मुसलमान बादशाह के यहा तो मेरा मान है, अब देखूं हिन्दूपति के यहा एक शुद्ध ब्राह्मण का मान रहता है, या मिया का। बेचारे तानसेन बहुत कहते रहे कि मै भी तो मिश्र था, और मैंने कोई कुरबानी नही मानी है, किन्तु महाराजा बीरबल बोले कि अब तो आप मिश्र नही है, अब इस इतिहास से क्या प्रयोजन? अन्त मे बीरबल की ही जीत का परवाना जारी हो गया। जब शाही दरबार मे यह मामला खुला और तानसेन ने अपना वाद किया, तो बादशाह बोले कि मैंने कब कहा था कि किस प्रकार जीत हार का प्रश्न निर्णीत हो? मैं तो निर्णय मागता था, सो आगया। यही तो हमारे महाराजा की महत्ता है कि जहा जैसा दरबार देखेगे, वही अपना सिक्का जमा सकते है। आप ही कोई युक्ति करके परवाना लाते न, मना किसने किया था? कहते है कि महाराजा बीरबल के पिता बहुत साधारणी योग्यता के पुरुष थे। एक बार मुल्ला दुपियाज़ा आदि ने शाह से विनती करके उन्हे इस अभिप्राय से दरबार मे बोलवाया कि उनकी मूर्खताओ के द्वारा बीरबल झेपाये जावे। इन्होंने उन्हें सरकारी आदाब अरकाब के नियम भली भांति बतला दिये। जब वे ठीक प्रकार से आकर नियत स्थान पर सलीके के साथ बैठ गये, तब सभों ने सोचा कि शायद उनकी मूर्खताओ वाली कथाये अशुद्ध थी। इसके पीछे बादशाह तथा मुल्ला साहब ने उनसे

कई प्रश्न किये, किन्तु उन्होने किसी का कोई उत्तर ही न दिया, क्योकि बीरबल ने पहले ही से ऐसा समझा रक्खा था। इसपर मुल्ला साहेब ने कहा कि हुजूर! अगर अहमक से पाला पडे, तो क्या करै? बादशाह के इशारे से बीरबल ने उत्तर दिया कि जहापनाह! बस खामोशी अख्तियार करै। इसपर मुल्ला साहब खूब झेपे, क्योकि वे ही खूब बाते कर रहे थे और उधर बीरबल के पिता जी चुपके बैठे थे। दरबार मे अच्छा कहकहा हुआ। इसी प्रकार की चुहल हुआ करती थी। इन बातो से बादशाह की सहिष्णुता एव गुण-ग्राहकता तथा धार्मिक विद्वेषाभाव प्रकट हैं।

गग कवि एक बडे ही लब्धप्रतिष्ठ महाशय तथा सत्कवि थे। इनका भी दरबार मे बडा मान था। आपने बहुत बढिया कविता की, तथा खानखाना कवित्त नामक एक ग्रन्थ भी रचा, जिसमे खानखाना की प्रशंसा थी। कहते है कि खानखाना ने इन्हे लाखो रुपये इनाम दिये। आपकी भाषा विशेषतया व्रजभाषा है, किन्तु दास कविने इनकी रचना मे विविध प्रकार की भाषा पाई थी, यथा :—

तुलसी गग दुवौ भये सुकविन के सरदार।
इनके काव्यन मे मिलै भाषा विविध प्रकार। (दास)

कहते है कि किसी की क्रूर आज्ञा से गग कवि हाथी द्वारा चीर डाले गये थे। जो हो, आप एक परमोत्कृष्ट कवि है, और आपकी महिमा एवं महत्ता ऐसी सर्वमान्य थी कि बडे बड़े कवियो तक को आपसे ईर्ष्या होती थी। आपके प्राय. डेढ सै वर्ष पीछे स्वय देवकवि ने यह छन्द लिखा था .—

अकबर काल बरबीर केसौदास चारु,
गग की सुकविताई गाई रस पाथी ने।
एकदल सहित बिलाने एक पलही मे,
एक भये भूत एक मीजि मारे हाथी ने।

गग कवि को रचना के उदाहरण।

नवल नवाब खानखाना जू तिहारी त्रास,
भाजे देसपति धुनि सुनत निसान की।
गंग कहै तिनहूं की रानी रजधानी तजि,
फिरैं बिललानी सुधि भूलो खानपान की।
तेई मिली करिन, हरिन, मृग, बानरन,
तिनह्व की भली भई रच्छा तहा प्रान की।
सची जानी करिन, भवानी जानी केहरिन,
मृगन कलानिधि, कपिन जानी जानकी।

प्रबल प्रचण्ड बली बैरम के खानखाना तेरो धाक,
दीपन दिसान दह दहकी।
कहै कवि गंग जहां भारो सूर बीरनि के,
उमडि अखंड दल प्रलै पौन लहकी।
मच्यो घमसान तहां तोप, तीर, बान चलैं,
मडि बलवान किरवान कोपि गहकी।
तुंड काटि, मुंड काटि, जोसन जिरह काटि,
नीमा जामा जीन काटि, जिमी आनि ठहकी।

झुकत कृपान, मयदान ज्यो उदोत भान,
एकनतै एक मनौ सुषमा जरद की।
कहै कवि गंग तेरे बल की बयारि लागे,
फूटी गज घटा घन घटा ज्यो सरद की।
एतेमान सोनित की नदिया उमड़ि चली,
रही ना निसानी कहू महि मैं गरद की।
गौरी गह्यौ गिरिपति, गनपति गही गौरी,
गौरीपति गही पूछ लपकि बरद की।

गंग ने ख़ानखाना को नवल नवाब कहा है, जिससे ये उनके सामने वयोवृद्ध समझ पडते हैं। यह अकबर का ही समय था कि

जब ब्राह्मण कवि गग, मुसलमानो का जय यश गान करने लगे। अकबर ने महाराणा प्रतापसिंह को छोडकर किसी हिन्दू नरेश से युद्ध भी नही किया, वरन् अन्य मुसलमान बादशाहो को ही जीत जीतकर अपना साम्राज्य स्थापित किया। इन जीतो मे प्राय॰ राजपूत ही अकबर की ओर से युद्ध करते थे, सो देखने मे समझ पडता था मानो हिन्दू मुसलमानो को पराजित कर रहे हो। अकबर के सबसे अधिक विजयी सेनापति महाराजा मानसिंह जयपूर नरेश थे। गंग की रचना मे हास्यरस की पुट है, तथा उद्दण्डता और राज्यभक्ति भी मिली हुई है।

गग भट्ट ने १५७० मे चन्द छन्द बरनन की महिमा हिन्दी गद्य मे लिखी। इसमे केवल १६ पृष्ठ है, और ग्रन्थ बादशाह को सुनाया गया था।

उदाहरण .—सिद्धि श्री श्री १०८ श्री श्री पातसाहा जी श्री दल-पति जी अकबर साहाजी आमकाश मे तखत ऊपर विराजमान हो रवेह, और आमकाश भरने लगा हे, जीसमे तमाम उमराव आय आय कुणश बजाय बजाय जुहार करके अपनी अपनी बैठक पर बैठ जाया करें, अपनी अपनी मिसल से। जिनकी बैठक नही सो रेशम के रस्से मे रेसम कीलू मे पकड पकड़ के षडे ता ब्रिन मे रहै।

मनोहर दास कछवाहा उपनाम मनोहर कवि अकबर शाह के मुसाहेब थे। फ़ारसी शायरी मे तो आप अपना नाम तौसनी रखते थे और हिन्दी मे मनोहर। इनका समय १५६३ के लगभग था। इनकी रचना उदार, मधुर, सानुप्रास, भावपूर्ण, सरस और प्रशंसनीय है।

उदाहरण।

बिथुरें सुथरे चीकने बने घने घुँघरार।
रसिकन को जंजीर से बाला तेरे बार।

कविता का उदाहरण।

दिल्ली ते न तख़्त ह्वै है, बख़्त ना मुगल कैसो,
ह्वै है ना नगर बढि आगरा नगर ते।
गंग ते न गुनी, तानसेन ते न तानबाज,
मान ते न राजा, औ न दाता बीरबर ते।
खान खानखाना ते न, नर नरहरि ते न,
ह्वै है न दिवान कोई बेडर टडर ते।
नवो खंड, सात दीप, सातहु समुद्र पार,
ह्वै है न जलालुदीन साहि अकबर ते।

इस छन्द से प्रकट है कि हिन्दू लोग अकबरी राज्य को स्वराज्य-साही समझते थे।

नवाब अब्दुल रहीम खानखाना अकबरी साम्राज्य के मुख्य सेनापति थे तथा नाबालगी के समय मे इनके पिता बैरम खा अकबर के पालक थे। रहीम का जन्म १५५५ मे हुआ। अकबरी दरबार के नवरत्नो मे ये भी थे, और इनका अच्छा मान था। कहते है कि यावज्जीवन आपने किसी पर क्रोध नही किया। एक समय अकबरी दल का महाराणा प्रतापसिह से जब घोर युद्ध हो रहा था, तब रहीम का परिवार राणाजी के सैनिको के हाथ पड गया। यह सुन राणाजी ने बडे सन्मान के साथ उसे खानखाना के पास भेज दिया। आपने यह उपकार जन्म भर स्मरण रक्खा और २४ वर्ष राज्यहीन रहकर राणाजी ने जब अपना राज्य छीन पाया, तब अकबर को समझा बुझाकर चित्तौर पर फिर से सैन्य सन्धान का मसूबा कटवा दिया। इस प्रकार महाराणा प्रतापसिह विजयी होकर सुख पूर्वक राज्य कर सके। एक बार जगलो मे फिरते फिरते विकल होकर जब राणाजी ने आत्म समर्पण का विचार किया था, तब आपने उसके प्रतिकूल गुप्त मंत्रणा देकर उन्हे अपने हठ पर स्थिर रहने को सुझाया था। दोहा इस प्रकार है :—

भ्रम रहसी रहसी धरा खिस जासी खर साण।
अमर बिसम्भर ऊपरे, रखियो नहचो राण॥

अर्थात् हे राणा, आप विशम्भर पर अमर निश्चय रखिये और आपका अन्त मे भला होगा। इस दोहे का एक एक शब्द समय ने सार्थक करके दिखला दिया। मुसलमान होकर भी आप पूरे वैष्णव थे, यथा :—

तै रहीम मन आपनो कीन्हो चारु चकोर।
निसि बासर लाग्यो रहै, कृष्णचन्द्र की ओर॥

आप न केवल महाकवि, वरन् गुणियो के भी कल्पवृक्ष थे। अकबरी दरबार मे सर्वश्रेष्ठ हिन्दी कवि आप ही थे। आपने फारसी, उर्दू, ग्राम्य भाषा, व्रजभाषा, आदि सभी मे रचना की है। एक समय कारण वश जहांगीर के द्रोही हो कर आप बन्दी हो गये, और मुक्त होने पर भी कुछ काल अपमानित रहे। अर्थी लोग ऐसी अवस्था मे भी इन्हे घेरते थे, और अपने मे दानशक्ति न होने के कारण आपको क्लेश होता था। ऐसी दशा मे आप कहते है, यथा :—

तब ही लौं जीबो भलो, दीबो होय न धीम।
जग मे रहिबो कुचित गति, उचित न होय रहीम॥
ये रहीम दरं दर फिरैं, माँगि मधुकरी खाहिं।
यारो यारी छोडिये, वे रहीम अब नाहिं॥
चित्रकूट मे रमि रहे, रहिमन अवध नरेस।
जेहि पर बिपदा परति है, सो आवत यहि देस॥

कहते है, अन्तिम, उपरोक्त दोहा सुनाकर आपने रीवा नरेश से किसी सुपात्र मंगन को धन दिलवाया था। आप का शरीरान्त १६२७ मे कहा जाता है। आपने रहीम सतसई, बरवै नायिका भेद, रास पञ्चाध्यायी, मदनाष्टक, दीवान फ़ारसी और वाकयात बाबरी का अनुवाद नामक छः ग्रन्थ रचे।

उदाहरण।

कलित ललित माला वा जवाहिर जडा था।
चपल चखन वाला चादनी मे खडा था।
कटि तट बिच मेला पीत सेला नवेला।
अलिबन अलबेला यार मेरा अकेला।

खीन मलिन विष भैया औगुन तीन।
पिय कह चन्द बदनियां अति मतिहीन॥
ढीलि ओखि जल अँचवनि तरुनि सुगानि।
धरि खसकाय घइलना मुरि मुसुकानि॥

रहिमन मोहिँ न सुहाय, अमिय पियावै मान बिन।
बरु बिष देय बुलाय, मान सहित मरिबो भलो॥
रहिमन रहिला की भली, जो परसै मन लाय।
परसत मन मैला करै, सो मैदा जरि जाय॥
काम न काहू आवई, मोल रहीम न लेय।
बाजू टूटे बाज को, साहेब चारा देय॥
रहिमन बहरी बाज गगन चढै फिरि क्यो तिरै।
पेट अधम के काज फेरि आय बन्धन गिरै॥
अब रहीम मुसकिल परी गाढ़े दोऊ काम।
साचे से तो जग नही झूठे मिलैं न राम॥
जे गरीब को आदरैं ते रहीम बड़ लोग।
कहा सुदामा बापुरो कृष्ण मिताई जोग॥
छिमा बड़ेन को चाहिये छोटेन को उतपात।
का रहीम हरि को घट्यो, जो भृगु मारी लात॥
रहिमन बिगरी आदि की बनै न खरचे दाम।
हरि बाढ़े आकास लौ मिटो न बावन नाम॥
कमला थिर न रहीम कहि यह जानत सब कोय।
पुरुष पुरातन की बधू क्यो न चंचला होय॥

बड़े पेट के भरन को है रहीम दुख बाढि।
याते हाथी हहरि कै रह्यो दात द्वै काढि॥

महाराजा मानसिह जयपुर नरेश अकबर के सरपुत एव प्रधान तथा विजयी सेनापति थे। इनपर इतना विश्वास था कि काबुल तक पर चढाई करबे को यही भेजे गये थे। इन्ही के सामरिक चातुर्य से कई प्रान्त अकबर के स्ववश हुये। आप हिन्दी कविता भी करते थे। एक बार किसी विजय यात्रा के पीछे आप उदयपुर पहुँचे, किन्तु महाराणा प्रतापसिह ने मुसलमानी सम्बन्ध के कारण इनके साथ भोजन न किया। इसी बात पर क्रुद्ध हो कर आप राणाजी के प्रतिकूल शाही सेना चढा ले गये, और हल्दीघाट के समर मे अद्भुत शौर्य्य दिखला कर राजपूत दल पराजित हुआ तथा उदयपुर एव मेवाड़ राज्य पर अकबर का अधिकार हो गया, किन्तु चौबीस वर्ष बन भ्रमण करने पर भी राणाजी ने हठ न छोड़ा, और अन्त मे अपने मन्त्री भामाशा के धन से सैन्य सन्धान करके अपने राज्य पर फिर से अधिकार कर लिया। महाराणा प्रतापसिह जातीय मान के सबसे बड़े प्रतिपादक थे। आपने सब कुछ छोडा, किन्तु जाति में अणुमात्र भेद न आने दिया। इसी कारण इनकी पराजय न हुई। क्षत्रियो ने सब कुछ छोड़ कर आपका साथ दिया, भीलो ने पिता के समान मानकर पराजित राणाजी का मान रक्खा, तथा मन्त्री भामाशा ने पुश्तो से अर्जित अपना भारी कोष देकर जातीयता को रक्षा की। एक बार प्रताप सिह की भी लौह दृढ़ता ढीली पड़ गई। अपना कष्ट आप सुख से सहते रहे, किन्तु जब एक बिल्ली द्वारा घास की आधी रोटी छिन जाने पर आपकी बेटी क्षुधा के कष्ट से चिल्लाकर रोने लगी, तब प्रताप सिंह ने भी अपने हठ को धिक्कारा और अकबर को आत्म समर्पण का पत्र लिखा। इसी अवसर पर ख़ानख़ाना ने उपरोक्त दोहा प्रतापसिंह के पास भेजा अथच अकबर के अनुयायी तथा बेटी व्याहनेवाले स्वयं महाराजा

पृथ्वीराज बीकानेर नरेश ने राणाजी के पास निम्न सोरठे गुप्तरीत्या लिख भेजे :—

अकबर समद अथाह सूरायण भरियो सजल।
मेवाडो तिण माह पोयण फूल प्रताप सी।
अकबर घोर अँधार ऊघाने हिन्दू अन्नर।
जागे जगदातार पोहरे राण प्रताप सी।
अकबर एकणबार दागल को सारी दुणी।
बिन दागल असवार एकज राण प्रताप सी।
हिन्दू पति परताप पति राखी हिँदुआन की।
सहे बिपति सन्ताप सत्य शपथ करि आपणी।
सहगावडिये साथ एकण वाड़े बाड़िया।
राण न मानी नाथ ताणे राण प्रतापसी।
सोयो सो ससार असुर पलोलै ऊपरै।
जागे जगदातार पोहरे राण प्रताप सी।

ऐसे ही और भी छन्द है। ख़ानखाना का उपरोक्त दोहा तथा बीकानेर नरेश महाराजा पृथ्वीराज के ये छन्द पाकर महाराणा प्रताप सिह ने जाना कि बेटी का क्षुधार्त हो कर बिलखना भी देखकर उनका हठ छोड़ना अनुचित था। अतएव वे फिर से दृढ़ पडे और अन्त मे अपने राज्य पर अधिकृत होकर मेवाड की शान एव स्वतन्त्रता स्थापित रखने मे समर्थ हुए। इन वाक्यो का भारतीय इतिहास पर भारी प्रभाव पड़ा है। भारत मे हम यह पहला समर देखते है, जिसमे युद्ध राज्यार्थ न होकर केवल विचारों पर अवलम्बित था। अकबर मेवाड़ पर कोई अधिकार नही चाहते थे, न महाराणा को किसी प्रकार की हानि पहुँचानी उनका अभीष्ट था, वरन् वे मेवाड राज्य की वृद्धि के भी उत्सुक थे, जैसा कि जयपुर राज्य का हाल हुआ, किन्तु उनकी इच्छा केवल हिन्दू मुसलमानो मे मेल करने की थी। तो भी हमारा पुराना सामाजिक बहिष्कार

इतना द्रढ धर्म हो चुका था, कि जो हिन्दू बेटी व्यवहार में योग ले चुके थे, वे भी अपना यह कार्य स्वार्थ जन्य अथच धर्म विरुद्ध मान्ते थे, यहा तक कि मुसलमान तक समझते थे कि कोई गौरवाभिमानी हिन्दू किसी मुसलमान को बेटी कैसे दे सकता था? स्वयं खानखाना ने इस विचार को पूज्य धर्म माना। तो भी यह मेल उस काल हिन्दुओ को पूरी उन्नति दे रहा था। बहुत करके इसी के कारण मुगल साम्राज्य हमारे लिये प्राय: पूर्ण स्वराज्य था। बादशाह का मुसलमान होना एक अनावश्यक घटनामात्र थी। वे हिन्दू मुसलमानो के बीच प्राय: पूर्णतया तटस्थ रहते थे। अधिकार दोनो के समान थे। ऊचे पद दोनो को समान मिलते थे। साम्राज्य के दान से भी दोनो को लाभ पहुँचता था। जो कुछ मुख्यता थी, वह हिन्दुओ की हो थी, क्योकि जहा मुसलमान अफ्सर साधारण प्रजा थे, वही ऊचे हिन्दू अधिकारी अपने अपने राज्यो के महाराज होकर आत्मीय भाव से भी गौरवान्वित थे। महाराजा मानसिंह ने कई मुसलमान राज्यो का समरो में ध्वसन करके पूरे मध्य तथा उत्तरी भारत मे हिन्दू मुसलमान दोनो की सहायता से स्वराज्य स्थापित किया। बादशाह के सम्बन्धी केवल मुसलमान न थे, वरन् हिन्दू भो उनके मामा, नाना आदि थे। स्वय अकबर के उत्तराधिकारी जहांगीर हिन्दू माता के पुत्र थे, एवं जहागीर के उत्तराधिकारी शाहजहां के भी नाना हिन्दू थे। ऐसी दशा मे बादशाह आधे हिन्दू भो थे। हिन्दुओं के दौहित्र होकर भी जहागीर और शाहजहा चित्त से थे मुसलमान ही, किन्तु शाहजहां के युवराज दाराशाह चित्त से भी हिन्दू थे। फल यह था कि जब तक अकबर की पालिसी (राजनीति) चली तब तक मुग़ल राज्य की दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति होती रही, तथा दोनो हिन्दू मुसलमान पूर्णतया प्रसन्न थे। स्वयं जगन्नाथ पण्डित राज ने कहा है कि दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा। हिन्दू मुसलमानो मे थोड़ा भी

अन्तर शेष न रखने के विचार से महात्मा अकबर ने दीन इलाही मत दोनो के लिये चलाना चाहा, किन्तु उधर तो मुसलमान उससे उदासीन रहे और इधर महाराजा बोरबल को छोडकर कोई हिन्दू महापुरुष उसे पसन्द न कर सका। उसके चलने से देश का भारी उपकार था। फिर भो इस असफलता से असन्तुष्ट न होकर इस महामना बादशाह ने यावज्जीवन हिन्दू मुसलमानो का भरसक मेल बढाकर दोनो का तथा देश का उपकार किया। यदि समय पर धर्मान्धो की सम्मति चलकर यह सुखद दशा न पलटती तो भारत के सुदिन स्थापित रहते। उपरोक्त कथनो मे इतना हो सकता है कि शायद मुसलमान अधिकारी संख्या मे कुछ अधिक हो, किन्तु इससे कोई विशेष फेर फार न पड़ता था।

अकबरी दरबार के अतिरिक्त इस काल के मुसलमान हिन्दी कवियो मे क़ादिर, मुबारक और उसमान मुख्य थे। उसमान का वर्णन सूफी कवियो मे ऊपर हो चुका है। क़ादिर पिहानी जिला हरदोई के रहनेवाले १५८८ मे उत्पन्न कहे गये है। आप सैयद इब्राहीम के शिष्य थे और कविता आदरणीय करते थे। आपका एक छन्द उसकाल के कुछ मुसलमानो के विचारो का अच्छा उदाहरण है।

गुन को न पूछै कोई औगुन की बात पूछै
कहा भयो दई कलियुग यो खरानो है।
पोथी औ पुरान ज्ञान ठट्ठन मे डारि देत
चुगुल चवाइन को मान ठहरानो है।
कादिर कहत याते कछू कहिबे की नाहिँ
जगत को हाल देखि चुप मन मानो है।
खोलि देखो हियो सब ओरन सो भांति भांति
गुन ना हेरानो गुनगाहक हेरानो है।

सैयद मुबारक अली बिलगरामी का जन्मकाल १५८३ कहा जाता है। यह महाशय अरबी, फ़ारसी तथा संस्कृत के अच्छे विद्वान

अथच हिन्दी के सुकवि थे। नखशिख के वर्णन मे आपके अलक शतक और तिलक शतक हमारे देखने मे आये है। दोहो के अतिरिक्त इनके स्फुट छन्द भी देखने मे बहुत आये है। खानखाना, कादिर, मुबारक आदि मुसलमान कवियो की हिन्दी वैसी ही है, जैसी तत्कालीन हिन्दुओ की थी। इस काल की रचनाओ से जान पड़ता है कि उर्दू भाषा अमीर खुसरो के समय से साहित्यिक भाषा होकर अकबरी काल तक उन्नति करती आई थी और एक स्वच्छ भाषा हो गई थी, किन्तु अभीतक लोग उसे हिन्दी से पृथक नही समझते थे। यह भाषा दिल्ली, मेरठ, आदि की साधारण बोली थी। मुसलमानो की राजधानी दिल्ली होने से उनका संसर्ग पहले यही की बोली से अधिक हुआ, जिससे यह उनके फौजी खेमो मे बोली जाने लगी, और इसी कारण उर्दू कहलाई, क्योकि फ़ारसी में खेमे को उर्दू कहते हैं। समय के साथ ज्यो ज्यो मुसलमानी शासन अन्य प्रान्तो तकमे सबल पड़ता गया, त्यो त्यो उर्दू भी उन्ही के साथ दूरस्थ प्रान्तो मे पहुँचती गई, जिससे यह खड़ी बोली के रूप मे समय पर भारत की नागर भाषा हो गई। अबतक ग्रामो मे प्रान्तीय भाषा का प्रयोग होता है, किन्तु शहरो में सब कही उर्दू अर्थात् खडी बोली का प्रचार है।

अकबरी दरबार द्वारा प्रोत्साहन पाकर हिन्दी साहित्य उस काल के अन्य बड़े आदमियो मे भी प्रतिष्ठित हुआ तथा हमारे कवियो का मान बहुत बढा। इन महापुरुषो मे राजा आसकरन, इब्राहीम आदिलशाह, और मुकुन्दसिह हाड़ा के नाम गिनाये जा सकते हैं। आसकरन का रचनाकाल १५५० के लगभग था। आपके पद मिलते हैं। आप नरवर गढ ग्वालियर के राजा भीमसिह के पुत्र थे। इब्राहीम आदिलशाह (१५५१) बीजापूर नरेश थे। आपने रसो और रागो पर नौरस नामक ग्रन्थ बनाया। महाराजा मुकुन्दसिह हाड़ा (जन्मकाल १५७८, रचनाकाल १६०३) कोटा के नरेश थे। आप

१६५९ में शाहजहा की ओर से लड़कर उज्जैन मे औरंगज़ेब द्वारा मारे गये। आप हिन्दी के कवि थे।

ओडछा दरबार।

अकबरी काल मे ओड़छे में भी अच्छे कवि थे, तथा उनका सम्मान भी अच्छा था। वहां के नरेश महाराजा इन्द्रजीतसिह स्वयं कवि थे तथा केशवदास, प्रवीणराय, व्यासजी आदि सुकवियो से वह राजसभा सुशोभित थी। केशवदास के ज्येष्ठ भ्राता बलभद्र मिश्र भी श्रेष्ट कवि थे और शायद ये भी वही रहते हो। इन सब कवियो मे केशवदास श्रेष्ठतम थे। आप न केवल ओडछे के सुकवि थे, वरन् समस्त हिन्दी साहित्य प्रेमियो मे आपका पद बहुत ऊचा था। हमने भी इनको हिन्दी नवरत्न मे स्थान दिया है। बहुतो का विचार है कि तुलसीदास तथा सूरदास के पीछे हिन्दी में इनके बराबर का कोई कवि हुआ ही नही।

सूर सूर तुलसी ससी उड़गन केशवदास।
अब के कवि खद्योत सम जहँ तहँ करत प्रकास॥
कविता करता तीनि है, तुलसी केशव सूर।
कविता खेती इन लुनी, सीला बिनत मँजूर॥

ये दोहे आपके ऊचे साहित्य पद को प्रकट करते है। आपने कई ग्रन्थ बनाये, जिनमे रामचन्द्रिका, कविप्रिया, रसिक प्रिया, विज्ञान गीता तथा वीरसिंह देव चरित्र प्रधान है। इस अन्तिम ग्रन्थ का विषय तो अच्छा है, किन्तु इसकी साहित्य गरिमा साधारणी होनेसे इसका प्रचार कम है। विज्ञान गीता की कुछ लोगो मे प्रशंसा तो है, किन्तु काव्य इसका भी शिथिल है। रसिक प्रिया मे रचना कुछ अच्छी है, किन्तु शृङ्गाराधिक्य से यह ग्रन्थ भी मनोरञ्जकता की कमीसे सभ्य समाज मे तादृश आदर न पा सका। कविप्रिया रीति ग्रन्थ है, और ऊंचे दर्जे का माना जाता है। इनकी रामचन्द्रिका सर्वोत्कृष्ट है।

रावण बध पर्यन्त इधर और लवकुश चरित्र उधर इस ग्रन्थ में बहुत अच्छे और चित्ताकर्षक बन पड़े हैं। यद्यपि इस ग्रन्थ मे सस्कृत साहित्य से अनुवाद बहुत कुछ है, फिर भी रामचन्द्रिका हमारे हिन्दी साहित्य का एक बहुत ही बढिया ग्रन्थ है। आपका रचना काल १५९१ से १६१३ तक प्रधानतया चलता है। इतना सब होते हुये भी हम केशवदास की रचना मे तल्लीनता की मात्रा कम पाते है। पाण्डित्य आपका प्रशंसनीय है, किन्तु तल्लीनता के अभाव से आपकी उद्दण्ड तथा उत्कृष्ट रचना मे हृदय पर चोट करनेवाले भावो की कमी है, हा वह जोरदार अवश्य है। बलभद्र मिश्र एक ऊंचे दर्जे के नखशिख रचयिता है। आपकी गणना ऊचे आचार्यो मे होती है। व्यासजी का रचना काल १५५८ के लगभग है। आपके ग्रन्थ बानी, रास के पद, ब्रह्मज्ञान, मंगलाचार, रागमाला साखी आदि का पता लगा है। आप भी सुकवि थे।

उदाहरण।

जैसे गुरु तैसे गोपाल।

हरि तौ तबही मिलि हैं, जबही श्री गुरु होयँ दयाल।
गुरु रूठे गोपाल रूठिहै वृथा जात है काल।
एक पिता बिन गनिका सुत को कौन करै प्रतिपाल।

प्रवीनराय की पातुर सज्ञा है किन्तु वास्तव मे आप वेश्या न थी, वरन् महाराजा इन्द्रजीतसिह की उपपत्नी थी, अर्थात् बिना ब्याही नायिका थी, और परदा न मानकर उन महाराज की अन्तरङ्ग पुरुष समाज मे सम्मिलित होती, तथा पतिव्रता थी। आप कविता भी अच्छी करती थी। आपके रूप की प्रशंसा सुनकर अकबर बादशाह ने आपको बोला भेजा। इस पर अतिव्याकुल हो, महाराज इन्द्रजीत के सामने आपने निम्न छन्द द्वारा उनकी सम्मति मांगी :—

आई हौं बूझन मन्त्र तुम्हैं निज सासन सो सिगरी मति गोई।
देह तजौं कि तजौं कुलकानि हिये न लजौं लजिहै सब कोई।

स्वारथ औ परमारथ की गथ चित्त बिचारि कहौ तुम सोई।
जामै रहै प्रभु को प्रभुता अरु मोर पतिव्रत भंग न होई।

यह समाचार सुनकर ओडछा नरेश ने इन्हे दिल्ली न भेजा, जिससे असन्तुष्ट होकर सम्राट् ने ओडछा पर एक करोड का जुर्माना किया। तब केशवदास ने महाराजा बीरबल के शरण जाकर उनकी प्रशसा मे निम्न छन्द सुनाया :—

पावक पछी पसू नर नाग नदी नद लोक रचे दश चारी।
केशव देव अदेव रचे नरदेव रचे रचना न निवारी।
कै बरवीर बली बल को सुभयो कृतकृत्य महाव्रतधारी।
दै करतापन आपन ताहि दियो करतार दुवौकर तारी।

इस छन्द से प्रसन्न होकर बीरबल ने केशवदास को छ लाख रुपये उसी समय दिये। इस पर केशवदास ने निम्नलिखित छन्द पढा —

केशवदास के भाल लिखो बिधि रंक को अक बनाय सॅवारो।
छोडे छुटो नहिँ धोये धुयो बहु तीरथ के जल जाय पखारो।
ह्वै गयो रंक ते राव तही, जही बीरबली बल बीर निहारो।
सोचि यहै जग की रचना चतुरानन बाय रह्यो मुख चारो।

इस पर बीरबल ने फिर कहा कि मागु। इसको केशवदास ने यो कहा है :—

इन्द्रजीत तासो कह्यो मांगन मध्य प्रयाग।
माग्यो सब थर एकरस कीजै कृपा सभाग॥
यो ही कह्यौ जु बीरबल मांगु जु मांगन होय।
मांग्यो तव दरबार मे मोहिँ न रोकै कोय॥

अनन्तर केशवदास की प्रर्थना पर महाराजा बीरबल ने अकबर से विनती करके ओडछे पर का जुर्माना माफ करा दिया, किन्तु प्रवीणराय को अकबरी दरबार मे हाजिर होना पडा। उसके स्तनों की ओर लक्षित करके शाह ने कहा :—

उन्नत ह्वै सुर वश किये सम ह्वै नर वश कीन।

प्रवीणराय ने उत्तर दिया,—

अब पताल वलि बस करन पलटि पयानो लीन॥

विनती राय प्रवीन की सुनिये साहि सुजान।

जूठी पतरी भखत है, बारी बायस स्वान॥

इस प्रकार के बचनो से भी प्रेमालाप के कारण शाह ने क्रोध न किया, तथा उसे वापसी की आज्ञा दे दी, जिससे उसका पातिव्रत भी बच गया। इन बातो से भारतीय इतिहास पर हिन्दी साहित्य का प्रभाव देख पडता है, क्योकि केशवदास के साहित्यिक प्रयत्नो से एक करोड का जुर्माना माफ हुआ तथा दिल्ली और ओडछे मे भावी युद्ध बच गया।

विविध कथन।

इसी प्रकार महाराणा प्रतापसिह की अध्यक्षता मे कुम्भलमेर दुर्ग की रक्षा करते हुये मेवाडी राजकवि, सरदार भानु की सहायता करता हुआ अकबरी सेना द्वारा मारा गया। उसी समयवाले मारवाड़ नरेश राजा सूर ने गुजरात की लूट मे से छै कवियो को एक एक लाख रुपये इनाम मे दिये थे, ऐसा टाडकृत राजस्थान मे लिखा है। राजस्थान मे निम्न छन्द भी लिखा है :—

बावन कोट, छपन दरवाजा। मैना मर्द नैन का राजा।

बूडो राज नैन को जब भुस मे भट्टो मागो।

इस राज्य को अम्बर के बहरमल ने छीना था। भुस पर टिकस (कर) लगाकर राजा अपनी प्रजा मे अप्रिय हो चुका था।

सरवर फूटा, जल बहा, अब क्या करैं जतन।

जाता घर जहंगीर का रक्खा राव रतन।

रावरतन बूंदी नरेश थे, जिन्होने शाहजहा के विद्रोह से जहांगीर की रक्षा की। चित्तौर के राणा हम्मीर के हाथ मे सफेद दाग़ पड़

गया था, जिसे हीगलाज के किसी चारण ने अच्छा किया। तब से युवती चारिणियो को इतना अधिकार मिल गया था कि अपने गाव में यदि पकड़ पावैं तो स्वयं राणाजी या अन्य महापुरुष को कैद कर लेवैं और बिना दड लिये न छोडे। ये चारण लोग कवि होते थे। इन्हें कोई चोर भी किसी दशा मे लूट नही सकता था। इसी कारण से समय पर चारण लोग बंजारा हो गये, क्योकि जो माल वे ढोते थे, वह मार्ग मे कही लुट नही सकता था।

जिस्सा जिस्सा जिद्धा भूमी, तिस्सा तिस्सा तिद्धा फरलं। यह 'यस्य यस्य यदा भूमिस्तस्य तस्य तदाफलम्' का राजपूतानी अनुवाद है, और देश मे कवियो का मान प्रकट करता है, क्योकि वे ही बहुधा भूमि पाते थे। जब मानसिह काबुल जानेवाले थे, तब हिन्दू विचारानुसार अटक पार होने मे हिचकिचाते थे। इसपर अकबर ने लिख भेजा कि,—

सबै भूमि गोपाल की यामे अटक कहा।
जाके मन मे अटक है, सोई अटक रहा॥

इस पर महाराजा मानसिह अटक पार होकर अफगानिस्तान पर आक्रमण करने गये। यह कथा भी राजस्थान में लिखित है।

साहजहां तिन गुनिन को, दीने अगनित दान।
तिनमे सुन्दर सुकवि को कियो बहुत सन्मान॥
मनि भूषण हय सब दिये औ हाथी सिरपाव।
प्रथम दियो कविराज पद फेरि महाकविराव॥

ये दोहे शाहजहां द्वारा सुन्दर कवि का मान प्रकट करते है। मोग़लो के यहा अखबारो की भी चाल थी। दूर देशो में वाक़या-निगार रहा करते थे, जो अफ़सरो के अतिरिक्त बाला बाला शाह को हाल लिखते थे। इनके लेखो का अच्छा प्रभाव था। अब तक कहते हैं कि "अख़बार पार्चा मारा।" औरंगज़ेब के समकालीन लालकवि ने भी लिखा है कि बाकनि खबरि लिखी ठिक ठाई।

बादसाह को वाचि सुनाई। वाकयानिगार को आप वाकनि कहते हैं। ये अखबार अफ़सरो मे बॅटते थे, तथा लोगो को भी सुनाये जाते थे,।

अकबर शाह के समय तक हिन्दी गद्य के महात्मा गोरखनाथ, गोस्वामी विट्ठलनाथ, गोस्वामी गोकुलनाथ, गंग भट्ट, जटमल, और धर्मदासमणि लेखक हुये है, तथा दो चार पक्तिया गोस्वामी तुलसी दास की भो मिलती है। धर्मदासमणि ने १५८५ मे उपदेशमाला बालबोध लिखा। जटमल ने १६२३ मे गोरा बादल की कथा बनाई। इनकी भाषा मे खडी बोली का प्राधान्य है। यथा,—

गोरा बादल को कथा गुरु के बस, सरस्वती की महरबानगी से पूरन भई, तिस वास्ते गुरू कूं व सरस्वती कू नमस्कार करता हू।

आचार्यों मे इस काल केवल केशवदास की गणना है। साधारण कवियो मे घासीराम तथा महाराज नरसैयां के नाम आते है। नरसैयां जी पजाबी मिश्रित भाषा मे कविता करते थे। मल्लावा ज़िला हरदोई निवासी घासीराम का समय १६२३ था। आपने पक्षी विलास नामक एक परमोत्कृष्ट ग्रन्थ रचा, जिसमे अन्योक्ति गर्भित श्रेष्ठ कविता है। तुलसीकाल मे १६०८ कवियो के विवरण हमारे मिश्रबन्धु विनोद मे है। इनमे से भक्तो को छोडकर शेष उत्कृष्ट लेखको के सूक्ष्म विवरण ऊपर आचुके है। अब भक्तो का हाल उठाया जाता है।

भक्ति कविता।

तुलसीकाल मे भक्तगण हैं कितने ही, किन्तु उनमे से स्वयं गोस्वामी तुलसीदास् के अतिरिक्त केवल दादूदयाल, तुकाराम, अग्रदास, नाभादास, गंगाधर भट्ट, बनारसीदास जैन और सुन्दरदास की प्राधानता है। दादूदयाल १५४४ मे अहमदाबाद मे उत्पन्न होकर १६०३ में पचत्व को प्राप्त हुए। आपका छन्दोबद्ध जीवनचरित्र जनगोपाल ने लिखा। इस ग्रन्थ की सन् १७७४ की लिखी

हुई प्रति हमने देखी है। उसमे दादू के जन्म के विषय मे लिखा है, कि "धुन्ना के घर भयउ अनन्दू," जिससे इनकी जाति प्रकट होती है। कोई कोई आपको कबीरात्मज कमाल का शिष्य समझते है। दादू सब पर दया करने के कारण दयाल कहलाये और सब को दादा दादा कहने से दादू कहे गये। आपके बनाये सबद, बानी आदि कई ग्रन्थ सबल भाषा मे मिलते है। इनकी भाषा जयपुरी मिश्रित पश्चिमी हिन्दी है, तथा उसमे कुछ पद गुजराती और पजाबी के भी है। आपके पदो मे कही कही खडी बोली की भी क्रियाये आ जाती है। आपने एक पन्थ भो चलाया, जिसे दादू पन्थ कहते है। आप बहुत बड़े उपदेशक ऋषि हो गये है। सुन्दरदास, रज्जबजी, जनगोपाल, जगन्नाथ, मोहनदास, खेमदास आदि आपके शिष्यो मे प्रमुख कवि थे। इन सब मे सुन्दर दास की महत्ता सर्वोत्कृष्ट है। दादू पन्थवाले निर्गुणोपासना की रीति पर निरंजन एव निराकार की भक्ति तथा सत्तराम कहकर आपस मे अभिवादन करते है। ये लोग तिलक, माला, कंठी आदि का व्यवहार नही करते। दादूदयाल ने भी कबीरदासजी की भाँति हिन्दू मुसलमानो के मिलाने का प्रयत्न किया, और जाति पाति को आदर नही दिया। आपको अकबर शाह ने बहुत हठ करके बोलवाया और ४० दिनो तक सत्सग किया। इनसे मिलने के पीछे ही उन्होने दीन इलाही चलाया और कलमा बदल कर सिक्को पर इलाही कल्मा छपवाया, जो यह है, अल्लाहो अकबर ज़िल्ले जलालहू। पन्थ प्रवर्त्तको मे इस काल आप ही हुये। सुन्दरदास प्रसिद्ध दादू पन्थी दूसर बनिया, बाल ब्रह्मचारी थे। आपका जन्म १५६६ मे जैपूर के निकट दौसा मे हुआ था, और १६८६ मे आप स्वर्गवासी हुए। कहते हैं कि सात ही वर्ष की अवस्था मे आप चेले हुए बनारस जाकर आपने सस्कृत का भी अच्छा अध्ययन किया। अपने गुरु दादूदयाल के आप बडे भक्त थे, और कविता मे भी उनका वर्णन

प्रायः किया करते थे। आप दादू पन्थियो मे सर्वोत्कृष्ट और यो भी एक सुकवि थे। आपके कई ग्रन्थो के नाम हमने विनोद मे लिखे है। ये सब भक्ति मार्ग के है। आप बड़े प्रसिद्ध साधु तथा योगी एव फारसी, सस्कृत और हिन्दी के सुबोध पण्डित अथच वेदान्त और योग शास्त्रो के अच्छे विद्वान थे। आपने ज्ञान और नीति के भी दोहे उत्कृष्ट कहे है। इनकी कविता में ब्रजभाषा, खडी बोली और पंजाबी का मिश्रण है। आप समय समय पर नराणे, लाहौर, अमृतसर, शेखावाटो, जयपुर, फतेहपुर सीकरी. आदि मे उपदेश किया करते थे।

बनारसीदासजी हिन्दी के जैन कवियो मे सर्वोत्कृष्ट थे। आपका जन्मकाल १५८६ था। १६४१ पर्यन्त अपना छन्दोबद्ध जीवनचरित्र आपने स्वय लिखा है। इसके आगे आपका हाल अज्ञात है। पहले एक नायिका भेद का ग्रन्थ बनाकर पीछे से ज्ञानी हो जाने पर आपने उसे गोमती नदी मे डुबो दिया। आप जौनपुर के निवासी थे तथा आगरे मे भी रहते थे। आप परम ज्ञानी जौहरी थे। इनके कई ग्रन्थो के नाम हमारे मिश्रबन्धु विनोद मे है। आप एक सुकवि थे और जैनो मे आपका बडा नाम है। गलता जयपुरनिवासी महात्मा अग्रदासजी वल्लभी सम्प्रदायवाले कृष्णदास के शिष्य होकर भी कृष्णभक्ति को छोडकर रामभक्ति पर गये। आपका कविता काल १५७५ था। आप एक सुकवि थे और आपके कई ग्रन्थ मिलते है। इसी समय के गदाधर भट्ट गौडीयसम्प्रदाय के वैष्णव और बहुत अच्छे कवि थे। महात्मा नाभादास अपने ग्रन्थ भक्तमाल के कारण बहुत प्रसिद्ध हैं। इसमे प्रायः २०० भक्तो के वर्णन हैं, किन्तु असम्भवनीयता के आप ऐसे बडे भक्त थे, कि बिना प्राकृतिक नियमो को तोडे आपको किसी की भक्ति ही नही रुचती थी। आपने तथा बनारसी दास जैन ने गद्य काव्य भी लिखा है। आपका रचना

काल १५८५ से १६२३ के बीच मे समझा जाता है। महात्मा तुलसीदास से भी आपकी भेट हुई थी। आप अग्रदास के शिष्य थे। प्रियादास ने भक्त माल की टीका १७१२ मे लिखी। टीका मे अर्थ आदि न देकर प्रियादास ने जीवन चरित्र यथासाध्य बढाकर लिखे है, जिससे उनमे घटनाये अधिक और मनोहर हो गई है।

गोस्वामी तुलसीदास के बराबर प्रभावशाली उपदेशक शंकराचार्य के पीछे भारत मे कोई नही हुआ। मध्य, पश्चिमी और उत्तरी भारत मे आपके रामायण (रामचरित्रमानस) का प्रभाव आज सभी हिन्दू ग्रन्थो से बढकर है। इतने बडे उपदेशक होकर आप उतने ही बडे सुकवि भी थे। हिन्दूधर्म को जैसा तुलसीदास ने बनाया वैसा ही वह आज है। हिन्दू समाज का अन्तिम स्थायी सगठन गोस्वामीजी ने हो किया। आप रामानन्दी सम्प्रदाय मे थे। स्वामी रामानुजाचार्य ने एकेश्वरवाद दृढ करके विष्णु और अवतारो तक को माना किन्तु नारायण की प्रधानता रक्खी। स्वामी रामानन्द ने ईश्वर के चार आदर्शीकरणो मे रामकृष्ण का वर्णन व्यूह के अन्तर्गत माना है। इधर गोस्वामीजी के समय वैष्णवो तथा शैवो मे झगडा कुछ विशेष था, सो आपने उसे मेटने के लिये कह दिया कि शिव विष्णु से बड़े थे, किन्तु राम को परब्रह्म परमेश्वर मानकर "विधि हर विष्णु नचावन हारे" कहा। अतएव आपने राम को अवतार न मानकर कही कही साक्षात् परब्रह्म कहा है, और कही कही उन्ही के अवतार। कही कही राम तथा सीता को विष्णु और लक्ष्मी के भी रूप दिये गये है। कुल मिलाकर आप राम फो परब्रह्म का अवतार मानते है। सगुण वर्णन करने मे ब्रह्म का परब्रह्म विचार तो टिकता नही, और अपरब्रह्म का आ जाता हैं। इसीलिये आप कहते है कि 'चरित राम के सगुन भवानी, तरकि न जाहिँ बुद्धि बल बानी। यह बिचारि जे चतुर बिरागी। रामहिँ भजहिँ तरक सब त्यागी।' तर्कवाद ही को आप ज्ञान भी

कहते है, जिसको, भक्ति के आगे, देखने भरको सदा निन्दा किया करते है, किन्तु सिद्धान्तो के कथन मे अशुद्धता नही आने देते, और उस काल ज्ञान को भी उचित आदर दे देते है। प्रयोजन यह है कि तर्कवाद का समय निकल जा चुका था। वह अपना काम कर चुका था और पौराणिक मत का कोई प्रबल विपक्षी नही रह गया था। इसलिये ज्ञानवाद को छोड़कर गोस्वामीजी ने भक्तिवाद पर पूरा ज़ोर लगाया। सौर काल मे यह बल कार्ष्ण भक्ति पर था किन्तु तुलसीदास मे रामभक्ति पर आया। रामानन्दी वैष्णव होने के कारण साधुओ के सम्बन्ध मे जातिभेद आप नही मानते थे, किन्तु लोकयात्रा के सम्बन्ध मे चातुर्वण्य नियमो पर आपने बड़ा ज़ोर लगाया। ब्राह्मणो के अधिकारो का इनके द्वारा पूर्ण से कुछ अधिक समादर हुआ। क्षत्रियो, वैश्यो तथा शूद्रो के अधिकारो पर भी आपने उचित ध्यान दिया। राजा के लिये छल बल तक का प्रयोग अनुचित न मानते हुये आपने राजा को ईशअंशभव कहा तथा राजन्य वर्ग का वर्णन बड़े पूज्य प्रकार से किया। दशरथ, जनक तथा अन्यान्य राजाओ के प्रबन्ध उचित मान के साथ लाये गये है। गोस्वामीजी के द्वारा विशिष्ट स्त्रियो के कथन तो भक्तिपूर्ण तक आये है, किन्तु स्त्री जाति का आपके द्वारा उचित समादर न हुआ। इस विषय मे तत्कालीन सामाजिक विचार भी बहुत कुछ उत्तरदायी है, किन्तु इससे गोस्वामी जी तथा कबीर साहब के उत्तरदायित्व मे कमी नही आती। तृमूर्त्ति के वर्णन गोस्वामी जी ने श्रद्धापूर्ण किये है, किन्तु उनके कारण अपने एकेश्वरवाद मे थोड़ी भी क्षति नही आने दी है। वैदिक देवताओ का पद आपके यहा बहुत नीचा है, यहा तक कि ऋषियो आदि के सामने वे किसी गिनती में नही हैं। वेदो की दोहाई तो आप सभी कही देते है, किन्तु भक्ति से इतर वैदिक धर्म का समादर आपके यहा नही है, क्योकि आपका धर्म वैदिक न होकर पौराणिक है। शायद वेदो का अध्ययन

आपका यथावत् न हो। गोस्वामीजी के प्रभाव से समाज सगठन बहुत अच्छा हुआ। यद्यपि वर्तमान दशा को देखते हुये हम हिन्दू समाज मे गोस्वामीजी द्वारा प्रतिपादित एव संरक्षित सामाजिक नियमो मे बहुत से भारी परिवर्तन आवश्यक पाते है, यहाँ तक कि डाक्टर भाडारकर ने उचित कहा है कि जाति सबसे बडा राक्षस है, जिसका हमे हनन करना है, तथापि यह स्मरण रखना चाहिये कि गोस्वामीजी के उपदेश पन्द्रहवी सोलहवी शताब्दीवाले हिन्दू समाज के लिये थे, न कि बोसवी के लिये। जिस दशा मे हम अपने को आज पाते है, उसमे समाज के लिये जो बाते आवश्यक है, वे आजके सुधारक बतलावेगे। गोस्वामी जी सुधारक थोड़े थे और सगठन कर्त्ता विशेष। उस काल हिन्दू समाज को मुसलमानी दबाव से आत्मरक्षा प्रधान थी, और आज जातियो मे होड थोडी है, किन्तु देशो मे अधिक। उसकाल हिन्दूपन की प्रधानता थी, अथच आज भारतीयता की मुख्यता है। इन कारणो से यदि गोस्वामीजी के कुछ उपदेश आज समयानुकूल नही हैं, तो यह न समझा जाना चाहिये कि वे समय की धारा को परख नही सकते थे। उन्होने तो अपने समय का समाज ऐसी उत्तमता से सगठित किया कि दो ही शताब्दियो के भीतर हिन्दू साम्राज्य भारत मे स्थापित हो गया। यह उन्नीसवी शताब्दीवालो का बोदापन था जो उसे चिरस्थायी न बना सका। गोस्वामीजी ने साहित्य भी ऐसा बढिया रचा जिसका सामना हिन्दी का कोई कवि तो कर ही नही सकता, वरन् यह भी कहना कठिन है कि किसी भाषा का कोई कवि इनसे आगे निकल गया है। उस काल तक हमारे यहा कविता की कई प्रणालिया चल रही थी। अवधी भाषा मे दोहा चोपाइयो मे कथा सूफी कविगण कहते थे। उनकी भाषा ग्राम्य भाषा से बहुत कुछ मिलती थी। उसके उदाहरण ऊपर आ चुके हैं। गोस्वामीजी ने रामायण दोहा

चौपाइयो मे कहते हुये स्थान स्थान पर अन्यान्य छन्द भी लिख कर कुछ विशेषता कर दी। भाषा मे उचित संस्कृत शब्दो का प्रयोग लाकर आपने उसे बहुत ही उन्नत किया, यहा तक कि जायसी आदि की भाषाओ से इनकी भाषा मे पृथ्वी आकाश का अन्तर है। सौर काल मे कृष्ण चरित्र मुक्तको मे कहे गये। इधर गोस्वामीजी ने रामकथा बहुत ही सागोपाग एव सजीव कही। रामायण हिन्दी के सब ग्रन्थो से बहुत श्रेष्ठतर है। वेदो के ढग पर विनय पत्रिका मे आपने अच्छी विनतिया कही। उस काल के कुछ लोग घनाक्षरी तथा सवैयो मे रचनाये करते थे। गोस्वामीजी पहले सुकवि है, जिन्होने इन्ही छन्दो मे एक रामायण ही कह डाली जो परमोत्कृष्ट भी है। नाभादास ने छप्पय छन्दो में भक्त-माल कहा। गोस्वामीजी ने इसी छन्द मे हनुमान बाहुक रच डाला, जो रामायण के पीछे आपका सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ है। जो प्राबल्य इस छोटे से ग्रन्थ मे गोस्वामीजी ने रक्खा है, वह अन्यत्र कठिनता से मिलेगा। कबीरदास ने दोहा छन्दो मे कुछ उपदेश दिये थे तथा खानखाना ने एक दोहा सतसई कही थी। हमारे गोस्वामीजी ने भी दोहा सप्तसती मे अनमोल उपदेश दिये है। गीतावली रामायण तथा कृष्ण गीतावली मे आपने पद निर्मायको की रीति पर कविता रची। आपके और भी अनेकानेक ग्रन्थ है। कहा तक कहा जावै, इस एक कविरत्न ने प्राय सभी कुछ कह डाला है। गोस्वामीजी के उदाहरण देना अनावश्यक है, क्योकि सभी लोग इनका साहित्य अध्ययन करते है। फिर भी वर्णन पूर्णता के विचार से एक छोटा सा उदाहरण भी दिया जाता है। आपने रामायण के पात्रो में प्राय: सभी उच्चभाव सागोपाग दिखला दिये हैं। इन्ही वर्णनो मे हिन्दू समाज के ध्येय एव हमारे आदर्शों की महत्ता सैकड़ो प्रकार से आई है। आपकी रचना मे हमारे समाज का परमोच्च चित्र सामने आता है, तथा सदा ही निभने

वाला औचित्य मूर्तिमान होकर उपस्थित रहता है। आपके गुणो का कुछ सविस्तर वर्णन हमने हिन्दी नवरत्न मे किया है। यहां उसका दोहराना अनावश्यक है। इनके साहित्य की गरिमा पाठको पर भारी प्रभाव डालती है, जिससे अनमोल उपदेश भली भांति समाज का संशोधन एवं सगठन कर सके है।

उदाहरण।

मैं पुनि पुत्र बधू प्रिय पाई। रूप रासि गुन सील सोहाई।
नैन पुतरि करि प्रीति बढाई। राखउँ प्रान जानकिहि लाई।
कलप बेलि जिमि बहु बिधि लाली। सींचि सनेह सलिल प्रतिपाली।
जिवन मूरि जिमि जुगवत रहिऊ। दीप बाति नहिँ टारन कहिऊं।
सो सिय चलन चहति बन साथा। आयसु कहा होत रघुनाथा।
चन्द्रकिरन रस रसिक चकोरी। रबि रुख नैन सकइ किमि जोरी।
मानस सलिल सुधा प्रतिपाली। जियइ कि लवन पयोधि मराली।
नव रसाल बन बिहरन सीला। सोह कि कोकिल बिपिन करीला।

जे पुर ग्राम बसहिँ मग माही। तिनहिँ नाग सुर नगर सिहाही।
केहि सुकृती केहि घरी बसाये। धन्य पुन्यमय परम सोहाये।
जहँ जहँ रामचरन चलि जाही। तहँ समान अमरावति नाहीं।
परसि राम पद पदुम परागा। मानति भूरि भूमि निज भागा।

जिस काल उत्तरी भारत मे महात्मा तुलसीदास अपने अमृतमय उपदेशो से वैष्णवता पूर्ण भक्ति समुद्र की धारा लहरा रहे थे, उसी समय दक्षिण मे शूद्र महात्मा तुकारामजी वैसे ही उपदेश मराठी मे दे रहे थे, तथा कुछ हिन्दी में भी रचना करते थे। आपके विषय में इतना ही कहना बस है कि बहुतेरे महाराष्ट्र लेखक आपको गोस्वामीजी का समकक्ष कवि और उपदेशक मानते है। महाराष्ट्र देश पर तुकारामजी तथा रामदासजी के प्रभाव पड़े भी बहुत अच्छे हैं। महात्मा रामदास का वर्णन आगे आवैगा।

साहित्यिक विकास।

हम हिन्दी की उन्नति आदिम काल से प्रौढ माध्यमिक समय तक देख आये है। आदिम काल मे महाकवि केवल चन्द बरदाई मिलते है, जिनकी पूरी रचना उस काल की नही है, वरन् उसका बृहदंश इसी तुलसीकाल का समझा जाता है। जिस महाकवि ने चन्द के ग्रन्थ को इतना उच्च आसन दिया, वह ऐसा उदारचेता था कि स्वय अज्ञात ही रहकर उसने रासो एवं चन्द का उपकार किया। जो हो, आदिम काल मे पृथ्वीराज रासो ही हमे एक ऐसा ग्रन्थ मिलता है जो मुक्त कंठ से प्रशसनीय है। फिर भी भाषा की प्राचीनता एव भक्ति भावो से प्राय. असम्बद्ध होने के कारण उसका प्रचार संसार मे यथा योग्य क्या प्राय. कुछ भी न हुआ। पूर्व माध्यमिक काल मे साहित्य की दृष्टि से हमे विद्यापति ठाकुर और कबीरदास परमोत्कृष्ट कवि मिलते हैं। विद्यापति का प्रचार बंगाल और बिहार मे बहुत कुछ है, किन्तु इतर देशो मे उनका यथावत मान नही है। कबीरदास के उपदेशप्रद दोहे आदि ससार मे चल रहे हैं, किन्तु उनकी भक्ति बहुत ऊंची होने से लोगो में अग्राह्य हुई, तथा उल्टवांसी आदि मे मूर्ख-मोहिनी विद्या मात्र रहने से उनका पन्थ समाज के उच्च भागो मे आदर न पा सका। प्रारम्भिक काल मे दाक्षिणात्य उपदेशक अच्छे हुये और पूर्व माध्यमिक मे युक्त-प्रान्तीय तथा पञ्जाबी। प्रौढ़ माध्यमिक के सौरकाल मे राधा-कृष्ण की बाममार्ग पूर्ण भक्ति का चलन रहा, तथा तुलसीकाल ने दक्षिण मार्गस्थ शुद्ध सीताराम की भक्ति का रूप दिखाया। तुलसीकाल मे विविध विषयो का अच्छा विकास हुआ और भक्ति तथा साहित्य दोनो का बहुत अच्छा चमत्कार सामने आया, किन्तु सूफ़ी साहित्य दब गया। नवीन प्रणालिया तुलसी तथा केशव के सहारे स्थापित हुईं, विविध छन्दो का प्रयोग हुआ, कथा काव्य ने मान पाया,

अवधी भाषा का माहात्म्य बढ़ा, भजनानन्द शुद्धतर रूप मे सामने आया, हिन्दू मुसलमानो के मेल से हमारे साहित्य मे मुसलमानी भाव आने लगे, तथा मोग़ल दरबार की विलासिता का भी प्रभाव उसपर पड़ने लगा। उर्दू की उन्नति हुई, यद्यपि अबतक वह हिन्दी से पृथक् न थी। शौर्य पूर्ण साहित्य का निर्माण गंग आदि ने किया, किन्तु आधिक्य से नही, और जातीयता पूर्ण साहित्य का अंकुर खानखाना तथा पृथ्वीराज की रचनाओ मे देख पड़ा, यद्यपि उसकी यथावत वृद्धि न हुई। वैष्णव सम्प्रदायो से जो शृङ्गार काव्य की भारी वृद्धि सौर काल मे हुई थी, वह तुलसीकाल मे मन्द पडी। यद्यपि मोग़ल दरबार का प्रभाव शृङ्गार काव्य के बढ़ाने की ओर था, तथापि तुलसीकाल के भक्तो का प्रभाव इसके प्रतिकूल पड़कर उस काल कुछ सफल हुआ। रीति काव्य का बीज देख पड़ा, तथा व्रजभाषा एव अवधी मे विशेषतया रचना हुई।

अलंकृत काल (१६२३-१८३३)

हमारे साहित्य मे अलकृत काल १६२३ से १८३३ तक चलता है। इसके तीन भाग किये जा सकते हैं, अर्थात् १६६८ तक मोग़ल प्रभाव विस्तार, १८१८ तक हिन्दू पुनरुत्थान तथा १८३३ तक बृटिश साम्राज्य स्थापन। अब इनके वर्णन पृथक् पृथक् किये जावेंगे।

मोग़ल प्रभाव विस्तार (१६२३-१६६८)

प्रौढ़ माध्यमिक समय मे हमारी हिन्दी भली भांति परिपक्व हो चुकी थी, और हम उस काल मे तीन महाकवियो का प्रादुर्भाव देख चुके हैं, तथा मोग़लों द्वारा हिन्दी के मान से बड़े आदमियो मे भी उसका प्रचार देख आये हैं। पूर्वालंकृत काल मे हमारे कवियो ने अपनी भाषा को अलंकृत करने मे अच्छी रुचि दिखलाई। मोग़ल

प्रभाव विस्तारवाले समय मे मिश्रबन्धु विनोद् १८५ कवियो का कथन करता है। इनमे से प्रमुख कवि यहां पर लिखे जावेगे। इस काल के भक्त कवियो में से सेनापति, ध्रुवदास, व्यासजी, गुरु रामदास तथा प्राणनाथ के नाम गिनाये जा सकते हैं, और महाकवियो मे सेनापति, बिहारीलाल, अथच मतिराम के। कवीन्द्राचार्य, सुन्दरदास, पुहकर, चिन्तामणि, बनवारी और हरिनाथ मोग़ल दरबार से सम्बद्ध थे, तथा चिन्तामणि और तोष आचार्यों मे कहे जा सकते है। मुसलमान सुकवियो में अकेले ताज का नाम आता है, तथा इतर कवियो मे मलूकदास, जायसी, बेनी, नीलकंठ, नरहरिदास, भरमी, जयराम, भीष्म, मण्डन और सबलसिंह के नाम आते हैं। महाराजाओ आदि मे जसवन्त सिंह, परशुराम, जगत सिह, शिवाजी, शम्भुनाथ, रावरतन और अमर सिंह के नाम है।

सेनापति अनूपशहर ज़िला बुलन्दशहर के रहनेवाले सन् १६४९ मे रचना करते थे। आप बहुत बड़े भक्त एवं महाकवि थे। आपकी रचना अलंकार गर्भित और दो अर्थयुक्त न केवल है वरन् जानबूझकर ऐसी बनाई गई थी। अतएव इनकी रचना से कलाकाल का प्रादुर्भाव हमारी कविता मे होता है। आप अपनी रचना मे अलंकारो की संख्या पर गर्व करते हैं, और दो अर्थों पर भी। यथा :—

"संख्या करि लीजै अलंकार है अधिक या मैं
राखौ उर ऊपर सरस ऐसे साज को।"
"सेवक सियापति को सेनापति कवि सोई
जाकी द्वै अरथ कविताई निरबाह की।"
"सेनापति बरनी है बरषा सरद ऋतु
मूढन को अगम सुगम परबीन को।"

इसी प्रकार अन्य काव्यागो का भी विवरण इन्होने किया है। आपके भक्ति भाव पूर्ण कथन खासे चमत्कृत है।

सेनापति निरधार पाँयपोस बरदार हौ तो
राजा रामचन्द्र जू के दरबार को।
के तो करो कोय पैयै करम लिखोय
ताते दूसरी न होय मन सोय ठहराइये।
आधी ते सरस बीति गई है बरस,
अब दुज्जन दरस बीच रस न बढ़ाइये।
चिन्ता अनुचित धरु धीरज उचित
सेनापति ह्वै सुचित रघुपति गुन गाइये।
चारि बरदानि तजि पाय कमलेच्छन के
पायक मलेच्छन के काहे को कहाइये।
आवै मन ऐसी घरबार परिवार तजौं
डारौ लोक लाज के समाज बिसराय के।
हरिजन पुंजन मे वृन्दावन कुंजन मे
बैठि रहौ कहू तरवर तर जायके।
धातु सिलादारु निरधारु प्रतिमा को सारु
सो न करतारु है विचारु बैठि गेह रे।
करु न सँदेह रे, कहे मे चित देहरे,
कही है बीच देहरे, कहा है बीच देहरे।
तोरि मरौ पाँव करौ कोरिक उपाव
सब होत है अपाव भाव चित्त को फलत है।
हिये न भगति, जाते होय नभ गति,
जब तीरथ चलत, मन ती रथ चलत है।

महाकवि सेनापति की रचना इसी प्रकार भावपूर्ण तथा उपदेश उच्च है। इतने बड़े भक्त होकर आपने शृङ्गार काव्य भी बहुतायत से किया है। इस बात से तत्कालीन संसार के चलन का प्रभाव देख पड़ता है।

महात्मा ध्रुवदास हित वल्लभीय सम्प्रदाय के वैष्णव थे। आपके ग्रन्थ १६२४ से १६४१ तक के मिले है। आपके अनेकानेक ग्रन्थ

प्राप्त हुए हैं, जिनकी कविता साधारणतया अच्छी है। व्यासजी उपनाम हरिव्यासजी मथुरा वाले (१६२८) निम्बार्क सम्प्रदाय के, वैष्णव हरिव्यासी मत के चलानेवाले थे। स्वामी रामदास महाराष्ट्र देश के महात्मा छत्रपति शिवाजी के गुरु थे। आप हिन्दी में भी कविता करते थे। इनका वर्णन मिश्रबन्धु विनोद में है। वहां शिवाजी के कथन मे सोलह सत्रह और हिन्दी कवियो के नाम लिखे है, जो उसकाल महाराष्ट्र देश मे रचना करते थे। रामदास जी का प्रभाव देश पर बहुत अच्छा था। पन्ना के प्रसिद्ध धर्म प्रचारक प्राणनाथ का समय १६५० मे था। पन्ना के सुप्रसिद्ध महाराजा छत्रशाल आपके शिष्य थे। आपने बुन्देलखण्ड में धामी मत चलाया। धामियो की एक गद्दी मऊ महेवा में अब भी है। इन लोगो ने हिन्दू मुसलमान मतो मे मेल चाहा था। प्राणनाथ का पन्ना पर उस काल अच्छा प्रभाव था। आपने कई ग्रन्थ ज़ोरदार भाषा मे लिखे हैं। इनकी धर्मपत्नी इन्द्रावती बाई भी कविता करती थी। इनके पहिले प्रवीणराय तथा दो महाराष्ट्र वनिताये भी साहित्य रचना मे प्रवृत्त हुईं थी। इस काल के महाकवियो मे उपरोक्त सेनापति के अतिरिक्त हमने बिहारीलाल और मतिराम के नाम लिखे है। बिहारीलाल माथुर चौबे ने १६६२ मे सतसई नाम्नी परमोत्कृष्ट पुस्तक रची। यद्यपि तुलसीदास के पीछे बिहारीलाल हमारे सर्वोत्कृष्ट कवि नही है, तथापि रामायणके पीछे बिहारी सतसई हमारा सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ है। अपने कवियो की उत्तमता मे हम तुलसीदास, सूरदास, देवदत्त, बिहारीलाल, भूषण, केशवदास और मतिराम को एक दूसरे के पोछे सर्वोत्तम समझते हैं। बिहारीलाल की भाषा तथा साहित्य दोनो बहुत चटकीले मटकीले हैं। आपने शब्द कुछ अधिकता से मरोड़े हैं, किन्तु जबतक भाषा सौन्दर्य न बिगडे तबतक हम रचयिताओ की स्वच्छन्दता भी प्रतिपाद्य समझते हैं। बिहारी की भाषा कुल मिलाकर प्रशंसनीय है ही। इनकी

रचना मे अनुप्रास, संक्षिप्त, ओज़, भाव-सबलता, प्रकृति निरीक्षण, और बहुज्ञता के गुण अच्छे मिलते हैं। ये सरसता और कोमलता भी अच्छी लाये हैं। अपनी चमकती हुई रचना मे काव्यांग भी आपने अच्छे अच्छे रक्खे है। आप हमारे बहुत श्रेष्ठ शृङ्गारी कवि हैं। मिर्ज़ा राजा जयसिंह आपके आश्रयदाता थे। कहते है कि सतसई के प्रति दोहे पर उन्होने आपको एक अशरफी इनाम दी थी। यह भारी पारितोषिक इनकी रचना के लिये थोड़ा ही समझ पड़ता है। जयसिंह की प्रशंसा मे आपने निम्न छन्द भी लिखे है :—

प्रतिबिम्बित जयसाहि दुति दीपति दरपन धाम।
सब जग जीतन को कियो काय व्यूह मनु काम॥
यो दल काढ़े बलख ते तै जयसाहि भुवाल।
बदन अघासुर ते कढ़े ज्यो हरि गाय गुवाल॥
घर घर हिन्दुनि तुरुकिनी देहिँ असीस सराहि।
पतिन राखि चादरि चुरी पति राखी जयसाहि॥

इसी प्रकार के कुछ और भी छन्द हैं, किन्तु जयसिंह ने शिवाजी पर जो विजय पाई थी उसका आपने कथन नही किया। या तो आप उस काल तक जीवित ही न हो या इस बात से आपकी प्रच्छन्न जातीयता प्रकट होगी।

मतिराम भी हमारे हिन्दी नवरत्न के एक प्रशंसित कवि हैं। इनके पीछे नवरत्न में कबीरदास, चन्द बरदाई और भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के नम्बर आते है। मतिराम चिन्तामणि और भूषण के भाई थे। आपने कई ग्रन्थ बनाये, जिनमे रसराज, ललित ललाम, और सतसई की प्रधानता है। रसराज में भावभेद तथा रस भेद के बहुत उत्कृष्ट रीति से वर्णन है। ललित ललाम मे अलंकारो का लक्षणो, उदाहरणों सहित बहुत साफ़ कथन है। इसमें बूंदी नरेश राव भाऊसिंह की भी अच्छी प्रशंसा है, विशेषतया उनके हाथियों की। मतिराम मुख्यतया शृङ्गारी कवि है, किन्तु वीर

काव्य भी आपने सबल किया है। मतिराम की भाषा बहुत ही बढ़िया है। देव कवि के अतिरिक्त कोई भी हिन्दी कवि इनके समान माधुर्य एवं प्रसाद गुण सम्पन्न भाषा नही लिख सका है। भाव सबलता भी आपकी प्रसादपूर्ण रचना का मुख्यांग है। जिस भाव को उठा लेते हैं, उसे खूब पुष्ट करना आप जानते हैं। मतिराम ने जातीयता गर्भित भी कविता की है। ऐसी रचना विशेषतया ललित ललाम मे है, जिसका समय १६५६ से १६८३ तक कभी हो सकता है, क्योकि यही भाऊसिह का राजत्वकाल है। समझ पड़ता है कि ग्रन्थ १६६८ के पीछे का है। आपने दिल्ली के पक्षी भाऊसिह के राजकवि होकर भी शिवा की महत्ता कहकर अपनी जातीयता दिखलाई है। आप आगेआने वाले समय में बहुत दिन तक रहे है। यहां इसीलिये कथन हुआ है कि आपका साहित्यारम्भ काल यही है। रसराज के कारण आप हिन्दी के बड़े आचार्यों मे माने जाते हैं।

उदाहरण

सूबनि उमेड़ि दिली दल दलिबे को चमू
सुभट समूहनि सिवा की उमहति है।
कहै मतिराम ताहि रोकिबे को संगर मैं
काहू के न हिम्मति हिये मैं उलहति है॥
शत्रुशालनन्द के प्रताप की लपट सब
गरबी गनीम बरगीन को दहति है।
पति पातसाह की, इजति उमरावन की,
राखी रैया राव भावसिह की रहति है॥

बेलिन सो लपटाय रही हैं तमालनकी अवली अतिकारी।
कोकिल कूक कपोतन के कुल केलि करें अति आनंद वारी॥
सोच करै जनि, होहि सुखी, मतिराम प्रबीन सबै नरनारी।
मंजुल बंजुल कुंजन के घन पुंज सखी ससुरारि तिहारी॥

इस काल के महाराजा कवियो मे मारवाड नरेश महाराजा यशवन्तसिह का नाम पहले आता है। आप चित्त से शाहजहां तथा दारा के सहायक थे, किन्तु मिर्जा राजा जयसिंह की युक्तियो से आप लड़ मरने भी न पाये और अपनी इच्छा के प्रतिकूल औरंगजेब के समर्थक बने। तो भी इन्होने कई बार उसे बड़े धोखे दिये जिससे उबरना उसी को भारी योग्यता का काम था। अपने कौशल के कारण औरंगजेब इन्हे सदैव टालता रहा, और ऐसे ओहदो पर रखता रहा जिन पर रियासत की हानि न होने पावे। इनके शरीरान्त के पीछे बादशाह ने राठूरो तथा इनके दुधमुँहे पुत्र अजीत-सिंह पर क्रोध किया, जिसका वर्णन यथास्थान आवैगा। यशवन्त-सिह उज्जैन, खजुहा, सिंहगढ आदि की लड़ाइयो मे प्रस्तुत थे, तथा अफ़गानिस्तान की मुहीम पर आपका रोग से शरीरान्त हुआ। आप बड़े बहादुर तथा सुकवि थे। आपका भाषा भूषण ग्रन्थ आज भी जिज्ञासुओ को अलकार शिक्षा देने मे काम आता है। यह हिन्दी के प्रचलित एवं उत्कृष्ट ग्रन्थो मे एक है।

महाराजा परशुराम (रचनाकाल १६३०) हरिव्यास देव के शिष्य निम्बार्क सम्प्रदाय के वैष्णव थे। आपके ५ ग्रन्थ मिले है। जगत-सिह (रचना काल १६३०-१६५६) मेवाड़ के महाराणा तथा कविता प्रेमी थे। दक्षिण नरेश छत्रपति शिवाजी कवियो के कल्पतरु होने के अतिरिक्त कुछ कविता भी कर लेते थे।

उदाहरण।

मैं सेवक बहु सेवा मांगूं इतना है सब काज।
छत्रपती तुम सेकदार सिव इतना मेरा अर्ज॥

शम्भुनाथ सुलंकी (उपनाम शम्भु कवि, नाथ कवि, नृप शम्भु) सितारेगढ़ के राजा तथा परमोत्कृष्ट कवि थे। इनका समय १६५० के लगभग था। इनका सा चटकीला नखशिख हमने किसी दूसरे

का नही देखा। आपने भाषा और भाव दोनो का अच्छा चमत्कार दिखलाया है।

उदाहरण।

फाग रच्यो नँद नन्द प्रबीन, बजैं बहु बीन मृदङ्ग रुबाबैं।
खेलती वै सुकुमारि तिया जिन भूषण हू की सही नहिं दाबैं।
सेत अबीर के धूँधुर मैं इमि बालन की बिकसैं मुख आबै।
चांदनी मे चहुँ ओर मनो नृप शम्भु बिराजि रही महताबैं।

रावरतन राठूर रतलाम के राजा उदयसिह राठूर के पौत्र तथा कवि थे। आपके नाम पर किसी कवि ने १६५० मे रायसा रावरतन बनाया। अमरसिंह राठूर (काल १६५३) मारवाड़ नरेश महाराजा गजसिह के बड़े पुत्र थे। अपने उद्धत स्वभाव के कारण अमरसिह युवराज पद से हटाये जाकर दिल्ली मे नौकर हुये, जहां आपने अच्छी बहादुरी दिखलाई, किन्तु बिना आज्ञा शिकार खेलने चले जाने पर सलाबत ख़ा ने शाहजहा से आपकी शिकायत की। इस अवसर पर आपके ऐसे आचरण हुये कि सलाबत ख़ां ने मूर्खता वश आपको गँवार कह दिया। इस बात से जामे बाहर हो आपने जमधर निकाल कर दरबार मे ही उस का बध कर डाला। यह देखकर शाहजहा दरबार से भगे खड़े हुये और अमरसिह कई औरो को मार कर वही अपने साले द्वारा मारे गये। इस घटना का वर्णन आपके राजकवि बनवारी ने निम्नानुसार किया है :—

उत गकार मुख ते कढ़ी, इत निकसो जमधार।
वार कहन पायो नही, कीन्हो जमधर पार॥

जोरकै सलाबत खां, तोर कै जनाई बात,
तोरि धर पंजर करेजे जाय करकी।
दिलीपति साहि को चलन चलिबे को भयो,
गाज्यो गजसिह को सुनी जो बात बरकी।

कहै बनवारी पातसाह के तखत पास,

फरकि फरकि लुत्थि लुत्थिन सा अरकी।

बाढि की बड़ाई कै बड़ाई बाहिबे की करौ,

करकी बड़ाई कै बड़ाई जमधर की।

धन्य अमर छिति छत्रपति अमर तिहारो मान।

साहि जहां की गोद मैं हन्यो सलाबत खान॥

बनवारी ने श्रृङ्गारात्मक रचना भी अच्छी की हैं। अमरसिह स्वयं भी कवि थे। मुसलमान कवियो मे इस काल केवल ताज का नाम आता है, जो पजाबी भाषा मिश्रित कृष्ण भक्ति की कविता करती थी। इनका समय १६४३ समझा गया है। आप मुसलमान होकर भी चित्त से हिन्दू थी।

उदाहरण।

सुनो दिलजानी मेरे दिल की कहानी तुम

दस्त ही बिकानी, बदनामी भी सहूगी मैं।

देव पूजा ठानी, औ नेवाज हू भुलानी,

तजे कलमा कुरान साड़े गुनन गहूगी मैं।

स्यामला सलोना, सिरताज सिरकुल्ले दिये,

तेरे नेह दाघ मे निदाघ हो दहूगी मैं।

नन्द के कुमार कुरबान तांड़ी सूरत पै,

तांड़ नाल प्यारे हिन्दुवानी हो रहूगी मैं।

इस काल के आचार्यो मे चिन्तामणि बहुत प्रसिद्ध और प्रशंसनीय है। आप छत्रपति शिवाजी के पितामह के भी राजकवि थे। आपका मान बाबू रुद्र साहि सोलंकी, शाहजहां बादशाह और जैनदी अहमद के भो यहा था। आप शुद्ध व्रजभाषा के कवि थे, किन्तु कही कही प्राचीन ढंग की प्राकृतरूप मिश्रित भाषा भी लिखते थे। आपकी भाषा सानुप्रास और मधुर है। आपने बहुत से विषयों पर सफल रचना की है, और दशांग कविता के पहले आचार्य आप ही

हैं। तोष १६४४ के कवि हैं। आपका ग्रन्थ सुधानिधि आचार्यता पूर्ण है, जिससे कई काव्यांगो पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। भाषा आपकी सरल एवं सानुप्रास है।

मोगल दरबार से सम्बद्ध कवियो मे कवीन्द्राचार्य शाहजहा के कृपापात्र थे। १६३० मे आपने समरसार ग्रन्थ रचा। आपकी सानुप्रास रचना मे ब्रज तथा अवधी भाषाओ का मिश्रण है। सुन्दर ब्राह्मण गवालियरवाले भी शाहजहां के दरबार मे थे। शाह ने इन्हे कविराय और फिर महाकविराय की उपाधि दी। १६३१ में आपने सुन्दर शृङ्गार नामक नायिका भेद का ग्रन्थ रचा, जिसमे ये बाते लिखी है। इनकी रचना मनोहर तथा यमक युक्त है। पुहकर कवि जहांगीर के समय मे कैद हो गये थे। जेल मे ही आपने रस रतन ग्रन्थ रचा, जिसपर प्रसन्न होकर जहागीर ने आपको मुक्त कर दिया। ग्रन्थ १६१६ का है। हरिनाथ महापात्र (१६३३) शाहजहा के कृपापात्र थे। आप नरहरि के पुत्र थे। इनके विषय मे कहा गया है कि :—

दान पाय दोई बढ़े की हरि की हरिनाथ।
उन बढ़ि नीचे कर किये इन बढ़ि ऊचे हाथ॥

अन्य कवियो में मलूकदास कड़ा मानिक पूर निवासी सुकवि थे। जोंयसी का एक ही छन्द मिलता है, किन्तु है बहुत उत्कृष्ट। बेनी असनी के बन्दीजन (१६३३) गोस्वामी तुलसीदास के बड़े भक्त थे। इनके मुक्तको मे यमक तथा उपमा का विशेष समावेश है। इसी नाम के भट्टाचार्य इनसे इतर कवि है। नीलकंठ ने १६४१ मे अमरेश विलास ग्रन्थ रचा। आप सुकवि हैं और भूषण के भाई कहे जाते है। बारहट नरहरि दास टेलाग्राम जोधपुर निवासी सुकवि थे। आपका समय १६५० के इधर उधर है। दशमस्कन्ध भाषा, रामचरित्र कथा, अहिल्यापूर्ण प्रसंग, अवतार चरित्र, बानी और नरसिंह अवतार कथा नामक आपके सब ग्रन्थ अच्छे कथा प्रसंगपूर्ण

है। आपका परिश्रम प्रशंसनीय है। भरमी भी इसी काल के सुकवि एवं उपदेशक थे।

उदाहरण।

जिन मुच्छन धरि हाथ कछू जग सुजस न लीनो।
जिन मुच्छन धरि हाथ कछू परकाज न कीनो।
जिन मुच्छन धरि हाथ दीन लखि दया न आनी।
जिन मुच्छन धरि हाथ कबौ पर पीर न जानी।
अब मुच्छ नही वह पुच्छ सम कवि भरमी उर आनिये।
चित दया दान सनमान बिन मुच्छ न तेहि मुख जानिये॥

जयराम कवि शिवाजी के पिता शाहजी के आश्रित थे। आपका रचनाकाल १६५३ है। राधा माधव विलास चम्पू मे आपने हिन्दी रचना भी की है। उसमे शाहजी के आश्रित ४० और हिन्दी कवियो के नाम हैं। उन सब के नाम विनोद मे है। भीष्म कवि भी इसी समय के है। आपने पूरी भागवत का अच्छे छन्दो मे अनुवाद किया है। रचना भी उत्कृष्ट हैं। सबलसिंह चौहान ने १६६१ से १७२४ तक सब आठ सै पृष्ठो मे महाभारत भाषा दोहा चौपाइयो मे रची। भीष्म और सबलसिंह का हिन्दी भाषियो पर बडा ऋण है, क्योकि इन दोनो ने अच्छे प्राचीन ग्रन्थ हिन्दी मे उपस्थित किये। फिर भी किन्ही कारणो से इनके ग्रन्थ संसार मे चले नही। मडन भी इस काल के एक सुकवि है। इस समय के और भी अच्छे अच्छे कवि हैं, जिनके विवरण विनोद मे प्रस्तुत है।

मोगल प्रभाव विस्तार काल में भाषा ने अच्छी उन्नति की और अलंकृत होकर सौन्दर्य मे वह प्रौढ माध्यमिक समय की भाषा से बहुत आगे निकल गई। कथा प्रसंग और आचार्यता के भी अच्छे ग्रन्थ बने। भक्त कवियो का इस काल प्राधान्य नही रहा। सेनापति ने पहले पहल प्रतिमा की निन्दा की। किया ऐसा कबीर साहब ने भी था, किन्तु फिर भी वे मुसलमान थे, तथा ये ब्राह्मण

और पूरे भक्त होकर साफ़ साफ़ प्रतिमा के प्रतिकूल हुये। प्राणनाथ की अधिक लोकप्रियता न थी। सेनापति सुकवि तो थे किन्तु भक्ति पक्ष मे सबल होकर भी अधिक लोकमान्य न हुये। महाराष्ट्र देश मे समर्थ रामदास का पूरा मान था, किन्तु हमारी ओर वह नही के बराबर था। इस काल भो तुलसी का प्रभाव काम कर ही रहा था। महाराष्ट्र देश मे एकनाथ, तुकाराम, तथा समर्थ रामदास एक दूसरे के पीछे बहुत मान्य हुये, जिनके द्वारा लोक हित भी बहुत अच्छा हुआ। इसका कुछ विशेष कथन आगे आवेगा। मोग़ल दरबार मे हिन्दी का मान रहा, तथा उर्दू की भी विशेष उन्नति हुई। साधारण कवि बहुत हुये, तथा कथा प्रसंग ने उन्नति की। महाराजाओ आदि ने कविता रचकर एव कवियो का मान करके हमारा प्रोत्साहन अकबरी काल की भाति जारी रक्खा। वीर काव्य एव जातीयता पूर्ण रचनाओ का महत्व काल अभीतक नहीं हुआ, किन्तु आगे आने ही को था। शृङ्गार काव्य ने उन्नति की, तथा नायिका भेद का मान हुआ। यद्यपि इतिहास तथा जातीयता के विचार से शृङ्गार काव्य अधिक गरिमा पूर्ण नही कही जा सकती, तथापि उसके द्वारा हिन्दी कविता में सौन्दर्य की वृद्धि अवश्य होकर उसकी लोक प्रियता बढाती है, जिससे हिन्दी के अन्य अंगो का भी मान, बढ़ता है। अतएव शृङ्गार काव्य को हम निन्द्य नहीं कहते, वरन् इतिहास पर भी इसका अच्छा प्रभाव मानते है, क्योकि बिना इसके हिन्दी के उपयोगी अंगो का भी संसार मे उतना मान न होता जितना कि इसके कारण से हुआ। शान्ति काव्य की कुछ कमी हुई किन्तु कथा काव्य ने अपना बल बढ़ाया नही, तो स्थापित रक्खा ही। नाटको का कुछ मान बढ़ा। प्रौढ़ माध्यमिक काल मे रामलोला तथा कृष्णलीला का जो प्रचार हुआ था वह जारी रहा। व्रजभाषा का प्रभाव इस काल बढ़ा और अवधी कुछ दबी।

अकबर के समय में केवल जातीयता के विचार से भारत ने अपना पहला युद्ध अकबर प्रताप की मुठभेड़ मे देखा। यह जातीयता जाति को लेकर उठी थी। अकबर ने १५५६ से १६०५ तक राज्य किया, तत्पुत्र जाहागीर ने १६२७ तक, और जहांगीरात्मज शाह-जहां ने १६५८ तक। इनके पीछे इनके पुत्र औरंगज़ेब ने १७०७ तक राज्य भोगा। इमादशाही और फ़ारूक़शाही अकबर छीन चुके थे। बारीदशाही जहागीर ने छीनी और निज़ामशाही शाहजहां ने। यद्यपि अकबर ने छः भारी मुसलमानी रियासतें परम सुगमता पूर्वक छीन ली, और पीछे उन बादशाहो का कही पता भी न लगा, किन्तु मेवाड की छोटी सी रियासत लेने मे उन्हे स्वय युद्धस्थल को जाना पड़ा, और जीतने जातने पर भी वह उनको न पची। इससे समझ पडता है कि प्रारम्भिक काल मे हिन्दू शक्ति जैसी निर्बल थी, वैसी अकबरी काल मे वह न थी। जिन कारणो से दिल्ली के बादशाहो के पैर न जम सके थे, उन्ही कारणो से भारतीय अन्य मुसलमान रियासतें निर्बल होने से परम सुगमता पूर्वक अकबर के अधिकार मे आ गईं। शाहजहां ने ओड़छा नरेश जुझारसिह को पराजित करके उसका भारी कोष छीन लिया, तथा सारे बुन्देलखण्ड पर अधिकार जमाया। फिर भी ओड़छा नरेश के श्रमशील न होने से भी बुन्देलखण्डी प्रजा ने चम्पतिराय के आधिपत्य मे वह करारा लोहा बजाया कि शाहजहा को ओड़छे का राज्य फेरते ही बन पड़ा। अकबर काल से १६६८ तक हिन्दुओं के कई और राज्य भी सबल हुये थे, जैसा कि आगे प्रगट होगा। इन बातो से जान पड़ता है कि हमारे समाज ने प्रारम्भिक समय मे पराजित होकर उपदेशको आदि के सहारे अपनी जो शक्ति संगठित की थी एवं मोगल साम्राज्य के समय जो स्वराज्य सा पाया था, उससे उनका बल चैतन्य हो गया था। अकबर ने महाराणा प्रतापसिह पर एक प्रकार से कृपा

करके अन्त मे उनपर धावा नहीं किया था, किन्तु जहांगीर ने समझा कि जो काम मेरे बाप का किया न हुआ, वह कर डालूं, तो बड़ी शान हो। इसलिये उन्होने मेवाड़ पर कई आक्रमण किये और बारम्बार पराजित होकर भी यह प्रयत्न न छोड़ा। अन्त मे महाराणा करणसिंह को दब कर सन्धि करनी ही पड़ी। कुल बातो का फल यह हुआ कि यद्यपि राजपूताने के रजवाड़े मोग़लो के कहने भर को अधीन थे, तोभी वास्तव मे वे सब स्वतन्त्र थे, तथा साम्राज्य मे भी उच्च पदो के अधिकारी हुये। भारत में आदिम हिन्दी काल से ग्रामो का चलन यह था कि दीवानी, फौजदारी, पुलिस आदि के सब काम ग्राम्य पचायते ही किया करती थी। कही कही एक एक ग्राम मे ऐसा था और कही कई ग्रामो को मिलाकर पंचायते थीं, किन्तु ग्राम वास्तव मे स्वतन्त्र रहते थे, और राजा को केवल मालगुज़ारी अदा कर दिया करते थे। इस कारण से भी राज्यों के पतनोत्थान से वे अपना अधिक लगाव नही समझते थे। उनकी कार्यवाहियां लोकमत के अनुसार चला करती थी। यह भी हो जाता था कि कभी कभी किन्ही मामलों मे बाहर से हस्तक्षेप हो पड़ता था, किन्तु बहुत करके ग्राम्य समाज स्वतन्त्र रहता था। इस संस्था ने भी हिन्दू मत को जीवित रखने मे बहुत बड़ी सहायता दी।

मोग़ल साम्राज्य गिरते पड़ते १६६८ तक पूर्णतया सबल एवं उन्नतिशील रहा। फिर भी इसकी महत्ता मे एक भारी घुन लग गया था। सन १५२६ मे लोदियो से भारत साम्राज्य छीननेवाले बाबर शाह एक बड़े ही प्रेमी पिता थे। अपने पुत्र हुमायूं के बहुत बीमार होने पर उन्होंने ईश्वर से प्रार्थना की कि बेटे के बदले मुझे लेकर उसका जीवन प्रदान हो जावै। अकस्मात् इस विनती का यह फल हुआ कि हुमायूं तो चंगे हो गये और बाबर का प्राणान्त हो गया। मरते समय उन्होने हुमायूं को समझा बुझाकर कहा कि अपने भाई

के लिये काबुल का राज्य छोड दो, तथा भारत का तुम लो। ऐसे प्रेमी पिता की आज्ञा हुमायूं टाल कैसे सकते थे, सो मामला यो ही चला, किन्तु अन्त मे दोनो भाइयो मे युद्ध हुआ ही। इसी प्रकार जहांगीर ने बुढापे मे अकबर का सामना किया और शाहजहां ने अपने बड़े भाई परवेज़ को मार ही डाला तथा जहागीर से लोहा तक बजाया। उनको राज्याधिकार उस काल मिला जब वे घर से निकले हुये मेवाड़ नरेश के यहां रहते थे। मोगलो मे भ्रातृ प्रेम का जो ऐसा ओछा इतिहास था, वह शाहजहा के समय राज्य का संहारक हो गया। औरंगजेब तीसरा बेटा था, किन्तु अपने तीनो भाइयो को मारकर तथा शाहाजहा को क़ैद करके वह १६५८ मे गद्दी पर बैठा। सारा साम्राज्य जड़ से हिल गया। प्रजा पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा। फिर भी स्वार्थ ने औरंगजेब से भाई भतीजो का तो हनन कराया ही, स्वय पुत्र मोहम्मद का भी बध कराया, और दूसरे पुत्र अकबर को फ़ारस भागना पड़ा।

अब दक्षिण का कुछ हाल कहना आवश्यक है, क्योकि मोगल प्रभाव विस्तार के समय रंगमंच उत्तर से हटकर बहुत करके दक्षिण मे चला गया। सन् १६२७ मे शाहजी के दूसरे बेटे शिवाजी का जन्म हुआ। शाहजी निज़ामशाही के बड़े अफ़सर थे, और इस रूप से इन्होने मोगलो का अच्छा सामना किया था। अँगरेज़ी राज्य के पूर्व दक्षिण देश प्राय: सदैव स्वतन्त्र रहा था। सन् १३११ मे अलाउद्दीन ने इसे जीता अवश्य, किन्तु रख न सका, और १३३६ मे प्रसिद्ध विजयनगर साम्राज्य स्थापित हुआ, जो १५६५ तक चला। १३४७ मे हसन गंगू ने बहमनी नामक दूसरा साम्राज्य उसी ओर स्थापित किया, जो १५२६ तक चला। यद्यपि यह मुसलमानी साम्राज्य था, तथापि ब्राह्मणो का इसमे इतना भारी प्रभाव था कि यह बहमनी (ब्राह्मणी) राज्य ही कहलाता था। इन दोनो साम्राज्यो के कारण दक्षिण और ठेठ दक्षिण मे

आदिलशाह से पूर्णतया सन्तुष्ट थे, किन्तु जातीयता मात्र के विचारो से वे समग्र हिन्दू जाति का अपमान समझ रहे थे। युद्ध छेड़ने मे हर प्रकार से खटका था और शाही नौकरी करने मे व्यक्तिरूप से उन्हें हर प्रकार से लाभ की सम्भावना थी। फिर भी जातीय विचारो से विवश हो गये। यही असह्य जातीय वेदना भारत मे यह दूसरा भारी उदाहरण दिखलाती है। मोगल साम्राज्य इन दाक्षिणात्य शाहियों को स्ववश करना चाहता था, सो वह शिवाजी के उत्पातो को बढ़ावा देता गया। अन्त मे जब देख पड़ा कि शिवाजी न केवल बीजापुर से प्रबल पड़ रहे है, वरन् मोग़लो का भी सामना करते हैं, तब मिर्ज़ा राजा जयसिंह द्वारा उनसे युद्ध किया गया। अन्त मे सन्धि हो गई, जो १६६६ तक अक्षुण्ण रही। फल यह हुआ कि महाराष्ट्र शक्ति के पैर दक्षिण में जम गये और मोग़लो का भी सामना करते हुये उसने बीजापुर तथा गोलकुंडा को पद दलित कर डाला।

हिन्दू पुनरुत्थान (१६६९-१८१८)।

मोग़ल सम्राट् औरंगज़ेब में धर्मान्धता बहुत थी। अकबर बादशाह के समय से धार्मिक सहिष्णुता की नीति जो चली आती थी, उससे साम्राज्य तो दिनो दिन पुष्ट होता आया था, किन्तु कट्टर मुसलमानो को बड़ा क्षोभ था कि अपने ही साम्राज्य मे प्रतिमा पूजनादि चलते है, किन्तु मुसलमानी बादशाह तक उनके दमन मे यत्नशील नहीं होते अथच कुरान शरीफ़ की आज्ञाओ का समुचित मान नहीं होता। साम्राज्य इतने दिन दृढ़ रह चुका था कि उसकी आदिम निर्बलता का चित्र मुसलमानी आखो से ओझल हो गया था। उनको समझ पड़ने लगा था कि आला हज़रत की अनुचित कृपाओ का बेढंगा लाभ उठाकर काफ़िर लोग प्रतिमा पूजन, शङ्खनाद आदि करके मुसलमानी मत की महत्ता का अपमान कर रहे है। ऐसी ही

बातों से राह भूलकर औरंगज़ेब ने हिन्दू समाज से पुनर्बार धार्मिक युद्ध आरम्भ किया। मथुरा, काशी आदि तक मे प्राचीन और प्रतिष्ठित मन्दिर तोड़े गये तथा हिन्दू लोग बलपूर्वक मुसलमान बनाये जाने लगे, अथच जज़ीया फिर से बिठलाया गया। फल यह हुआ कि राजपूताना और दक्षिण मे शान्ति भंग हुई और हिन्दू समाज ने अपने पुराने बहिष्कारवाले अस्त्र भर से सन्तुष्ट न रहकर मुसलमानी राज्य बल के मर्दन का भी उद्योग किया। अब हिन्दू समाज तेरहवी शताब्दी का बलहीन, साहसहीन, और अनुत्साही समाज न रह गया था, वरन् इतने दिनो मे उसने अच्छी खासी उन्नति कर ली थी। मेवाड़ नरेश महाराजा राजसिंह ने औरंगज़ेब को निर्भय होकर लिखा कि जज़ीया बाधकर बेचारी धनहीन रिआया को क्यो मूसा जाता है? यदि राजकोष ख़ाली हो गया हो और ख़रचा चलाये न चलता हो, तो पहले हमसे धन मांगा जावे और फिर महाराजा रामसिंह जैपुर नरेश से। कोई कोई कहते हैं कि इसी प्रकार का पत्र छत्रपति शिवाजी ने भी सम्राट् को लिखा था। सब ओर से हिन्दुओ का साम्राज्य के प्रति वैमनस्य बढ़ा और गड़बड़ आरम्भ हो गया। फिर भी तत्कालीन नेत्रो मे उस काल साम्राज्य में कोई गिराव न देख पड़ा। सन् १६७१ से बुन्देलखण्ड मे महाराजा छत्रशाल ने खुले खुले विद्रोह का झंडा खड़ा किया। शिवाजी ने दक्षिण मे और भी बल पकड़ा, और तीन चार भारी युद्धो मे सरे मैदान मोगलो को करारी पराजय दी। पंजाब मे सिक्खो का पारा ऊपर चढ़ा और राजपूताना मे राजपूतो का रुधिर खौलने लगा। इधर साम्राज्य मे हिन्दू दमन बराबर जारी रहा। इतने ही में १६८० मे शिवाजी और महाराजा यशवन्तसिंह मारवाड़ नरेश के शरीरपात हो गये। औरंगज़ेब बहुत काल से दक्षिण पर दांत लगाये हुये था। अब अच्छा अवसर समझकर वह बृहती सेना लेकर वहां पहुचा और १६८६ से १६८८ तक उसने बीजापुर, गोलकुण्डा

और शिवाजी के पुत्र शम्भाजी को ध्वस्त कर डाला। मुसलमानी रियासते बीजापुर और गोलकुण्डा तो ऐसी मृतक-प्राय हो रही थी कि एकबारगी ढेर हो गई और फिर कभी न पनपी, किन्तु इस काल-वाली अन्य हिन्दू रियासतो की भाति महाराष्ट्रशक्ति हारी मानना न जानती थी। शम्भा पराजय के अनन्तर महाराष्ट्रो का मोगलो से ३० साल बिकराल युद्ध हुआ। शम्भा के पीछे उनके भाई राजाराम काम चलाते रहे और उनके भी शरीरान्त पर उनकी स्त्री ताराबाई यही करती रही। मोगल सेना भारी थी। मराठे सामने उससे नही लड़ सकते थे, किन्तु युद्ध उन्होने न छोडा। प्रजा भी उनके साथ थी। जहां मुसलमानी खेमे रहते थे वहां तो उनका राज्य रहता था, और शेष देश मे मराठे राज्य करते थे। बीजापुर और गोलकुण्डा के हट जाने से देश मे उनका कोई प्रतिद्वन्दी भी न रहा। १७०७ मे प्रायः ९० साल की अवस्था मे औरंगजेब महापीड़ित हृदय के साथ गत हुआ, किन्तु २७ साल के प्रयत्नो से भी दक्षिण मे मोगल साम्राज्य न जमा। इधर महाराणा राजसिंह तथा राठूरो ने मिलकर राजपूताने मे मोगलो को कई बार हराया और मुल्लावो तथा कुरान तक का घोर निरादर किया। दुर्गादास के आधिपत्य मे राठूरो ने बालक महाराज अजीतसिंह की रक्षा की और राजसिंह के साथ होकर मोगल बल चूर्ण किया। कहा गया कि :—

ऐ माता सुत ऐस जनु जैसा दुर्गादास।
बन्द मरुद्धर राखिया बिन थम्भा आकास॥

महाराज छत्रशाल ने बुन्देलखंड मे परिश्रमशील हो कई भारी भारी मोगल सेनाओं को विचलित करके दो करोड़ वार्षिक आय का राज्य स्थापित किया। उधर औरंगज़ेब के मरने पर उसके तीनो बेटो मे राज्यार्थ युद्ध हुआ, जिसमे जो विशाल मोगलिया सेना दक्षिण को गई थी, वह पराजय पानेवाले मुवज़्जम शाह का साथ देकर जाजमऊ के युद्ध मे अशेष हो गई। तीसरा पुत्र कामबख़्श भी

हारकर गत हुआ और बड़ा शाहज़ादा आजमशाह बहादुरशाह के नाम से सम्राट् हुआ। राज्य पाने के समय बहादुर शाह की अवस्था ६५ वर्ष की थी। उन्होने औरंगज़ेब की धार्मिक नीति बदलकर अकबरवाली चलाई, जज़ीया छोड़ा तथा हिन्दुओ से उचित व्यवहार स्थापित करना चाहा, किन्तु औरंगजेब के धर्मान्धतापूर्ण अनुचित कर्मों से जो करारी प्रद्वेषाग्नि भड़क उठी थी वह शान्त न हो सकी, और पांच ही वर्ष राज्य करके बहादुर शाह परलोकगामी हुये। दिल्ली मे प्राय सिहासन के लिये शाहज़ादो मे युद्ध हुआ करते थे, जिससे साम्राज्य की शक्ति परम शीघ्रता पूर्वक घटती गई, यहां तक कि औरंगजेब की मृत्यु के दश ही वर्ष पीछे १७१७ मे महाराष्ट्र सम्राट् साहूजी के पेशवा बालाजी विश्वनाथ ने दिल्ली में घुसकर मुगल बल ध्वस्त कर डाला, और तत्कालीन मोगल सम्राट् को गद्दी से उतार कर अपने मन से एक नाम मात्र का मोगल सम्राट् स्थापित किया। नाम मात्र ही को स्थापित रहकर मोगल साम्राज्य नष्ट हो गया और दक्षिण में महाराष्ट्रो का विशाल साम्राज्य जमा। बगाल, अवध, पंजाब, दक्षिण आदि मे नये राज्य स्थापित हुये, जिनमे बंगाल, अवध, और हैदराबाद के मुसलमान थे, तथा महाराष्ट्र, पंजाब, काश्मीर, राजपूताना और बुन्देलखंड के हिन्दू। इनके समय ऊपर दिये गये हैं, किन्तु सुगमता के लिये यहां भी लिखे जाते हैं।

नाम	आरंभ	अन्त	विवरण
महाराष्ट्र	१६४६	१८१८	कुछ महाराष्ट्र रियासते अब भी शेष हैं।
पेशवा	१७१७	१८१८	इनका राज्य महाराष्ट्र राज के अन्तर्गत था।
बुंदेलखंड	१६७१		अब भी देशी रियासतो के रूप मे है।
राजपूताना	.	.	सदा से था और अब भी है। रूप मात्र बदलते रहे हैं।

नाम	आरंभ	अन्त	विवरण
सिक्ख	१७६०	१८४८	कश्मीर पहले इसी मे था, अब देशी रियासत है।

उपरोक्त सब हिन्दू रियासतें है।

अब मुसलमानी रियासतें चलती है।

बंगाल १७२५ से १७६४ तक।

अवध १७३२ से १८५६ तक।

हैदराबाद निज़ाम १७४० से अब तक।

१७३६ मे फ़ारस के नादिरशाह ने दिल्ली पर धावा करके शहर मे लूट मचाई और क़त्लाम किया, तथा तख्त ताऊस ले गया। १७४८ तथा १७६१ मे अहमदशाह अब्दाली ने धावे किये तथा अन्तिम सन् मे पानीपत पर महाराष्ट्रो को पराजित किया। १८१८ से अंगरेजी साम्राज्य स्थापन समझा चाहिये। अंगरेज़ों का विवरण आगे आवेगा। उनका प्रभाव १७५७ से ही स्थापित हो चला था, किन्तु साम्राज्य के रूप मे वह शक्ति पीछे से जमी। औरंगजेबवाले कुप्रबन्ध के कारण देश मे जो दुरवस्था फैली, उसका चित्रण हमारा साहित्य अच्छा करता है। सिक्खो की घटनायें पहले से बलवती थीं, किन्तु औरंगज़ेब के समय से उनका प्रभाव विशेष हुआ। सिक्खो का एकत्र वर्णन अभी होगा, तथा सूदन कवि के सहारे उस काल के साम्राज्य का एक चित्र कुछ विस्तार से दिखलाकर हम पीछे से अन्य साहित्यिक विवरण देवेंगे।

———

सिक्ख सम्प्रदाय ।

दशो गुरुओ का समय ।

नम्बर	नाम	जन्म का सन	गद्दी का सन	मरण का सन	विवरण ।
१	गुरु नानक देवजी	१४६९	१५००	१५३९	खत्री । इनकी गद्दी का समय अंदाजी है ।
२	गुरु अङ्गदजी	१५०४	१५३९	१५५२	न० १ के शिष्य तथा तिहुन शाखा के खत्री ।
३	गुरु अमरदासजी	१४७९	१५५२	१५७४	खत्री, न० २ के शिष्य ।
४	गुरु रामदासजी	१५१४	१५७४	१५८१	सोधीवंश के खत्री । न० ३ के दामाद ।
५	गुरु अर्जुनजी	१५७३	१५८१	१६०६	आदि ग्रन्थ का संकलन । न० ४ के पुत्र ।
६	गुरु हरगोविन्द सिंहजी	१५९५	१६०६	१६४४	न० ५ के पुत्र ।
७	गुरु हरराम साहब	१६२९	१६४४	१६६१	न० ६ के पौत्र ।
८	गुरु हरकिशन साहब	१६५६	१६६१	१६६३	७ वर्ष की ही अवस्था मे गत हुये । नं० ७ के पुत्र ।
९	गुरु तेग बहादुरजी	१६२१	१६६४	१६७५	न० ६ के पुत्र ।
१०	गुरु गोविन्द सिंहजी	१६६१	१६७५	१७०८	अन्तिम गुरु न० ९ के पुत्र ।

पहली बादशाही ।

१। गुरु नानक देव जी सिक्ख सम्प्रदाय के चलानेवाले थे। इनके पिता का नाम कालू बेदी और माता का तृप्तादेवी था। ये राय भोली नामक ग्राम मे रहते थे, और इनका पुश्तैनी काम पटवारगरी था। तृप्तादेवी बड़ी शान्त और पतिव्रता थी। इनके दो ही सन्तान हुये, अर्थात् कन्या नानकी और पुत्र नानक। नानकी का विवाह कपूरथले के राज्य मे जयराम साहूकार से हुआ। गुरु नानक का जन्म जिस स्थान पर हुआ था, उसे अब ननकाना कहते हैं। वहां के सुन्दर तालाब पर प्रति वर्ष कार्तिकी पौर्णिमा को अच्छा मेला लगता है, और सिक्खो मे यह एक पवित्र स्थल है। हमारे चरित्र नायक को पंडित और मौलवी पढ़ाते थे, जिनसे आपको संस्कृत, अरबी और फ़ारसी की अच्छी शिक्षा मिली। वाल्यावस्था से ही आपको वेदान्त पर रुचि थी और उसमे आपके तर्क अच्छे होते थे। उसी समय से आप ईश्वर-भक्त, त्यागी, और जिज्ञासु थे। पिता के कहने से आपने खेती बोई, जो अच्छी उपजी, किन्तु जब उसे चिड़ियाये चुगने लगी तब उन्हे हाकने के स्थान पर आपने कहा,—

राम दी चिड़िया राम दा खेत, खा लो चिड़िया भर भर पेट।

निदान खेती उजड़ गई। तब पिता ने ४०) रु० देकर एक जाट के साथ इन्है व्यापार करने को भेजा। मार्ग मे कबीर पन्थी सन्तो का एक दल मिला, जिनसे आप परम प्रसन्न हुये। आपने सोचा कि इनके खिलाने पिलाने से बढकर क्या व्यापार होगा, सो चालीसो रुपये उनके भोजन वसन मे व्यय कर दिये। घर वापस आने पर पिता द्वारा इन पर अच्छी मार पड़ी, किन्तु इनका आचरण न बदला। साधुओ से आप बड़े प्रेम से मिलते थे। पिता के कोप से विवश होकर आप बहनोई के यहां कपूरथले चले गये, जहां

नव्वाब लोदीखा के मोदीखाने के निरीक्षक नियत हुये। १६ वर्ष की अवस्था मे आपका विवाह हुआ। श्रीचन्द और लक्ष्मीदास नामक आपके दो पुत्र हुये। श्रीचन्द ने समय पर उदासियो का पथ चलाया तथा लक्ष्मीदास गृहस्थ रहा।

कुछ दिनो मे महात्मा नानक ने घर बार छोड़कर संन्यास ग्रहण किया। इनके श्वसुर ने बहुत कुछ समझाया बुझाया किन्तु कोई फल न हुआ। अब आपका अधिकांश समय ईश्वर के ध्यान मे जाता था। एकान्त स्थानो एवं श्मशानो तक मे बैठकर आप ईश्वरोपासना तथा ध्यान धारणा करते थे। अनन्तर एमनाबाद मे आपने कई वर्ष पर्यन्त निशि दिन कंकड़ो पर भजन किया। तभी से उस स्थान का नाम रोरी साहब पडा। आप के पूर्ण योगी, परम दयालु तथा विनम्र होने से श्रोताओ पर कथनो का बड़ा प्रभाव पड़ता था। सब कहीं घूम घूमकर आप उपदेश देते और हिन्दू मुसलमानी मतों मे ऐक्य बढ़ाने का प्रयत्न करते थे। इन दोनो मतो के लोग आपके शिष्यों मे थे। सारे भारतवर्ष का भ्रमण तो आपने किया ही, अफ़ग़ानिस्तान, बग़दाद, अरब आदि मे भी आप हो आये। आपके उपदेश केवल बचनो से न होकर क्रियात्मक भी होते थे। हरिद्वार मे जहां हिन्दू लोग पूर्वाभिमुख होकर तर्पण किया करते थे, वही गंगाजी में पश्चिम की ओर मुख करके आप पानी डालने लगे। लोगो ने कहा कि कैसा बावला है जो पश्चिम की ओर तर्पण करता है? आपने उत्तर दिया कि भाइयो! मैं तर्पण न करके अपने पंजाबवाले खेत सींच रहा हूं। यदि आपका दिया हुआ पानी स्वर्ग लोक तक पहुचकर पितरों को मिलैगा तो क्या मेरा पंजाब के खेतों तक मे न पहुचेगा? इसी भांति कहते हैं कि आप मक्के मे पुनीत काबे की ओर पैर करके लेट गये, और जब लोगो ने कहा कि कैसा पागल है कि ख़ानये ख़ोदा की तरफ पैर करता है, तो बोले कि

जिधर ख़ानै ख़ोदा न हो उधर बतला दीजिए कि उधर ही पैर फैलाऊं।

गुरु नानक के उपदेश ज्ञान, ईश्वर भक्ति, योग, एकेश्वरवाद, निराकारोपासना, मूर्ति पूजन निषेध, जाति पांति का विरोध, मनुष्यमात्र की समता, सुरत शब्द, योगाभ्यास, गुरुभक्ति तथा समाजोन्नति के थे। आप कोई नया मत नही चलाना चाहते थे, वरन् समाज संशोधन और उसकी उन्नति मात्र आपके मुख्य उद्देश्य थे। गुरुभक्ति तथा योग पर आपने विशेष ज़ोर दिया, और हिन्दू मुसलमानो के एकीकरण का आपका प्रयत्न था। सिक्खो मे भी शवदहन, गोरक्षा, तथा गंगामाहात्म्य का प्रचार है, अथच हिन्दू धर्म एवं जाति के रक्षण मे सिक्ख गुरुओ ने प्रचुर प्रयत्न क्या आत्मबलि तक की। गुरु नानक ने पजाबी तथा हिन्दी मे साहित्य रचना भी की। पंजाबी भी हिन्दी का अंग ही है। आदि ग्रन्थ साहब का सिक्खो में वेद भगवान का सा मान है। इस पुनीत ग्रन्थ मे गुरु नानक देव की प्रचुर कविता सम्मिलत है, तथा कबीरदास, मीराबाई, रैदास आदि प्रसिद्ध भक्तो की भी वाणी ने आदर के साथ स्थान पाया है। इस आदि ग्रन्थ का आरम्भ इन्हीं गुरुवर ने किया तथा पीछे के कुछ गुरुओ ने भी समय समय पर इसमे अपनी रचना जोड़ी। ग्रन्थ साहब के शब्दों तक को सिक्ख लोग बहुत पुनीत मानते तथा बड़े प्रेम से पढते है, यहा तक कि इनका पाठ उनके धार्मिक कर्त्तव्यो का एक प्रधान अंग है। पीछे गुरु लोग भी गुरु नानक की वाणी बड़ी श्रद्धा भक्ति से प्रायः नित्य प्रति पढा करते थे। इसके शब्दो तक का इतना मान था और है कि एक गुरु महाशय ने अपने प्रियपुत्र का इसी कारण त्याग कर दिया कि उसने गुरु नानक के एक शब्द को बादशाह के डर से या उनको प्रसन्न करने के लिये बदल दिया था। इसका वर्णन आगे आवैगा। गुरु नानक देवजी का देहान्त सन् १५३९ में ७० वर्ष की अवस्था मे हुआ। मरने के पूर्व आपके दर्शन करने

लोग आया करते थे। यद्यपि आपके पुत्र श्रीचन्द गृहत्यागी तक थे, तथापि आपने अपनी गद्दी पर उन्हें अभिषिक्त न करके अपने योग्य शिष्य लहना को किया, जो पीछे से गुरु अङ्गद साहब कहलाये। यह भारी औदार्य भी गुरु नानक देव जी के उच्च आचार का एक अच्छा साक्षी है। ये गुरुवर वास्तव में सिक्ख सम्प्रदाय के चलानेवाले थे, किन्तु गौतम बुद्ध के समान ये भी अपने को नवमत संस्थापक न मानकर हिन्दूमत का सुधारक मात्र समझते थे।

समय पर सिक्ख मत एक भारी धर्म तथा युद्धकारिणी जाति का प्रवर्तक हुआ, किन्तु ये उन्नतियां आगे चलकर हुई। गुरुवर नानक देव के समय तक सिक्ख मत केवल एक धार्मिक सम्प्रदाय रहा, जो हिन्दू मत का सुधार एवं हिन्दू मुसलमान मतैक्यार्थ उत्पन्न हुआ था।

२। गुरु अङ्गदजी (१५३९-५२) ने सन् १५०४ ई० मे खत्री जाति की तिहुन शाखा में जन्म ग्रहण किया था। आप सन् १५३१ मे गुरु नानक जी के शिष्य हुये और कंकड़ो पर बहुत काल पर्यन्त तपस्या करते रहे। गुरु अङ्गदजी मे भी अपने गुरु कैसे प्रायः सब गुण थे, यहा तक कि ये उनके अवतार से समझ पड़ते थे। आप उन्ही के समान आडंबरहीन, जाति पांति के विरोधी, निष्कपट आदि थे। आपने देखा कि लोग नानक देव के सिद्धान्तो को मानते हुए भी उन्हें कार्य रूप मे परिणत नही करते। इसलिये आपने तीन मुख्य बातो का प्रचार किया, अर्थात् (अ) गुरुमुखी अक्षरो की रचना, (आ) गुरु नानक की वाणी का संग्रह, एवं उनका चरित्र सङ्कलन, तथा (इ) लङ्गर का संस्थापन। लङ्गर पंजाब मे रसोई को कहते हैं। हमारे गुरुवर के लङ्गर मे सब शिष्य अथच और लोग भोजन करते थे, जिसके लिये उन्हे कुछ देना नहीं पड़ता था। इस लङ्गर मे जाति पांति का विचार न था, और सब लोग साथ बैठकर खाते थे। इससे जाति बन्धन शिथिल हुआ। बाला नामक एक व्यक्ति गुरु नानक के साथ प्रायः रहा करता था।

उसी की सहायता से उनका वृत्तान्त लिखा गया। गुरु नानक की वाणी के लिपि बद्ध होने से लोग उसका पाठ बडे आदर से करने लगे। गुरु अङ्गदजी भी बड़े ही प्रेम से ऐसा करते थे। लङ्गर गुरु नानक के समय भो था किन्तु गुरु अङ्गद के समय उसकी विशेष उन्नति हुई। इससे सिक्खो मे संगठन शक्ति की वृद्धि हुई। गुरु नानक के सब शिष्य अङ्गद को मानते रहे, तथा इनकी वाणी मे इतना बल था कि शिष्यो की संख्या इनके समय मे बहुत कुछ बढी। इस शिष्य वृद्धि से लङ्गर का काम दिन भर कभी बन्द ही न होता था।

अङ्गदजी गुरु नानक के समय मे अपने हर काम मे उनकी प्रसन्नता का ध्यान रखते थे। आप इतने निर्लोभी थे कि शिष्यो से प्राप्त पूरा का पूरा धन धर्म कार्य ही मे लगाते थे, और स्वयं उससे एक पैसा भी न लेते थे। यहातक निर्लोभी थे कि लंगर का भोजन स्वयं न करके अपनी स्त्री का बनाया खाते थे, और पुत्रो को उपदेश देते थे कि व्यापार द्वारा संचित धन से गृह कार्य चले तथा धर्मार्थ आया हुआ पूरा का पूरा धन धर्मकार्य ही मे लगे। आप साहित्य प्रेमी भी थे। आपकी रचना ग्रन्थ साहब मे है थोडी ही, किन्तु है बहुत भावपूर्ण तथा प्रभाव बर्द्धिनी। गुरु अङ्गद के प्रयत्नो से गुरु नानक का मत विश्वास मात्र से सम्प्रदाय के रूप में परिणत हुआ। इसके अनुयायियो की संख्या अच्छी बढी और उनका एक पृथक् समाज सा देख पड़ने लगा। यद्यपि वास्तव मे वे हिन्दू समाज के बाहर न थे, तथापि बहुत बातो मे सिक्ख लोग अपनी एकता का अनुभव करने लगे। गुरु अङ्गद के दो पुत्र थे। तो भी उन्होने गुरु अमर-दास को अपना उत्तराधिकारी बनाया। यह बात भी एक अनोखे प्रकार से हुई।

३। अमरदासजी गुरु अगद से २५ वर्ष बड़े थे। किसी ब्रह्मचारी के बचनो से प्रभावित होकर आप किसी को गुरू बनाना चाहते थे।

सन् १५४० मे गुरु अङ्गद के दर्शन करके आप ऐसे प्रसन्न हुये कि उन्ही के शिष्य हो गये। आपका नियम था कि नित्यप्रति आधी रात के पीछे उठकर तीन कोस जाते और व्यास नदी से एक घडा पानी लाकर उससे गुरु को स्नान कराते थे। नदी को जाते समय भी तीन कोस तक उलटे पावो जाया करते थे, जिससे गुरु की ओर पीठ न हो। अन्य प्रकार से भी गुरु सेवा रत रहते तथा लंगर का प्रबन्ध किया करते थे। एक रात वर्षा ऋतु मे जल लाते समय आप एक उस जुलाहे के भवन के निकट एक खड्ड मे गिर पडे, जो गुरु अङ्गद का पडोसी था। जुलाहे ने कहा कि "इस समय कौन उठा होगा?" जुलाहिनी बोली कि "ऐसी भयानक रात मे अनाथ अमरू के सिवा और कौन उठनेवाला है? वही गिरा होगा, क्योकि रात मे वह पानी लाता ही है।" यह बात गुरु अङ्गद को भी अपने कानो सुन पड़ी। दूसरे ही दिन गुरु अङ्गद ने अमरदास को अपने स्थान पर गद्दी पर बिठला दिया, और कहा कि यह अनाथ और बेचारा अमरू न होकर गुरु अमरदास और नाथो का नाथ है। इसके कुछ ही दिन पीछे गुरु अङ्गदजी परलोकवासी हो गये।

गुरु अमरदासजी का जन्म सन् १४७६ मे बासर ग्राम मे हुआ था। इनके दो पुत्र तथा दो कन्याये थी। आपकी अवस्था ६५ वर्ष तक पहुची किन्तु फिर भी आप घटो भजन करते, लंगर का प्रबन्ध देखते और उपदेश देते थे। आप कभी चारपाई पर नही सोये। गुरु अमरदास के उपदेश बहुत प्रभावपूर्ण होते थे। एक बार सन् १५६५ मे अकबर बादशाह इनसे मिलने पधारे। बादशाह ने गुरु को बहुत सी अमूल्य वस्तुएं देकर १२ ग्राम जागीर मे भी देने चाहे। गुरु साहब ने बहुत प्रसन्नता के साथ धन्यवाद देकर कहा कि गुरु घराना स्वतन्त्रता का पक्षपाती है। जागीरदार बनकर वह अधीन हो जावेगा। हमको जागीर से क्या सरोकार है? यह कह गुरुवर ने बादशाह की दी हुई चीज़ो को भी निर्धनों

में बांट दिया। गुरु अमरदास के समय सिक्ख सम्प्रदाय में, गुरु नानक के पुत्र श्रीचन्द के चलाये हुये उदासी मत ने हलचल मचादी। वह वैरागियो का मत था। गुरु अमरदासजी ने सारा गड़बड़ यह उपदेश देकर शान्त कर दिया कि जब गुरु नानक देवजी स्वय त्यागी, सन्यासी और पूरे धार्मिक होकर भी जंगल न पधारे, और संसारी रहकर भी संसार से पृथक् थे, तब उनके आदर्श जीवन से यही शिक्षा मिलती है कि प्रत्येक मनुष्य संसार मे होकर भी उससे पृथक् रह सकता है। आपकी प्रकाड निर्लोभता, उच्च विचार ✓ तथा भावपूर्ण उपदेशो का प्रभाव सिक्ख समाज पर अच्छा पड़ा। उसमे कोई भेद न होने पाया, अथच संगठन के कारण सिक्खो की सख्या इतनी बढी कि उसमे २२ गद्दियां स्थापित हो गईं। प्रत्येक गद्दी मंजा कहलाती थी, जिसमे प्रतिनिधि धर्मोपदेशक कार्य करते थे। इन प्रयत्नो से उदासी मत पृथक् रहा, और उसमे कोई महत्ता न आई। गुरु अमरदास ने सती के प्रतिकूल शिक्षा दी, तथा विधवा विवाह को योग्य ठहराया। आपके शिष्यो मे सैकड़ो मुसलमान भी थे। गुरु अमरदास कविता भी किया करते थे। इनकी रचना आदि ग्रन्थ मे पाई जाती है। वह भावपूर्ण तथा प्रतिभा युक्त है। गुरु अमरदास की कन्या मानी बीबी के विवाह का प्रश्न उपस्थित होने पर उसकी माता ने आपके पूछने पर उत्तर दिया कि "अपनी बेटी के लिये मैं ऐसा ही लड़का चाहती हूं जैसा आपका सेवक रामदास है। बस इसी आयु और ऐसे ही गुणवाला लड़का मुझको पसंद होगा।" गुरु ने मुस्कराकर कहा,—"शायद विधाता ने इसी के साथ संयोग मिला दिया हो।" गुरु के पूछने पर रामदास ने कहा कि मेरे पिता का देहान्त हुये बहुत समय बीत चुका है; मैं सोधी वंश का खत्री हू। गुरुवर प्रसन्न हुये और यही विवाह स्थिर हो गया। यह घटना सन् १५५५ की है। गुरु अमरदास ने अपने स्थान पर रामदास को ही गद्दी भी दी।

४। गुरु रामदासजी का जन्म १५१४ में लाहौर के चूना मंडी महल्ले में हुआ था। सन् ७४ में गुरु होकर आप केवल सात वर्ष गद्दीपर विराजे। अमृतसर की नीव आप ही के हाथ से रक्खी गई। सन् १५७८ मे अकबर शाह आपसे मिले। इस अवसर पर उन्होंने गुरु को बहुत सी अशर्फिया नज़र देकर जागीर में १२ ग्राम भी देने को कहे, किन्तु गुरुवर ने वह धन लंगर मे देकर ग्रामो के विषय मे कहा कि भूमि लड़ाई की जड़ है, फ़क़ीरो को इससे सम्बन्ध रखना अच्छा नही। तब शाह ने अमृतसर तथा कई गांवो का महसूल माफ़ कर दिया। गुरु रामदास का प्रभाव जनता पर अच्छा था, और इनके समय मे भी सिक्खो की सख्या बहुत बढ़ी। धार्मिक कार्यों से बढ़कर इनके समय गुरु लोग सांसारिक कार्यों में भी बादशाह माने जाने लगे। आपने अपने छोटे पुत्र अर्जुन को उत्तराधिकारी बनाया।

५। गुरु अर्जुनजी का जन्म सन् १५७३ मे हुआ, और आप सन् १५८१ से १६०६ तक गुरु रहे। आप दया और धैर्य की मूर्ति थे। फिर भी इनका बड़ा भाई पृथ्वीचन्द अपनी गद्दी न पाने से इनसे शत्रुता रखता था। उसके उपद्रवो के कारण रामदासपूर को छोड़कर आप अमृतसर में रहने लगे। गुरु अर्जुन के पुत्र हरगोविन्द को मारने के भी पृथ्वीचन्द ने प्रयत्न किये, किन्तु वे सब निष्फल हुये।

गुरु अर्जुन देव कवि थे। आपने आदि ग्रन्थ का संग्रह किया। पहले तीन गुरुओ की रचनाये गुरु अमरदास के पुत्र मोहन से संग्रह कराई गई, तथा गुरुरामदास के एवं अपने लेख आपने स्वयं संग्रहीत किये। इस प्रकार आदि ग्रन्थ तैयार हुआ। आपकी आज्ञा हुई कि यही सिक्खो का धर्म ग्रन्थ है। सब सिक्खो को यथा साध्य नित्य इसका पाठ करना, इसी के अनुसार अपने आचरण बनाने, तथा इसी पर अवलम्बन करना चाहिये। यदि इसके बाहर किसी पद आदि मे स्वयं महात्मा नानक तक की छाप हो, तो भी आदि ग्रन्थ के सामने

वह अमान्य होगा। धार्मिक गुरु होने के अतिरिक्त आपने लौकिक बातो पर भी बहुत ध्यान लगाया। आप एक क्रियात्मक दार्शनिक थे, सो आपका विचार था कि केवल धार्मिक उपदेशो से देशपर यथायोग्य प्रभाव नही पड सकता। इसलिये आपने साधुपने का वेश परित्याग करके राजसी ठाठ से रहना आरम्भ किया। अनुयायियो से भेट स्वरूप जो कर आता था, उसका आपने परिमाण नियत करके २२ प्रदेशो मे उपयुक्त कर ग्राहको द्वारा वसूली का काम नियमानुसार चलाया। इस प्रकार सिक्खो का एक पृथक् समाज ही संगठित हो गया। आप अच्छे अच्छे घोड़े, हाथी आदि रखते, दरबार लगाकर विराजते, तथा सिक्खो को घोडो का व्यापार करने को तुर्किस्तान आदि तक भेजा करते थे। इससे सिक्ख व्यापारियो को अच्छा ख़ासा लाभ होता, उनमे आत्मिक बल की वृद्धि होती, तथा गुरु के भांडार मे अच्छा धन आता था, अथच सिक्खो मे समय पर अश्वारोहण की रुचि के साथ सैनिक बल बढ़ा, जिससे गुरु का राजनीतिक उद्देश्य भी पुष्ट होने लगा। राजसी ठाठ जोड़ने पर भी गुरु अर्जुन देव ने साधु सुलभ सौम्यभाव, ग्रन्थ साहब का पाठ एवं अन्य तदनुकूल गुणो मे कमी न होने दी।

इतना सब होते हुये भी एक शाही उच्च कर्मचारी चडूशाह से आपका बिगाड़ हो ही गया। मामला इस प्रकार से उठा कि वह लाहौर प्रान्त का शासक होकर बड़ा आदमी था ही, सो अपने सामने गुरु के प्रभाव को देख न सकता था। तो भी उसने अपनी पुत्री का विवाह आपके पुत्र हर गोविद से ठीक किया, किन्तु टीका चढ़ चुकने पर गुरु को भिक्षुक बतलाते हुये उनकी मोरी से उपमा दे दी। इस बात को सिक्ख लोगो ने असह्य समझ कर गुरु की राय का अनुमोदन किया और सब सम्मति से टीका फिर गया। अब चंडूशाह इनपर अप्रसन्न हुआ और उसने अकबर शाह से चुगली की कि गुरुवर ने आदि ग्रन्थ मे मुसलमानो और क़ुरान शरीफ के विरुद्ध

बहुत सी बातें लिखी हैं। शाह ने गुरुवर से मँगाकर आदिग्रन्थ साहब को दिखवाया तो सब जल्पनायें झूठ निकली। इसपर उन्होंने ५०० अशर्फी तथा एक रेशमी चादर चढ़ाकर ग्रन्थ साहब को गुरु के पास वापस कर दिया, तथा सन् १६०५ मे गुरु के दर्शन भी किये। उन्होने गुरुवर को कुछ देना चाहा, किन्तु आपने कुछ न लेकर अकाल पीड़ितो के लिये एक साल की माल गुजारी माफ करादी। उसी वर्ष अकबर का देहान्त हो जाने से चंडूशाह ने जहांगीर के समय गुरु पर राजद्रोह का अभियोग लगाकर उन्हें बन्दी करा दिया, और उन पर दो लाख रुपयो का जुर्माना हुआ। गुरुवर ने जुर्माना न देकर जेल मे जाना पसन्द किया। चंडूशाह ने अपनी ओल पर उन्हें छोड़ाकर पुत्री के विवाह का फिर से प्रस्ताव किया, और जब उन्होंने यह न माना तब घोर यन्त्रणाओ द्वारा उनका बध कर डाला। गुरु अर्जुन की ऐसी पाशविक मृत्यु से शान्त सिक्ख जाति पर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ा। वे बिगड़ खड़े हुए और इस घटना के पीछे उन्होने दिनो दिन तलवार का अधिकाधिक सहारा लिया। यद्यपि इस कार्य मे मोग़ल साम्राज्य की कोई राजनीति न सम्मिलित थी, वरन् चडूशाह का अत्याचार न रोकने भर का शाही दोष था, तथापि इसके कारण भविष्य मे सिक्खो का बादशाह से बिगाड़ भला चंगा हुआ।

६। गुरु हरगोविंद सिह जी का जन्म सन् १५६५ मे हुआ। सन् १६०६ से १६४४ तक आप गुरु रहे। अपने पिता के अपघात का प्रभाव आपके ऊपर बहुत विशेष पड़ा। आपने सोचा कि पृथ्वी पर केवल ज्ञान से काम नही चलता, वरन् शक्ति सञ्चय भी आवश्यक है। जो विचार गत दो गुरुओ के काल बीज रूप से पुष्टि पा रहा था, वह आपके समय प्रचण्ड पड़ा। आप गुरुपन तथा योद्धापन दोनो में उत्कृष्ट निकले। इधर तो बड़ी श्रद्धा भक्ति से आदि ग्रन्थ का पाठ, घंटो ईश्वर चिन्तन, तथा भजन करके उच्च उपदेश देते थे, और उधर दो

तलवारै बाधते, अखाड़े मे स्वयं कुश्ती लडते, शिकार खेलते, अचूक निशाना लगाते, अस्त्र सञ्चय करते, और सेना बढाकर शक्ति संग्रह मे दत्तचित्त रहते थे। लोहगढ नामक एक दुर्ग आपने बनवाया तथा पैदलो, घुडसवारो, तोपो आदि की सेना भो रक्खी। भक्त लोग आपका उपदेश सुनकर तथा वीर लोग आपके शौर्य से दंग रह जाते थे। आपका शरीर तेज पूर्ण अथच बलिष्ट था। भेष भी आप बहुधा सादा रखते थे और केवल टोपी, माला तथा ऊनी सेली धारण करते थे। इसी मे खड्ग, छत्र और मुकुट भी सिला रहता था। आप कहते थे कि मेरी एक तलवार पिता के अपघात का बदला लेने को है और दूसरी मोगल साम्राज्य की जड खोदने को। सिक्खो मे अस्त्र शस्त्र शिक्षा के चलाने वाले आप ही हुए। इनके उत्तेजन से सिक्खो मे शौर्य सम्बन्धी गुणो तथा कर्मो की अच्छी वृद्धि हुई। स्वय आपका बहुत सा समय भजन, मल्लयुद्ध, शूकर, चीते आदि के शिकार, घोडे की सवारी आदि मे व्यय होता था। सामरिक गुणो की वृद्धि के विचार से आपने खुल्लमखुल्ला मांस भक्षण का समर्थन किया। प्रधान प्रधान मुसलमान राजकर्मचारियो से मित्रता रखकर आप बादशाह के भी कृपापात्र थे। आपने हर-गोविंदपुर बसाया तथा कुछ काल शाही नौकरी भी की। जहागीर शाह के साथ आप कश्मीर भी पधारे और उन्होने आपको ७०० घोड़सवार, १००० पैदल तथा ७ तोपो का स्वामी बनाया। शाही आज्ञा से ही अपने पितृघाती चंडूशाह से आपने बदला लिया और उसे बुरी यन्त्रणाओ से मारा।

इतना सब होने पर भी आप शाह को प्रसन्न न रख सके। पिता पर जो दो लाख का जुर्माना हुआ था, उसके बदले आप ग्वालियर के दुर्ग मे बन्द कर दिये गये। आप वहां १२ वर्ष क़ैद रहे। सिक्ख लोग गुरुभक्ति के आवेश मे ग्वालियर क़िले की दीवारो को पूजते थे। इन बातो को सुनकर शाह ने आपको बन्धनमुक्त होने की आज्ञा दी।

गुरु ने कहा कि अन्य बन्दियो को यही छोड कर मैं मुक्त नही हूगा। इस पर शाह ने आज्ञा दी कि जो जो गुरु का दामन पकड लेवे वे सब छूट जावें। तब सभी क़ैदी आपका दामन पकड़कर छूट गये, और आपके शिष्य भी हो गये। शाह ने अपने स्थानीय शासको को यह भी आज्ञा दी कि वे सब लोग गुरु की प्रतिष्ठा, सहायता और सेवा करें। इन सब बातो से एवं भजन पूजन, उच्च उपदेश, तथा शौर्य के कारण, गुरु की वड़ी ख्याति हुई, और हज़ारो लोग इनके शिष्य हुए, जिससे सिक्ख धर्म की अच्छी वृद्धि हुई। अब आप सिक्खो के मामले मुकद्दमे भी निवटाने लगे। आपका चित्त इतना शान्त और कोमल था कि एक समय इनको अद्वैतवाद का उपदेश देते देखकर जब एक ब्राह्मण ने कह दिया कि यदि ऐसा है तो आप खुद उस गधे के बराबर है जो चरता है, तब आप केवल हॅस गये और क्रुद्ध न हुये।

बादशाह की आज्ञा के विपरीत प्रान्तीय शासको ने गुरु से लाग डाट आरम्भ कर दी। एक सिक्ख तुर्किस्तान से कुछ बढिया घोड़े लाकर गुरु की भेट करने को अमृतसर जा रहा था। लाहौर के नाजिम ने उन घोड़ो को छीनकर सम्राट की भेट कर दी। वहां से एक अश्व क़ाजी को भी मिला। गुरु ने वह घोड़ा क़ाज़ी से छीन लिया तथा उसकी बेटी या गणिका को भी छीनकर उसके नाम पर एक मन्दिर बनवा दिया। उसके साथ कोई बुरा सलूक न हुआ। यह काम केवल क़ाज़ी के अपमानार्थ किया गया। इस पर लाहौर के नायब नाज़िम तथा क़ाजी के दो पुत्रो ने ७००० सेना लेकर गुरु पर आक्रमण किया। अमृतसर के निकट युद्ध हुआ जिसमे मुसलमानी सेना पराजित हुई। मुसलमानो का सिक्खों से यह पहला समर हुआ। दो ही सप्ताहो मे एक दूसरी सेना भी आकर पराजित हुई तथा कई और छोटे मोटे युद्धो मे गुरु की विजय हुई। फिर भी ऐसी बातो में कल्याण न समझकर आप भटिंडे के जंगलों मे चले

गये। वहा आपने बाबा बुढ्ढा नामक एक लुटेरे को सिक्ख तथा सच्चरित्र बनाया। दो वर्षों के पीछे जालंधर के निकटवर्त्ती ग्राम करतारपुर मे आप रहने लगे। आपके सेनापति पयंदा खा को यह अभिमान हुआ कि मेरे ही कारण गुरु विजयी हुये है। गुरु ने यह अहङ्कार पसन्द न किया। इस पर पयंदा, चंडूशाह के पुत्र, तथा गुरु के शत्रु चचा पृथ्वीचन्द के पुत्र ने शाही सेना मे होकर गुरुपर आक्रमण किया किन्तु अपरैल सन् १६३४ मे पराजित हुए तथा पयदा गुरु के हाथ से मरा, एवं चंडूशाहात्मज का भी विनाश हुआ। इस युद्ध मे गुरु ने अच्छी बहादुरी दिखलाई। अनन्तर आप गिरिनिवासी होकर किरातपुर मे मरण पर्यन्त रहे। आपकी मृत्यु से सिक्खो को महान दुःख हुआ, यहा तक कि कुछ सिक्खो ने आपके चिता मे प्रवेश करके प्राण दे दिये, अथच कुछ और लोग भी ऐसा ही करनेवाले थे, किन्तु आपके उत्तराधिकारी हरराय की आज्ञा से रुक गये।

७। गुरु हरराय साहब का जन्म सन् १६२६ मे हुआ। आप गुरु हरगोविंद के पौत्र थे। आपको लडाई झगडा पसद न था। आप शान्त चित्त के पुरुष थे, और मृगयादि की अपेक्षा निर्जन स्थान मे ईश्वर चिन्तन तथा योगाभ्यास पसंद करते थे। टर्की का बादशाह जब भारत मे आया तब आपसे भी मिला। उसने पूछा कि ईसा, मोहम्मद, मूसा आदि पैगम्बरो मे से किसके द्वारा मुक्ति मिल सकती है? आपने उत्तर दिया कि ईश्वर के सामने सिफ़ारिश की आवश्यकता नही, वहां तो सत्कर्म ही काम आते हैं। इस उत्तर से सुल्तान प्रसन्न हुआ। गुरु का दाराशिकोह से अच्छा व्यवहार था और वह आपको बहुत मानता था। जब दारा औरंगज़ेब से हारकर भाग रहे थे, तब इनसे भी मिले। गुरु ने पुराने प्रेम भाव के कारण अपने अनुयायियो द्वारा उन्हें भागने में कुछ सहायता दी। आपका एक शिष्य गोरा नामक चमार था। उसे भी आप सबके बराबर मानते थे। जब औरंगज़ेब

बादशाह हुये तब उन्होंने गुरु के पास दारा की मदद के कारण बोलावा भेजा। गुरु ने स्वयं न जाकर अपने बेटे रामराय को भेज दिया। रामराय की बातो से औरंगज़ेब का क्रोध शान्त हो गया। एक समय बादशाह के सामने गुरु नानक देव का निम्न छन्द पेश हुआ :—

मिट्टी मूसलमान की पेडे पई कुम्हार।
बड़ भाड़े ईटा किया जलती करे पुकार॥

इसका प्रयोजन यह है कि जब मुसलमान के क़ब्र की मिट्टी से बर्तन बनाकर कुम्हार उसे अवे मे जलाता होगा, तब वह ज़रूर पुकार करती होगी। आपका प्रयोजन यह था कि शव को गाड़ने के स्थान पर जलाना अच्छा, क्योकि जलाना बचाने से भी तो नही बच सकता, और मिट्टी कभी न कभी कुम्हार के अवे मे जलेगी ही। इसे सुनकर शाह का विचार हुआ कि इसमे एक प्रकार से मुसलमानो की निन्दा है। इस पर रामराय ने विनती की कि शुद्ध पाठ मूसलमान न होकर बेईमान है। इससे शाह तो प्रसन्न हुआ किन्तु जब यह समाचार गुरु हरराय साहब के पास पहुचा, तब आप बहुत अप्रसन्न होकर बोले कि उस नीच ने एक साधारण व्यक्ति बादशाह को प्रसन्न करने के लिये ईश्वर भक्त नानक जी की वाणी मे उलट फेर कर दिया। वास्तव मे बडा पापी है। आज से वह मुझे अपना मुख न दिखलावे, और जो कोई उससे सम्बन्ध रक्खैगा, वह मेरा शिष्य न होगा। रामराय ने यह सुनकर गुरुवर से क्षमा याचना के लिये बडी विनती कराई, किन्तु आपने एक न मानी, तब उसने बादशाह से विनती की तो उसे शाह द्वारा देहरादून के निकट बहुत सी सम्पत्ति मिल गई और वह वही रहने लगा। यह उदाहरण इस बात का साक्षी है कि सिक्ख मत में आदि ग्रन्थ का इतना बड़ा मान था कि उसमे थोड़ा भी परिवर्तन करनेवाला अपने पुत्रत्व और गुरुपन के उत्तराधिकारों से पिता के ही द्वारा

वञ्चित कर दिया गया। सन् १६६१ मे मरते समय गुरु ने अपने पाच वर्ष के पुत्र हरकिशन को उत्तराधिकारी बनाया। गुरु हरराय की समाधि कीर्त्तिपुर मे अब भी मौजूद है।

८। गुरु हरकिशन साहब केवल ५ वर्ष की अवस्था मे गद्दीधर होकर दो ही वर्षो मे चेचक से गत हो गये। एक बार दिल्ली मे जयपुर नरेश मिर्ज़ा राजा जयसिंह ने अपने ज़नाने मे इनका स्वागत किया, किन्तु इनके बैठने योग्य कोई उचित स्थान न बनवाया। इस पर आप बोले कि आज बाई की गोद मे बैठेंगे। ऐसा कहकर बड़ी रानी की गोदी मे जा बैठे। सब लोग इस बुद्धिमानी से बहुत प्रसन्न हुये। मरने के समय गुरु हरकिशन ने संकेत से कहा कि मेरा उत्तराधिकारी वकाले मे मिलेगा। इस पर एक प्रधान सिक्ख अपनी आय का दशमाश भेट के स्वरूप लेकर गुरु खोजने वकाले गया। वहां सैकड़ो लोग गुरु बनने के लिये मरने मारने तक को तैयार थे। उन्हे नापसंद करके जब वह गुरु हरगोविंदजी के छोटे पुत्र तेगबहादुर को मिला तथा बहुत प्रसन्न होकर बोला कि गुरु लभा और उसने भेट उन्ही को अर्पण की, तब सब लोगो ने आपही को गुरु मान लिया।

९। गुरु तेग़ बहादुर बड़े ही शान्तिप्रिय, अतिथि सेवी थे। लोग आपको सच्चा बादशाह कहते थे। गुरु हरराय का बड़ा पुत्र रामराय स्वभावशः आपका प्रतिद्वन्दी था, क्योकि वह अपने को गद्दी का अधिकारी समझता था। इधर सिक्खो की भक्ति अपने गुरु पर अत्यधिक थी, और इनका प्रभाव जनता पर भी बहुत था। औरंगज़ेब मुसलमानी धर्म को बलपूर्वक फैला रहा था। वह गुरु को ही अपने मार्ग का काटा समझता था। उधर रामराय भी इनके प्रतिकूल शिकायते किया करता था। फल यह हुआ कि औरंगज़ेब ने गुरुवर को शान्ति भंग के अभियोग मे दिल्ली बोलाया, किन्तु मिर्ज़ा राजा जयसिंह के प्रयत्नो से आप उनके साथ बंगयात्रा

को भेज दिये गये। वहां आसाम का राजा आपका शिष्य हो गया। पलटने मे कुछ दिन आप पटने मे रहे। यही सन् १६६४ में गुरु गोविन्द सिंह का जन्म हुआ। गुरु तेग़बहादुरजी ने सारे भारतवर्ष का भ्रमण किया। आप जहां जहां पधारे वही सदुपदेश के प्रभाव से बहुत से नये सिक्ख बने। अनन्तर पञ्जाब वापस आकर आप शान्ति पूर्वक रहने लगे। कई वर्ष भ्रमण करने तथा पञ्जाब के बाहर रहने पर भी गुरु का प्रभाव सिक्खो पर कुछ कम न हुआ और इनके प्रतिद्वन्दी रामराय को किसी सिक्ख ने न माना। आप गुरु नानक के पद बड़े प्रेम से गाते और उपदेश दिया करते थे। आपकी सौम्य प्रकृति, उच्च उपदेशो, तथा आदर्शजीवन से सिक्ख मत एवं गुरु के प्रभाव की दिनो दिन वृद्धि हो रही थी।

कुछ दिनो मे औरंगज़ेब ने बलपूर्वक मुसलमानी मत की वृद्धि मे कटिबद्ध होकर हिन्दुओ को ज़बरदस्ती मुसलमान बनाने की नीति को बहुत दृढ़ किया। सारे देश मे त्राहि त्राहि की पुकार पड़ गई। विधिवश कश्मीर के सैकड़ो ब्राह्मण रोते चिल्लाते गुरु के पास आकर बोले, कृपासिन्धो। जो अत्याचार आजकल समस्त हिन्दू प्रजा, विशेषतया गौ ब्राह्मण पर हो रहा है, वह कभी न सुना गया था। मेरा पुत्र बलपूर्वक मुसलमान किया जा चुका है, मैं किसी प्रकार भाग भूग कर आया हूं। इसी प्रकार लोग भाई, बहिन, स्त्री, बालिका आदि के मुसलमान किये जाने या छीने जाने की रोमांच-कारी कथाये सुनाने लगे। बेचारे गुरु बड़े सङ्कट मे पड़कर बोले, जो कुछ होता है, वह ईश्वरेच्छा से होता है। ऐसे भयानक समय मे मुझ से आप क्या आशा करते हैं? ब्राह्मण बोले महाराज! संकट के समय महात्मा लोग ही संसार की रक्षा करते हैं। अब आपको भी छोड़कर हम लोग किसके पास जावे? गुरु ने उत्तर दिया, अच्छा मैं आपकी सहायता करूंगा। इस व्याधि की दवा बलिदान है। उसी से अत्याचार का नाश होगा। जो वस्तु तुमको सबसे

अधिक प्यारी हो, उसी का बलिदान कर दो। यह बाते सुनकर चौदह वर्ष के बालक गोविद्सिंह ने कह दिया कि हम लोगो को आप सें बढ़कर क्या प्यारा है ? पुत्र ने बिना सोचे आवेशवश एकाएक पिता का ही बलिदान कर दिया। सब लोग सन्नाटे मे आ गये और गुरु भी चकित हुये। उन्होने सोचा कि मेरे बलिदान से संसार मे वह प्रद्वेषाग्नि भभकेगी जो अत्याचारी मुगल साम्राज्य को ध्वस्तकर देगी। थोड़ी ही देर सोच विचार कर गुरु ने कहा, ब्राह्मण देवताओ! तुम दिल्ली जाकर शाह से कहो कि हमे सताने से क्या होता है, हमारे गुरु तेग़बहादुर धर्म गुरु हैं, यदि वे मुसलमान हो जावे, तो हम लोग खुसी से आपका मत ग्रहण करेगे। इस प्रकार हॅसते हुये गुरुने स्वयं अपनी मृत्यु का आवाहन कर लिया, और देशहितार्थ अपना शिर देने का प्रस्ताव कर दिया।

यह समाचार पाकर औरङ्गज़ेब ने गुरु को बोला भेजा। आपने समझ लिया कि समय आ गया। अपने पुत्र गोविन्दसिंह को गुरु हरगोविदजी की तलवार देकर गुरुपद पर अभिषिक्त करते हुए गुरु तेगबहादुर बोले, "बेटा! शत्रु हमैं बध करने को लिये जा रहे है। हमारा शत्र कुत्ते न खाने पावै। बदला एव प्रतिहिसा ही पुत्र का एकमात्र कर्त्तव्य है, सो न भूलना।" यह कह कर गुरु दिल्ली को चल पड़े। सब को फेरकर आपने केवल ५ शिष्य साथ लिये और उन्हें आज्ञा दी कि गोविद्सिंह को मेरे समाचार भेजते रहना। मार्ग मे उपदेश देते हुये आप दिल्ली पहुचे, और जाते ही कारागार मे रक्खे गये। दूसरे ही दिन दरबार मे बोलाकर शाह ने आपसे मुसलमान होने के लिये कहा। गुरु ने उत्तर दिया, "बलपूर्वक धर्म बदलने मे कोई महत्ता नहीं है। किसी सांसारिक पदार्थ के लिये धर्म का बेचना अधर्मियो और पापियों का काम है। संसार नश्वर है। मरना सबके लिये स्थिर है। क्षणिक जीवन के लिये कोई भद्र पुरुष धर्म नहीं बेच सकता, विशेषतया गुरु नानक के वंश में ऐसा

घृणित उदाहरण कभी नही दिखलाई देगा।" बादशाह ने कहा या तो कोई करामात दिखलाओ या मुसलमान बनो। गुरु ने कहा, ईश्वर की उपासना ही एकमात्र करामात है। अनन्तर आप जेल भेजे गये, जहा आपको शारीरिक कष्ट भी दिये गये। इस पर गुरु ने कोई खेद न किया। जेल मे भी प्रसन्न रह कर आप गुरु नानक की वाणी गाया करते थे। जो वाणिया आप गाते थे, उनमें से दो छन्द नीचे लिखे जाते हैं :—

चिन्ता ताकी कीजिये जो अनहोनी होय।
यह मारग संसार का नानक थिर नहिँ कोय॥
जे उपजे ते बीनसे आज मरो की काल।
नानक हरिगुन गाइये छोडि सकल जजाल॥

जब करामात के लिये बादशाह ने बहुत कुछ कहा सुना, तब आपने एक पर्चे मे कुछ लिखकर कहा कि जिसके गले में यह बाध दिया जावे उसका सर घातक काट नहीं सकता। वह पर्चा अपने गले के चारो ओर बाधकर गुरु ने जल्लाद के सामने सर झुका दिया। एक ही वार से सर कटकर नीचे गिर पडा। जब पर्चा पढा गया तो उसमे लिखा था कि "सर दिया, सार नही दिया।" बेशक गुरु का बचन सत्य था। आपका सर न कटा वरन् आज प्रस्तुत है। आपके सर्के बदले घातक की खड्ग ने मुग़ल साम्राज्य को ही काटकर फेक दिया, जैसा कि इतिहास हमको बतलाता है। इस एक वाक्य के कारण हम गुरु तेगबहादुर को सुकवि कहेंगे। आदर्श चरित्र इसी को कहते है।

पूज्य पिता के बध का वृत्तान्त सुनकर गुरु गोविन्दसिह ने पितृबध का बदला लेने तथा मोग़ल राज्य नष्ट करने का प्रण करके कहा कि यदि अपने बाप का असली पुत्र हूंगा, तो ऐसा करके दिखलाऊंगा। इस प्रकार जो सिक्ख मत हिन्दू मुसलमानों का मेल करने को उत्पन्न हुआ था, वह धर्मान्ध औरङ्गज़ेब के कुव्यवहार से

मुसलमानी राज्य की जड़ खोदने में प्रवृत्त हुआ। सिक्खो के अन्तिम बादशाह गुरु गोविन्दसिंह का जीवन इसी प्रयत्न मे बीता और उनकी युक्तियो से उनके पीछे कठिन शपथ पूरी हुई। शपथ के अनन्तर सभा मे यह प्रश्न उठा कि पिता का शव कैसे प्राप्त हो? एक बूढा सिक्ख उसे लाने का प्रण करके दिल्ली पहुँचा। एक रथवाले की सहायता इसे दैववश मिल गई। यह नीची कही जानेवाली जाति का सिक्ख था किन्तु था बड़ा उत्साही। इस बूढे ने अपने बेटे से कहा कि मेरा सिर काटकर लाश यही डाल दो और गुरु की लाश लेकर गद्दी पर पहुँचा दो। प्रहरी लोग लाश से धोखा खा जावैंगे और कार्य्य मे बाधा न होगी। जब पुत्र ने पिता का बध करना न माना तब उसने अपने हाथसे अपना सर काट डाला। उसका धड वही पड़ा रहा, और गुरु का धड गुरु गोविन्दसिंह के पास पहुँचाया गया। गुरु तेगबहादुर का दाह सस्कार विधि पूर्वक हुआ। यह घटना सन् १६७५ की है। जिस जाति मे ऐसे ऐसे कर्मनिष्ठ और धर्मनिष्ठ पुरुष हो, उसकी शक्ति असह्य होगी। गुरु तेग़बहादुर की महत्ता तो वर्णनातीत थी ही, इस बूढे सिक्ख का उत्साह भी अकथनीय था। ऐसे ऐसे उदाहरण किसी भी जाति को गौरव प्रदान कर सकते है।

१०। गुरु गोविन्द सिंह (सन् १६७५ से १७०८,) का समय सिक्ख जाति के लिये बड़े ही मार्के का था। गुरु तेग़बहादुर के दारुण बध ने न केवल सिक्ख सम्प्रदाय मे वरन् सारे हिन्दू-समाज मे औरङ्गजेब के प्रतिकूल क्रोध और प्रतिहिंसा की अग्नि भड़का दी। जिस सार के लिये उन्होने सर दिया, उसकी रक्षा सभो को आवश्यक समझ पड़ने लगी। गुरु गोविन्द सिंह ने बालक होकर भी कठिन व्रत धारण किया। बदला लेने की दृढ़ प्रतिज्ञा करके वे एक प्रकार से कठिन तप करने लगे। आपने फ़ारसी और संस्कृत भाषाओ को सीखा तथा वीरोचित गुणो

का भी सम्पादन किया। आप पूरे स्वार्थत्यागी, वीर और निडर थे। शिवाजी ने अपना कठिन व्रत पालन देशहितार्थ किया था, किन्तु गुरु गोविन्द सिंह मे देश हित के अतिरिक्त प्रतिहिसा के विचारो की भी मुख्यता थी। आप हिन्दू जाति के इतिहास पर प्रायः विचार किया करते थे। शस्त्र और शास्त्र मे अच्छी योग्यता प्राप्त करके आप कार्यक्षेत्र मे उतर पड़े। कई शिष्यो को आपने अध्ययन के लिये काशी भेजा और उन्होने वहां चैतन्य मठ मे विद्या लाभ करके सन् १६६५ में आपके दर्शन किये। इनके द्वारा आपने भागवत, भोज-प्रबन्ध तथा उपनिषदो का हिन्दी मे अनुवाद कराया। आसाम के राजा का लडका गुरु तेग् बहादुर के वरदान से हुआ था। वह गुरु गोविन्द सिह के दर्शनार्थ आया। उसका उपदेश गुरु ने बडे जोशीले शब्दो मे करके मोगल राज्य ध्वंसन की उसे सम्मति दी। इसी प्रकार इनके पास जो आता था, उसे आप जोशीले उपदेशो से प्रोत्साहित करके धर्मपर प्राण न्योछावर करने को सन्नद्ध कर देते थे। काशी से पण्डित बोलवाकर प्राय· एक लक्ष के व्यय से आपने यज्ञ भी किया। आप गृहस्थ होकर भी पूरे संन्यासी थे और आपका प्रभाव सिक्खो पर बहुत पडता था। हिन्दी काव्य भी आप उच्च कोटि की बनाते थे। साहित्य की दृष्टि से आपकी रचना सब गुरुओ की रचनाओं से उत्तर है। आपके चरित्र मे जोश की मात्रा बहुत बढकर थी। देश की दुर्दशा से दुखित होकर एक बार आपने अपनी सारी सम्पत्ति सतलज नदी मे फेक दी। एक सिक्ख ने सिन्धु देश के बड़े सुन्दर तथा बहुमूल्य कंगन आपको भेंट किये। पहिले तो आपने उन्हे लेने से इनकार किया, किन्तु शिष्य के विशेष आग्रह पर पहेना। थोड़ी देर मे आपने एक कंगन पास की नदी मे फेक दिया। शिष्य ने यह जानकर गोते बाज़ को बोलाकर कहा कि यह कंगन ढूंढ़ दो तो पांच सै रुपये इनाम दूंगा। गुरु से पूछा गया कि कंगन कहां गिरा था? आपने दूसरा कंगन भी नदी मे

फेककर कहा कि कही यही गिरा था। इसका प्रभाव शिष्य पर बहुत पड़ा और पीछे से वह सादगी से जीवन व्यतीत करने लगा।

गुरु गोविन्दसिंह की आज्ञा सिक्ख लोग बिना सोचे समझे मानते थे। दाला नामक एक व्यक्ति गुरु से कहा करता था कि मैं इस बात का बड़ा उत्सुक हूं कि किसी लडाई मे असंख्य योद्धाओ द्वारा गुरु की सेवा करूं। एक बार एक शिष्य ने एक तलवार, पिस्तौल और बन्दूक गुरु की नज़र की। गुरु ने दाला से कहा कि कोई ऐसा अनुयायी बोलाइये जिस पर इस बन्दूक का निशाना जाचा जावे। दाला ने बहुत प्रयत्न किया किन्तु इस प्रकार प्राण खोने पर कोई सन्नद्ध न हुआ। इसपर दाला बहुत शरमाया। अनन्तर गुरु ने अपने नौकर से कहा कि जो कोई सिक्ख निकट हो, उसे बोला लो। दैववश दो सिक्ख पास ही वृक्ष के नीचे बैठे थे। हाल सुनकर वे दोनो निशाना बनने को आपस मे होड़ करने लगे। गुरु ने कहा, हमे तो एक आदमी चाहिये, वे बोले, नौकर ने किसी का नाम तो लिया न था, मेरे ऐसे भाग्य कहां कि गुरु का निशाना बन सकूं? गुरु ने दोनो को समझा बुझाकर अलग कर दिया। दाला और भी लज्जित हुआ। गुरु प्रायः कहा करते थे कि चूना, कत्था, सुपारी और पान की भांति चारो जातियां समान हैं, तथा इनके बिना मिले काम न चलेगा। इसी विचार से आपने चारो वर्णों को समभाव से धर्मशिक्षा देनी आरम्भ की। गुड़, शहद आदि पाच मिठाइयो का शर्बत बनाकर पूजनोपरान्त आप उसे अमृत कहते थे, और उसका पान सब सिक्ख समान भाव से करते थे। एक दिन गुरुवर केशगढ़ पहाड़ी पर डेरा लगाये पड़े थे। उपदेश के पीछे आप ने अपनी तलवार निकाल कर कहा, यह देवी मुझसे आज एक सिर मांगती है; क्या कोई सिक्ख अपना सिर भेट करने को तैयार है? मंडली मे सन्नाटा छा गया, किन्तु दयाराम नामक सिक्ख आगे बढ़कर सर देने को सन्नद्ध हुआ। गुरु उसे खेमे मे ले जाकर बिठला आये, और एक

बकरे को खड्ग से काटकर रक्त रंजित असि को चारो ओर घुमाते हुये निकलकर बोले, भाइयो ! यह देवी एक और बलिदान की इच्छा करती है। कुछ लोगो ने सोचा कि क्या गुरु आज पागल हो गये हैं, किन्तु एक एक करके पाच बार पाच लोग इसी प्रकार डेरे मे लाये गये। इन पाचो मे एक खत्री था, और चार शूद्र। गुरु ने उनको पञ्चप्यारा की उपाधि दी। अनन्तर उनको समान अधिकार देकर तथा समान कर्तव्य बतलाकर नये बन्धुत्व के स्थापन मे उन पांचो के साथ भोजन किया। फिर एक महासभा करके आपने अपने नवीन सिद्धान्तो को सबके सामने प्रकट किया। उनमे से कुछ सिद्धान्त यहा दिये जाते हैं।

१। पाच सिक्खो के साथ मिलकर पाहुल पीना अथच सिंह कहलाना।

२। पाच सिक्खो की सभा को पूरा ख़ालसा समझना।

३। प्रतिसिंह को पच ककार रखना, अर्थात् कड़ा, केश, कंघा, कच्छ और कटार।

४। जाति भेद छोड़कर प्रति सिंह का इतरो को भाई समझना।

५। सिंहो का युद्ध प्रिय होना, यज्ञोपवीत न पहनना, हिन्दुओ की रीतियो को छोड़कर उनकी रक्षा मात्र करनी, यवनो से न डरना, एकेश्वरवाद पर दृढ़ रहना, किसी से न झुकना, गुरु नानक ही को देवता समझकर केवल ग्रन्थ साहब को पूजना, अमृतसर को तीर्थ मानना, चाहे ब्राह्मण हो या अन्त्यज, सब को समभाव से अमृतसर मे स्नान करके देवदर्शन करना, वाह गुरु की फ़तेह, वाह गुरु की ख़ालसा को सिंहो का मूल मन्त्र मानना, इत्यादि।

ख़ालसा सिंहो का धर्म था, सो इसमे वैश्यो का होना निषिद्ध था। इस धर्म मे हज़ारो लोग सुख से सम्मिलित हुये। अनन्तर गुरु ने चार दुर्ग तैयार कराये अर्थात् लोहगढ, फ़तेहगढ़, फूलगढ़ और आनन्दगढ। इनको सुरक्षित करके गुरु राजाओ को भाति ठाठ

से रहने लगे। अब सहस्रो सिक्ख आपके वास्ते मरने मारने को तैयार थे। आपने ५०० पठान भी नौकर रक्खे, तथा पहाडो राजाओ को परास्त करके एव समझा बुझाकर बादशाह के प्रतिकूल उभाडा। उन्होने कर देना बन्दकर दिया, तथा एक बार शाही सेना राजाओ और गुरु के सम्मिलित दल से पराजित भी हुई। तब शाहज़ादा मुअज़्ज़म ने आकर राजाओ का पूरा दमन किया, किन्तु गुरु पर कोई चढाई न की। इसका कारण यह था कि शाहज़ादे का मन्त्री नन्दलाल गुरु का अनुयायी था। शाही दल की वापसी पर गुरु ने राजाओ को फिर उभाडना चाहा, किन्तु पहले की दुर्गति का विचार करके इस बार उन्होने हिम्मत न की। तब गुरु के अनुयायियो ने राजाओ की बीस हज़ार सेना को पराजित किया। इसपर उन्होने शाह को अर्जी भेजी और वहा से सर हिन्द के शासक को गुरु पर आक्रमण करने की आज्ञा मिली। उन्होने आकर राजाओ के दल की भी सहायता ली, जिससे गुरु की सेना पराजित हुई, और वे आनन्दपुर के दुर्ग मे घिर गये। इतने पर भी गुरु ने अधीनता स्वीकार न की, और बहुत छोटी सेना लेकर भी लडने की ठानी। युद्ध के समय आपके पास केवल ४५ आदमी रह गये। दिनभर युद्ध हुआ, जिसमे आपके ३८ अनुयायी कई शत्रुओ को मारकर काम आये। इतने मरे हुओ मे गुरु का ज्येष्ठ पुत्र अजीतसिंह भी था। स्वयं गुरु ने बड़ी वीरता से युद्ध किया था। अजीतसिंह के मरने पर उसका चौदह वर्ष का छोटा भाई बदला लेने के लिये जाने को गुरु से आज्ञा मांगने लगा। गुरु ने आज्ञा दे दी, और उसके पानी मागने पर कहा, अब क्या पानी पियोगे? धर्मार्थ शरीर की बलि देकर अमृत पान के अधिकारी बनो। तुम्हारा प्यासा ही मरना प्रमाणित करेगा कि ख़ालसा धर्म शत्रुओ के खून का प्यासा है। यह सुनकर वह बहादुर बेटा भी दश पांच शत्रुओ को मारकर वीर गति को प्राप्त हुआ। गुरु के दो बड़े पुत्र इस प्रकार गत हुये। उधर दोनो छोटे पुत्र जो

केवल १२ और आठ वर्ष के थे, पहले ही पकड़े जा चुके थे। अब गुरु के पास केवल तीन सशक्त लोग रह गये। शत्रुओ से बदला लेने के विचार से गुरु ने आत्मबलि नही की, और युक्ति पूर्वक आप मालवे की ओर निकल गये।

गुरु की माता तथा दोनो छोटे बच्चे दिल्ली पहुचाये गये। वहा इनसे मुसलमान होने को कहा गया, तो इन्होने घृणापूर्वक इनकार कर दिया। वहा गुरु के शत्रु दो राजपूत भी उपस्थित थे। नाज़िम ने उनसे कहा कि अब इन बच्चो से बदला लो। उन्होने उत्तर दिया कि गुरु ने हमारे बाप को युद्ध मे मारा था। हम उनको भी लड़ाई मे मारेगे, किन्तु इन बच्चो से हमारी कोई शत्रुता नही है। दूसरे दिन ये बच्चे दीवाल मे ज़िन्दा चुन दिये गये। जब ये पैरो तक चुने जा चुके थे, तब क़ाज़ी के कहने पर बोले थे कि जान के लिये धर्म बेचना अनजानो का काम है। जब दीवार ठुड्डी तक पहुच गई, तब छोटा पुत्र बेहोश हो गया था, किन्तु नाज़िम के पूछने पर बड़ा फ़तेहसिंह बोला था, "नीच! नानक के प्यारे पुत्र अपना धर्म नही छोड़ते है। तू अपना काम समाप्त कर। अब अत्याचार का अन्त हो गया। इसका फल शीघ्र तुम लोगो को उठाना पड़ेगा। निरंकार तुम्हारा मूलोच्छेद् करेगा।" दीवार चुन दी गई और इन वीर बालको की जीवन लीला समाप्त हुई। इस घटना को सुनकर उनकी दादी चीख़ मारकर गिर पड़ी और फिर कभी न उठी।

इधर गुरु गोविन्द सिह की खोज चारो ओर जारी थी। आप मुसलमान साधू का वेष धारण करके अपने मित्र क़ाज़ी पीर मोहम्मद के यहां जा छिपे, और सन्देह निवारणार्थ क़ाज़ी के घर का पका हुआ खाना खाने लगे। यह भगोलपुर की बात है। वहां से रायकोट जाकर आप ने एक दूसरे मुसलमान का आश्रय लिया। यही पर अपने कनिष्ठ पुत्रो के दीवार मे चुने जाने का समाचार आपने बड़े धैर्य से सहन किया और कहा, एक समय आयेगा, जब

यही ख़ालसा धर्म मुसलमानी राज्य की नीव उखाड़कर फेंक देगा। कुछ काल पीछे सन् १७०४ मे गुरु दम्पा पहुचे। यहा आपने औरंगज़ेब को एक पत्र लिखा, जिसके उत्तर मे आने के लिये शाह ने आप से प्रार्थना की, तथा रक्षा के लिये कई शपथे खाईं, किन्तु गुरु ने उत्तर दिया कि हमको तुम्हारे बचन या शपथ का विश्वास नही, अब भी अत्याचार को बन्द करो, नही तो इसका परिणाम बहुत बुरा होगा, और सिक्ख बहुत बुरी तरह से तुम्हारा मूलोच्छेद करेंगे। पाप का परिणाम बुरा होता है। तुम पर विपत्ति आयेगी। नानक पन्थ को तुमसे अब न कुछ भय और न किसी प्रकार की आशा है। अनन्तर गुरुवर दमदमे मे कुछ दिन ठहरे। यहा दिल्ली से आकर आपकी स्त्रियाँ तथा कुछ सिक्ख लोग आपसे मिले। यही पर दशम राजा का ग्रन्थ नामक पुस्तक आपने बनाई। इसी के अन्तर्गत विचित्र नाटक है। सन् १७०७ मे औरङ्गज़ेब के मरने पर उसके पुत्र बहादुर शाह ने आपको सेनाध्यक्ष नियत किया, किन्तु थोडे ही दिनो मे आपका अन्त समय निकट आ गया। शिष्यों के पूछने पर आपने आज्ञा दी कि आगे से गुरु प्रणाली बन्द की जाती है। जो गुरु के साक्षात्कार के इच्छुक हो, वे नानक के ग्रन्थ का अनुसन्धान करके देखे। मैं सदा ख़ालसा मे बास करूंगा। जहां दृढ़ प्रतिज्ञ और विश्वासी पंचसिक्ख उपस्थित हो जावेंगे, वहां मैं भी उपस्थित रहूंगा। आज से गुरुपद पर ग्रन्थ साहब बिराजेंगे। नादेर ग्राम मे ४८ वर्ष की अवस्था मे इस वीर पुरुष ने अपनी जीवन लीला समाप्त की। यह घटना सन् १७०८ की है।

सिक्ख सम्प्रदाय की कथा का सूक्ष्मतया वर्णन करके अब गुरुओं के विषय में हम अपनी सम्मति लिखेंगे। सन् १७०८ मे गोदावरी के तटपर गुरु की भेट एक उस वैरागी से हुई, जो नवयुवक तथा डोगरा राजपूत था। गुरु के पूछने पर उसने कहा, "मैं आपका बन्दा हू।" तभी से उसका नाम बन्दा पड गया। गुरु के उपदेशो आदि से

प्रभावित होकर वह आपका शिष्य हो गया। गुरु का आज्ञा से उनके पीछे वह पजाब पहुँचकर बदला लेने का काम करने लगा। यह देखकर शिष्य लोग उसके झंडे के नीचे यकट्ठे हुये। बन्दा की उद्दाम आकाक्षा उस सरहिन्द के नाश करने की थी, जहा छोटे छोटे बच्चो का खून हुआ था। सिक्ख सेना ने सबसे पहले दिल्ली जानेवाले मुगलो के खजाने को लूटा। बन्दा ने यह प्रचुर धन सैनिको मे बाट दिया। अनन्तर कैथलनगर लूटकर उसने उस नगर को लूटा, जहा गुरु तेगबहादुर को मारनेवाला, जल्लाद जलालुद्दीन रहता था। यहांपर दस हज़ार मुसलमान बन्दा द्वारा मारे गये। फिर उन्होने मुसलमानो के कई और ग्राम लूटे। तब अपना बल ठीक देखकर गुरु बन्दा ने सरहिन्द पर चढ़ाई करने का मंसूबा बांधा। ऐसा सुनते ही हजारो सिक्ख बन्दा के झडे के नीचे आ गये, क्योकि प्रत्येक सिक्ख की यह प्रबल इच्छा थी कि गुरु गोविन्दसिह के पुत्रो की जो हत्या हुई थी, उसका बदला सरहिन्द से लिया जावै। सरहिन्द को वे गुरु मार कहते थे। बड़ी धूमधाम से चढ़ाई होकर घोर युद्ध हुआ, जिसमे वहा का शासक वज़ीर ख़ां मारा गया और सरहिन्द पर बन्दा का झडा फहराने लगा। वहां के सब मुसलमान स्त्री बच्चो समेत बडी क्रूरतापूर्वक मारे गये। सरहिन्द मे तीन दिन तक लूट हुई तथा वहा के २८ परगनो के मुसलमान हाकिम हटाये जाकर हिन्दू नियुक्त हुये। इस प्रकार सन् १७१० मे सतलज और जमुना के बीच का बहुत सा देश सिक्खो के अधिकार मे आया। अनन्तर बन्दा ने कुछ और प्रान्तो पर अधिकार किया और जहा कही मुसलमानो का अत्याचार सुना, वही जाकर शत्रुओ का दमन किया। धार्मिक जोश अन्धा होता है। न तो धर्मान्ध औरङ्गज़ेब ने देखा कि केवल धार्मिक विचारो के कारण निर्दोष गुरु तेग़ बहादुर का बध तथा हज़ारो लोगो का बलपूर्वक मुसलमान बनाना बुरी बाते हैं, और न क़ाज़ी ने सोचा कि न्यायालय में बैठकर निर्दोष

बालको की हत्या अच्छी बात नही है। इधर गुरु बन्दा ने भी न विचारा कि इतरो के दोष से पूरे सरहिन्द के निर्दोष मुसलमानो तथा स्त्रियो और बच्चो की हत्या अनुचित है। बन्दा की यह विजय चिरस्थायी न हुई। नवम्बर १७१० मे सिक्ख शाही दल से पराजित हुये किन्तु बन्दा पकड़े न जा सके। सन् १७१२ तथा १७१३ मे इधर शाह द्वारा सहस्रो सिक्ख पकड़े जाकर निर्दयता पूर्वक मारे गये, और उधर सन् १७१६ मे गुरु बन्दा ने कलानौर और बटाला पर आक्रमण करके असख्य मुसलमानो को मारा, तथा इन दोनो नगरो को खूब लूटा। अनन्तर कलानौर मे शाही सेना पहुँची, जिससे लड़कर सिक्ख फिर पराजित हुये, तथा बहुतेरे मारे गये। कही कही लिखा हुआ है कि गुरु बन्दा भी मारे गये, और कोई कहता है कि वे भागकर भम्भड़ नामक स्थान पर साधू बनकर रहे। रणजीतसिह नामक एक पुत्र पाकर सन् १७४१ मे गुरु बन्दा ने शरीर छोडा। कोई कोई बन्दा को गुरु मानते है और शेष लोग ऐसा नही मानते। बन्दा एक वैद्युतिक शक्ति सा था, जो गुरु तेग़ वहादुर और गुरुगोविन्दसिह के प्रति दुष्कर्मों का भला या बुरा बदला लेकर रङ्गमञ्च से लुप्त हो गया। उसने लाहौर से पानीपत पर्यन्त सिक्खो की ध्वजा फहराई। सिक्खो मे पहला देश जीतनेवाला गुरु बन्दा ही हुआ। इनका सिक्खमत के बहुतेरे सिद्धान्तो से मतभेद था। इसी कारण इनके अनुयायियों ने इनका पूरा साथ न दिया, नही तो इनका विशेष उत्कर्ष सम्भव था।

गुरु बन्दावाले पराभव के पीछे बादशाह फ़र्रुखसियर ने सिक्खों पर बड़ा कोप किया। पञ्जाब मे कोई लम्बे केश और दाढी नही रखने पाता था। जो कोई किसी सिक्ख को पकड़ा देता था, उसे पांच रुपये इनाम दिये जाते थे, और जो किसी सिक्ख का सर काटकर ला देता था, उसे २५) रु० मिलते थे। किसी सिक्ख की कोई सहायता करनेवाला व्यक्ति अपराधी होता था। इन सब

विपत्तियो के होते हुये भी सिक्ख मत शक्ति बढाता रहा। सन् १७३६ मे जब नादिरशाह ने दिल्ली पर आक्रमण किया, तब सिक्खो ने छोटे छोटे दलो मे विभक्त होकर लूटमार मचाई। जस्सासिह कलाल नामक सिक्ख बडा प्रतापी और निर्भीक हुआ। अमृतसर के पास सिक्खो ने अहमदशाह अब्दाली की सेना से युद्ध किया। १७६४ के पीछे सिक्खो ने लाहौर के शाही शासक काबुली-मल का अधिकार उठा दिया। इस काल सिक्खो का विशाल राज्य स्थापित हो चुका था। थोड़े ही दिनो मे भङ्गी (भांग पीने से), अहलूवालिया, रामगढिया, नाकिया, कन्हैया, दल्लेवाल, निशान वालिया, सिहपुरिया, करोड़ासिही, शहीदी निहंगी, फुलकिया और सुकर चाकिया नाम्नी १२ सिक्ख मिसलैं स्थापित हुईं जो पञ्जाब के विविध प्रान्तो मे शासन करती थी। सबसे पुरानी मिसल १७१० मे स्थापित हुई थी। अन्य मिसले भी धीरे धीरे जमती रही। सन् १७८० मे पञ्जाब केशरी महाराजा रणजीतसिह ने जन्म ग्रहण किया। जून १८३६ मे आपका शरीरान्त हुवा। आपने प्रायः सारा पञ्जाब और कश्मीर जीतकर अपना विशाल साम्राज्य स्थापित किया। पीछे इनके उत्तराधिकारी इस बल को चला न सके, और २६ मार्च सन् १८४६ को यह राज्य अँगरेजी अधिकार मे आया। इस समय सरकारी पञ्जाब मे तीस लाख चौंसठ हज़ार सिक्ख है, तथा देसी रियासतो एव भारतोय अन्य प्रान्तो मे मिलाकर दो तीन लाख सिक्ख और होगे। पटियाला, नाभा, झींद और फ़रीदकोट नाम्नी चार रियासतैं सिक्खों को अब भी हैं, जिनमें पटियाला प्रायः १,३५,००,०००) रु० वार्षिक आय की है, और शेष ऐसी बड़ी नही है।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, सिक्खो मे दस गुरु हुये है, जो दस बादशाहिया भी कहलाती हैं। इनमे से प्रथम पाच तथा अन्तिम गुरु हिन्दी के कबि भी थे, और इनकी रचना का सिक्खों मे

इतना बड़ा मान है कि गुरु के स्थान पर अब ग्रन्थ साहब ही की स्थापना है। इस पुनीत ग्रन्थ का नित्य पाठ सिक्खो का परम धर्म है, और इसका प्रत्येक पद ऐसा पवित्र माना जाता है कि उसके एक शब्द मे परिवर्तन कर देने के कारण गुरु हरराय साहब ने अपने जेठे पुत्र का परित्याग ही कर दिया। इन कारणो से सिक्ख मत के प्रादुर्भाव मे हम हिन्दी कविता का भारी प्रभाव मानते है। यद्यपि ग्रन्थ साहब की महिमा मे रचयिता गुरुओ का माहात्म्य एक प्रधान कारण है, तथापि है मान कविता का ही। अतएव सिक्ख मत पर कविता का भारी प्रभाव माना जा सकता है, विशेषतया इसलिये कि अब वही ग्रन्थ इनमे गुरु के स्थान पर है। हिन्दी साहित्य के मुख्यागो मे कवि और कविता दोनो सम्मिलित है। सिक्ख सम्प्रदाय पर इसके गुरु कवियो तथा उनकी रचनाओ का पूरा प्रभाव पड़ा है। अतएव इसका वैभव हिन्दी साहित्य के प्रभाव से पूर्णतया प्रभावान्वित कहा जा सकता है। इसके वर्णन मे पतनोन्मुख मुगल साम्राज्य की धार्मिक दुष्कृतियां भी आगई है, सो यह पूरे देश की तत्कालीन दशा का एक उदाहरण सा है।

सिक्खो के प्रथम तीन गुरु तो पूरे महात्मा मात्र थे, किन्तु चौथे से सांसारिक वैभव की वृद्धि हुई। गुरु अर्जुन की हिसा से सिक्खो मे सामरिक जोश पैदा हुआ और गुरु तेग़ बहादुर की हत्या से उनमे मोगलो के प्रति घोर वैर स्थापित हुआ, जो गुरु गोविन्दसिह के दोनो बालको के अपघात से घोर घृणा मे परिणत हुआ। यद्यपि गुरु गोविन्दसिह अपने जीवनकाल मे बदला लेने की अपनी शपथ को पूरी न कर सके, तो भी उन्होने खालसा चलाकर वह प्रचड शक्ति स्थापित की जिसने सिर पर ही शाही बल होते हुये भी उसका पूरा सामना किया, और सौ वर्षो के भीतर उसे धोकर बहा दिया। सिक्खो मे गुरु नानक, गुरु तेग़ बहादुर, गुरु गोविन्दसिह और महाराजा रणजीतसिह नामक चार परम प्रधान व्यक्ति हुये हैं।

सामरिक शक्ति जगाने मे गुरु गोविन्दसिह और महाराजा रणजीत-सिह की महत्ता है। आत्मबलि गुरु तेगबहादुर तथा गुरु गोविन्द-सिह की कड़ी थी। इन्होने सब कुछ देकर सार न दिया, जिससे सिक्खो मे अपूर्व शौर्य एव जातीयता स्थापित हुई। सिक्ख मत उठा तो हिन्दू मुसलमानो को मिलाने के लिये था, परन्तु राज-नीतिक एवं धार्मिक कट्टरपन से प्राय· एक शताब्दी भर मुसलमानो का घोर शत्रु रहा। यह शत्रुता सिक्ख विजय के साथ समाप्त हुई। दस गुरुओ मे सभो ने चरित्रबल के उच्च उदाहरण दिखलाये। कोई पोच काम किसी गुरु ने न किया।

सूदनकृत सुजान चरित्र।

सन् १७४५ की दशा।

तब तौ वकील सिताब ही कर जोरि कहिय सुजान सो।
रहिहै नवाब फतेअली जो राखि लेहु भुजान सो॥
निकस्यो सुन्यो पुर इन्द्र ते जब ते असद खा कोर को।
तब ते सुसाबित खान जू निरखैं तिहारी ओर को॥
दस सहस बाजि दराज साजे अरु अराबो संग लै।
दर कूच आवत है चला मन माहिँ जग उमग लै॥
देखे महाल जितेक सुन्दर भानुजा मधि गंग के।
इनमे न एकौ छोड़िहै वह असद खा बल जग के॥
क्या कोल टप्पर नोह जेवर सहित ईखू लेइगा।
चंडौस खुरजा हाथकरि तब पायँ आगे देइगा॥
इस वासते तुम से अरज बहु भाति कीजत है बली।
अब हाथ उस पर रक्खिये तब लेइ जग फतेअली॥

उपरोक्त कथन साबितखा के पुत्र फतेहअली के दूत ने सूरजमल से किया था। असदखां बादशाह अहमदशाह का अफ्सर फौज था। उसके लिये अलीगढ़, टप्पर, चंडौस, खुरजा आदि छोटे छोटे स्थान ही ले लेना एक बहुत बडा काम समझा जाता था। फतेहअली

उसी प्रान्त का ज़िमीदार था, तथा सूरजमल भरतपुर नरेश बूदनसिह जाट के पुत्र थे। वह भी जिमीदार ही कहे गये है। राजविद्रोह उस अवसर पर ऐसा साधारण काम समझा जाता था, कि फतेहअली पर दबाव पडने से बिना किसी लोभ के भरतपुर ने उसका साथ दिया। सहायता का बचन पाकर फतेहअली ने असद-खां से जो सन्देशा कहला भेजा वह विशेषतया द्रष्टव्य है।

उद्धत असद्खान कुद्ध को निधान जानि
लेन उनमान फतेअली ने पठायो दूत।
कहियो नवाब सो सलाम मै भी हाजिर हौ,
जानत न कौल दरपुस्त यह मेरा कूत।
ईधर न आवो तौ मेहेर फुरमाओ मुझे,
वन्दे हम साह के हमेसा हमैं तुम्हैं सूत।
खातिर न आवै तो सुबाही बन्दा बन्दगी मे
मौला जिसे देइगा रहैगा खेत मजबूत।

यह छन्द तत्कालीन मुगल प्रभाव का अच्छा उदाहरण है। मौखिक अधीनता मानने को सब तैयार थे, किन्तु उस अधीनता से शाह कोई लाभ उठाना चाहते, तो युद्ध रक्खा हुआ था। स्थानीय लोग कहने को तो ज़िमीदार थे, किन्तु वास्तव मे अपनी अपनी भूमि के राजा थे। असद् ख़ा ने उत्तर भेजा कि "मुझे आया जानि जाया मानै तो ठिकाने रहि फजर की गजर बजाऊं तेरे पास मैं।"

ऊतर यह दैके दूत पठैकै असद्खान हिय रोस भरयो।
बोल्यो सब बीरन कुल के धीरन जिन न चरन रन उलटि धरयो।
तुम करौ तयारी सब इस बारी मैं दिल यह इतकाद करयो।
मुझको तो लरना, देर न करना आइ साहि का काज परयो।
खानजादे सबै बीर बादे तही। आपु कीया सहो होयगा सो वही।
पै इती बन्दगी भी हमारी सुनौ। रोज दो तीन मैं लै हरीफै धुनौ।
फौज केती इतै और बेरी किते। सोध लीये बिना जंग कोई जिते।

एक तौ जानते हो फतेही अली। जट्ट दूजा हुआ संग ताके बली।
आपनी फौज तौ आवती है चली। होय दूनी तवै जंग कीजै भली।
और कीजै इकट्ठे जिमीदार भी। चाहते जो हमैं वार भी पार भी।
हाल तो हस्त हज़ार घोड़े सही। तोपखाना कछू त्यार हूआ नहीं।
बीस हज़ार असवार दिन दोय मैं। साथ हूये लरैं ताव है कोय मैं।
आप डेरा करौ एक कै दो दिना। जंग कोऊ करै जंग कीये बिना।
यो हमे बन्दगी को बजाये बजा। और कीजे वही आपकी जो रजा।

ऐसी अरज करी उमरावन, असदखान फरमायो।
तुम जो कही सही मैं मानी दिलको दरद न पायो।
जो न लरौं हौं काल्हि उन्होसे तौ दिल अन्दर मानो।
फते अली सूरज के लोगो घेरा कीया जानो।
अरु तुम कहत फौज का आवन सो आवन नहिँ पावै।
दाना घास घीव आटा जब रुपये सेर बिकावै।
औरौ सुनो खानजादा है घेरा क्या जु करावै।
इस जीने से मरना भरना लरना ही बन आवै।
जाना होय जाउ सो डेरे मैं भी इसमे राजी।
मेरा भी फरजन्द चलैगा मेरा मान कहाजी।
सु निसा साम जाय सो जावै एक जाम जब साम रहै।
डका दें असवार होहुँगा बड़ी फजर समसेर बहै।
जो कोइ चला बिदा कर उसको असदखान फुरमाय उठ्यो।
पहर राति सो होहि नगारा ख्वाब गाह को गयो रुठ्यो।

यहां पर प्रकट है कि असदखां बादशाह की ओर से निकला हुआ देश वापस लेने तो चले थे, किन्तु सेना इतनी कम थी कि फतेहअली को सूरजमल की सहायता मिलते ही उनकी दशा अवाञ्छ-नीय होगई। बढ इतना आगे आये थे कि या तो मरने के लिये प्रस्तुत होते या घेरे मे पड़ते। उन्होने घेरे से मरना पसंद किया। जिन जिन लोगो ने भागना चाहा उन्हें तथा अपने बेटे तक को वापस

करके स्वयं असदख़ान निश्चित मृत्यु के मुख मे घुस गये। ये बहादुर, शानदार तथा राजभक्त किन्तु समरकौशल मे कोरे थे। पहले तो बिना सोचे समझे इतना आगे बढना ही न था, फिर गये थे तो घेरे तक मे पड़कर युक्तिया निकालते न यह कि शान के कारण शाही फ़ौज कटवा डालते, जैसा कि अन्त मे हुआ। इस युद्ध वर्णन से प्रकट है कि शाही दल मे समरकौशल की कमी थी।

सन् १७४८ की दशा।

असदखान के मारे जाने से तीन बरस के पीछे शाह ने अपने बख़शी सलाबतख़ा को सूरजमल पर चढ़ाई करने को भेजा। उनके साथ तीस हज़ार सवार अथच पैदल, हाथी आदि थे। सरदारों मे अलाकुली, रुस्तमख़ां, हकीम खा, कुबरा और फ़तेहअली बखशी के साथ थे। जिन फ़तेहअली के कारण सूरजमल से शाह की बिगडी, वही उन्ही से लडने आये शाह की ही ओर से। इस बात से उस समय की दशा प्रकट होती है, कि शाह से मित्रता तथा शत्रुता कितनी शीघ्रता से हो सकती थी। फतेहअली को शायद विवश होकर आना पड़ा था क्योकि उन्होने सूरजमल के प्रतिकूल प्रयत्न कुछ भी न किया। सूरजमल के वकील ने बख़शी के पास जाकर यह विनती की।

कुँवर बहादुर ने प्रथम तुम को कही सलाम।
फेरि कही कि नवाब इत आयेहै केहि काम॥
करत चाकरी साह की हम पायो यह देस।
ताहि उजारत आप क्यो ऐसे कह्यो सँदेस॥
जो कछु कह्यो दिलीस ने तुम्हे तौन कहि देउ।
ता माफिक हमसो अबै आप चाकरी लेउ॥
इसी गल्ल धरि कन्न मे बकसी मुसक्याना।
हम नूं बूझत हौ तुसी क्यो किया पयाना॥

असी आवणे भेद नू अब लो नहिँ जाना।
साहि अहम्मद ने मुझे अपना करि माना॥
तखत आगरा ग्वालियर हिंडौन बयाना।
होडिल पलवल अलवरौ मेवात सध्याना॥
वार पार मथुरा तलक हूआ फरमाना।
बकसी की जागीर दे बकसी मे ठाना॥
इनमे ते जो तुझ तरे तहॅ करियौ थाना।
दो करोर दे साहिनूं सॅग होहि सयाना॥
होर कह्या है साहि ने सोभी सुन जाना।
असदखान सरकार दा चाकर क्यो भाना?
तै अपने मन मे गुना बूडा तुरकाना।
कै यक गल्ल कबूल करि कै हो मरदाना॥

अत· बख़शी की शर्ते थी कि कुछ देश दो, दो करोड दड दो, तथा फ़ौज लेकर आगेवाली मुहीमो में सहायता दो। वकील ने उत्तर दिया।

वह बन्दा है साहिदा दर पुस्त पुराना।
जमी न अगुल छोड़सी यह उसका बाना।
मैं नू रुख़सत दीजिये नाहक बतराना।
हुण बन्दा दुहु ओर दा बन्दगी सुजाना।

इस पर युद्ध हुआ और रुस्तम ख़ा तथा हकीम ख़ां लड़ते रहे, किन्तु अलाकुली, फतेहअली, अथच कुबरा भाग खडे हुये। कुछ देर मे रुस्तम ख़ा तथा हकीम ख़ा मारे गये।

तोम तम छाये सुलतान दल आये,
सो तो समर भजाये उन्हे छाई है अचक सी।
काल कैसी रसना कराल करवाल
तेरी ब्याल भालि काटिकै करन लागी तकसी।

सूदन सुजान मरदान हरि नारायन देव
हरदेव जंग जीति तोहि बकसी।
जूझत हकीम खां अमीरन के धकसी
औ बकसी के दिल मे परी है धकपक सी।

इस पर बखशी ने अपने ही अधिकार से सन्धि कर ली, तथा देश एवं दो करोड का दंड छोड़कर केवल भरतपुर का कुछ सहायक दल साथ ले जयपुर की राह ली।

कहि भेज्यो जुनवाब ने सो सब सुनी सुजान।
कही कि कह्यो नवाब सो हम को सबै प्रमान॥
बे अदबी हमते बनी ताहि न राखैं चित्त।
ज्यो चाकर हम साहि के त्यो नवाब के निच॥
बिनती एक नवाब सो मेरी रुखसद देहिँ।
लालासिह जवाहिरै अपनो हरवल लेहिँ॥

जवाहिरसिह, सुजानसिह उपनाम सूरजमल के पुत्र थे। अतएव असदख़ा, रुस्तम खा तथा हकीम ख़ा मुफ़्त मे कटे, और राजविद्रोही सूरजमल राजसेवक हो गये, सो भी केवल बख़शी की आज्ञा से। इन बातो से प्रकट है कि शाही गतप्राय थी।

सन् १७४६ की कथा।

नवाब वजीर सफ़्दर जग के कारकुन नवलराय का फर्रुख़ाबादी बंगश पठान से नवाब के निजू काम मे युद्ध हुआ, जिसमे वह मारा गया। इस पर वज़ीर मंसूर उपनाम सफ़्दर जग ने सूरजमल से सहायता मागी।

ब्रजराज कुँवर सुजान। तुझ सा न हिन्दू आन।
यह देखतै फरमान। करना मुझै बलवान।
इस वक्त ढील न होय। चढ़ि आवना सब कोय।
हम से तुम्हैं इखलास। दर पुस्त से यह रास।

कुछ खर्च को नहिँ ढील। है लाउ पैदल पील।
नहिँ देर का यह बख्त। मुझ पै पडी अब सख्त।

यह सुनकर दरपुश्त के राजभक्त सूरजमल सेना सन्नद्ध करने लगे। इतने ही मे दूसरा रुक्का आया कि देर का वक्त नही है, और इसके बांचते ही रवाना हो जावे। मिलने पर नबाब ने सूरजमल से कहा।

नवलराय मार्‍यो नही, मार्‍यो मोहिँ पठान।
तौ लौं कल नहिँ देउँगो, जौ लौ इस तन जान॥
जौ लौ इस तन जान पठान न रक्खिहौं।
मऊ फरक्काबाद खोदि कै नक्खिहौं॥
बंगस बस बिदारि नारि नहिँ छंडिहौं।
बिन पठान करि भूमि फेरि घर मण्डिहौ॥
रमजानी औ इसा खा मीर बका ये साथ।
आये जुजबी फौज से नही बड़ा बल हाथ॥

नही इन्हौं के साथ रिसाले साह के।
रेजा और अमीर न खातिर खाह के।
मेरा तो इतकाद एक है तुज्झ सो।
अब करना सो कहौ कुँवरजी मुज्झ सो।

सूरजमल ने उत्तर दिया कि भरतपुर की सब सेना आपही की है। ८०००० घोड़े वज़ीर के साथ थे और १५००० सूरजमल के। वही हरौल हुये। यह खबर पाकर अहमद ख़ा पठान का हाल कैसा हुआ, उसका चित्र कवि ने सामने रख दिया है।

यह सुनि अहमद खां पठान ने सब पठान सो भाखी।
अब उजीर आयो समुहायो तुम क्या मसलति राखी?
आवन कहत रुहेले ते भी आये कछू न आये।
जिन्हैं तेग बाधे की हिम्मति ते क्या रहै दुराये?
भाई कायम खां से कहना जेते बड़े कहाये।
ते सब कटैं हटै नहिँ रन सो सब ही काम सु आये।

रुस्तम खा भाई से कहना अब हरीफ चढ आये।
मऊ पठान बारहे सैयद काहे बिरद कहाये।
यह सुन अहमद खां का कहना सब पठान उठि धाये।
जो पठान उसको तो लड़ना ऐसे बचन सुनाये।
बङ्गस की लाज मऊ खेत की अवाज आज
सुने ब्रजराज से पठान बीर बबके।
भाई अहमद खान सरस निदान जान
आया मनसूर तो रहै न अब दबके।
चलना मुझे तो उठ खडा होना देर क्या है,
बारबार कहे ते दराज सीने सबके।
चण्ड भुजदण्ड वारे हयन उदण्ड वारे
कारे कारे डीलन सँवारे होत रब के।

चलत अहम्मद खान के जेती जाति पठान।
लड़के जोरू संग धरि आये बुद्धि निधान॥

कञ्चन कलित तुरङ्ग बलित कञ्चन दुति भूषन।
बिसद बसन धनु बान धरिय जनु चन्द मयूषन।
तेगा तीछन हत्थ किते नेजान फिरावत।
ठुक्कत तबल निसान असित धौवत फहराव्रत।
सित असित ढब्योरे दीह तन सजि सनेह रोसन सने।
बङ्गस सुभट्ट सङ्घट्ट ह्वै करि उभट्ट चाहत रने।
सुनि सफदर जगै, चित धरि जगै, करि सिलाह उच्छाह मढ़े।
दस सहस रुहेले सार सकेले गङ्ग पार ते उतरि ठढ़े।
दै दुन्दुभि डके होत निसके क्रूरग्रह ज्यो कोपि कढ़े।
अहमद खां संगै करत उमगै ठानि अठान पठान चढ़े।

सफदर जंग नवाब तें पांच कोस के बीच।
गंगा खादर देखि कै डेरा किया नगीच॥

रुस्तम खा अरु हवस खा सुत सुजात करि टेक।
सुनि कै अहमद खान को आये सूर अनेक॥

उपरोक्त वर्णन मे पठानो की ओर से जातीयता के विचार दृढ देख पड़ते है, तथा वज़ीर की ओर से अधिकार स्थापन के। यह प्रकट नही है कि वज़ीर का पठानो से झगडा बादशाह के काम से था अथवा वज़ीर के निजी प्रान्त अवध के सम्बन्ध मे। नवलराय अवध के प्रबन्धकर्त्ता थे, और इस वर्णन से भी समझ पड़ते है। सो झगड़ा बादशाही की ओट मे वज़ीर का निजी देख पडता है। शाही बल के क्षीण होने से प्रान्तीय शासको तथा इतरो ने जो देश दबाये थे, उन्ही के गड़बडो का चित्र सुजान चरित्र दिखलाता है। युद्धारम्भ के पूर्व सूरजमल पठानो के दल को एकत्र करने के डौल में लगे, जिसका वर्णन यो है :—

तीनि कोस सूरज भुव लिन्निय। घेरि पठान सबै इक किन्निय।
चारिहु ओर धूम करि दिन्निय। तऊ पठान रोस नहिँ भिन्तिय।
आसपास दलदल बहु पिक्खिय। याते रारि होत नहिँ दिक्खिय।
कछू पठान बान दै बुट्टिय। इतहु दबान बान बहु छुट्टिय।
ऐसे दोय तीनि दिन बित्तिय। बङ्गस सुत भेदहि चित चित्तिय।
बोलि दूत तेहि बार पठाइय। सूरज पास जाहि तू भाइय।
मेरा अवल सलाम सुनाइय। पाछे कहना सो सुनि जाइय।

भाई सूरज मल्ल से कहना यह भाई।
हम तुम बन्दे साह के बुज्झै न लराई॥
जो तुम सङ्ग वजीर के तो भी नहिँ बुज्झै।
जिमींदार से आयकै जिमिँदार अरुज्झै॥
इस वजीर दा सङ्ग क्या करना था तुज्झै।
जिसको अपना गैर का कुछ सोच न सुज्झै॥
जबती करने आइया हम भी यह जानी।
जो कछु माल था सो दिया उसने कपठानी॥

कसम खाय के गङ्ग का यह मुलक बताया।
तोप रहकला माल लै सब ओल सिधाया॥
बैठि जहांनाबाद मे तो भी न सिराया।
नवलराय मरदूद को हमपै सिखलाया॥
उसने चारो ओर से यह मुलुक छुडाया।
तब चारिक खन्दे मिले वह मार गिराया॥
यह लोभी इस देस दा हमपै खुनसाया।
ओल हमारा साहसे ले जब्त कराया॥
एते पै सब फौज ले देखो चढ आया।
अब इससे हमसे वही जो रब्ब बनाया॥
हम तो अच्छे आपसे यह कह पठवाया।
तुमसे लड़ना है नही क्यो आन दबाया ?
सफदर जग नवाब से मेरा है दाया।
उसको आगे दे लड़ैं कीजै मन भाया॥

उपरोक्त सन्देशो मे भी तत्कालीन दशा का चित्र है। शाही दल से युद्ध कर ही रहे थे और शाह के बन्दे बनते ही जाते थे। एक अंश मे बात भी ठीक थी। शाही शक्ति के ह्रास से साम्राज्य भङ्ग हो ही चुका था, और प्रश्न इतना ही शेष था कि कौन कितनी भूमि लेवैं ? शाही सेना के जीतने से भी भूमि शाह को न मिलकर मंसूर को मिलती। ऐसी दशा मे पठानो का जाटो से यह कहना था कि जब तुम को इस भूमि पर दावा है नही, तो स्वय ज़िमीदार से लड़ने क्यो आये हो ? क्योकि शाह के लिये जैसे पठान वैसे सफ़दर जंग वज़ीर उपनाम मंसूर। सूरजमल के इस बात को न मानने पर भी पठान ने यही कहा कि जब तक वज़ीर को न देखूंगा, तब तक और से न लड़ूगा। अनन्तर युद्धारम्भ हुआ और सात सहस्र सवार लेकर रुस्तम खां सूरजमल के १५,००० सवारो से युद्धोन्मुख हुआ तथा अहमद खां मंसूर के सामने आया।

पिल्ले रुहिल्ले सुमिल्ले करी पास । मिल्यो इसाखान झिल्यो नही त्रास ।
चल्ले खरे खग्ग गिल्ले भये रत्त । छिल्ले घने गत्त चिल्ले नही मत्त ।
वुल्ले कुजा हस्त ईं वक्त मसूर । वुल्यो इसाखान मन् खेत मे पूर ।
यो भाषतै राखतै ज्यो कढ़ी ज्वाल। सब्बै रुहिल्ले किये नैन यो लाल ।
त्योही इसाखान हू खैचि कम्मान । ताने घने बान चोखी धरे सान ।
तब्बै रुहेलेनु लै लै करी रेल । खेलैं मनो फागु देले भये मेल ।
कोई चढ़यो दन्ति दै दन्त पै पाव । काहू गही पुच्छ की राह कै दाव ।
केती छनाछन्न बाजी तहा तेग । मानो मघा मेघ मैं चञ्चला बेग ।
किन्नो इसाखान को मारि कै चूर । कट्टयो जऊ सीस हट्टयो नहीं सूर ।
हाथी सुधा सब्ब साथी पस्रो खेत । सग्राम मे स्वामि के काम के हेत ।
कुट्टयो इसाखान लुट्यो धरा पिट्ठि। बुट्टयो लखे छुट्टि मसूर हू निट्ठि ।
मसूर को भागनो सो कहै कौन ? मानो घटा गौन लागे महापौन ।
अस्सी सहस् बाजि छोड़ी सबै लाज । जैसे कुलगा बुटे देखतै बाज ।
जा खेत मसूर भाग्यो सुधा मीर । ता खेत सूजा रुप्यो है महाधीर ।
चल्लियो वजीर हू तऊ न हल्लियो सुजान ।
रल्लियो उठाय बाग दल्लियो घने पठान ।

एकै एक सरस अनेक जे निहारे तन
भारे लाज भारे स्वामिकाज प्रतिपाल के ।
चंग लौं उड़ाई जिनि दिली को वजीर
भीर पारे बहु मीरन किये है बेहवाल के ।
सिह बदनेस के सपूत श्री सुजानसिह
सिह लौं झपटि नख दीन्हे करवाल के ।
वेई पठनेटे सेल सांगनि खखेटे भूरि
धूरि सो लपेटे लेटे भेटे महाकाल के ।
रुस्तमखां तन दै छुट्यो भागि छुट्यो मनसूर ।
अहमद खा सूरजबली दुहू रहे मगरूर ॥

इस अवसर पर रुस्तम खा की सेना के भागने से सुजान की फौज उसका पीछा करते हुये आगे बढ गई, और यह केवल साठ सवारो सहित पलास बन मे रह गये। तब भी रुस्तम खा का निधन जानते हुये भरतपुर से प्रीति रखने के विचार से अहमद खा ने इनपर आक्रमण न किया। इस युद्ध वर्णन से प्रकट है कि शाही दल पठानो से दूने से अधिक होकर भी सेनापतियो की कायरता से पराजित हुआ और उससे एक क्षुद्र शत्रु भी न जीता गया, यद्यपि सूरजमल ने अपने सामने के पठानो को पराजित कर दिया। यह बात दिल्ली दल की शक्तिहीनता को प्रकट करती है। इस प्रकार नतमस्तक होकर वज़ीर ने इन्दौर से मल्लारराव होलकर को बुलवाया और उन्होने केवल पचास हज़ार अपने तथा १५००० सुजानसिह के सवार लेकर पठानो को पराजित कर दिया।

उतते धायो तातिया इतते सिह सुजान।
दुहु दपटि दल मैं परे जेहिँ थल रुपे पठान॥

कटे भू पते सो हटे खेत पट्ठान। जहां सिह सूजा कस्यो घोर घम्सान।
परें चारिहु ओर ते दक्खिनी टूटि। भजे खेत पट्ठान लीने कछू लूटि।

ह्वै कलकान पठान समौ मन माहिँ बिचास्यो।
करि मलार सो सन्धि बखत आपनो गुदास्यो।
तीनि भाग महि करी एक मनसूरहि दीनी।
दूजी दई मलार एक अपनी करि लीनी।

इस प्रकार मल्लारराव की सहायता से विजय पाने पर मंसूर को तिहाई भूमि मिली और तिहाई मल्लारराव ने ली, तथा पठानो के पास शेष तृतीयाश ही रह गई। इस प्रकार उस काल भारत मे राज्य बना बिगडा करते थे। सूदन ने इसका परम संजीव चित्र दिखलाया है। आपने शत्रुओ तक के पौरुष एवं विचारो का चित्र खीचने मे उनके साथ अन्याय नही किया है। इसीसे इनका ग्रन्थ अच्छे ऐतिहासिक मूल्य का है। सन् १७४६ में वज़ीर की इतनी सहायता

करके भी सूरजमल के हाथ कुछ न लगा। इसी से वज़ीर ने अपने शत्रु घासहरे के राव की भूमि इन्हे दे दी, और इन्होने उसे मारकर सन् १७५२ मे विजय प्राप्त की। इस अवसर पर भी शत्रु के विषय मे सूदन कवि ने कहा है कि,—

अड़ राखी ऐंड राखी मैंड रजपूती राखी
राव रज राखि राह लीनी सुरपुर की।

सन् १७५३ मे ईरानियो तथा तूरानियो के झगड़ो से दिल्ली मे आन्तरिक कलह उपस्थित हुई।

पातसाहि अहमन्द के हो वजीर मनसूर।
पोता मलिक निजाम को हो बकसी मगरूर॥
तूरानी बकसी भयो ईरानी सु उजीर।
नाचाखी दोऊन मे दिल्लीपति के तीर॥
एक रोज पतसाह की बकसी लै मरजी।
बिन वजीर दीवान मे कीन्हीं यह अरजी।
हजरत सफदर जग ने क्या अदब बजाया।
नाजिर फिदवी साह का दै दगा खपाया।
हो वजीर हिंदुआन दा यह नाम बढ़ाया।
नाहक उरझि पठान से भगना ठहराया।
दौ मिलाय दखनीन कौं सब मुलुक लुटाया।
साहिजहानाबाद मे जद सैं यह आया।
तद सै हुकुम हजूर दा नहिं एक बजाया।
सो सुनि कै पतसाह भी दिल मे सब लाया।
तिसी वक्त मनसूर से यो कह भेजवाया।
जाना अपने मुल्क को हजरत फुरमाया।
जद यो सुना वजीर ने दिल मे खुनसाया।
तूरानी मिलि साह से यो बैर बढ़ाया।
ईरानी मनसूर को पुर ते कढ़वाया।

बडा कुँवर अरु कायदा मनसूर गँवाया।
जुजबी फौज निहारि कै पुर मे मँडराया।
जे रफीक थे आपने तिनको बोलवाया।
चाकर मेरा है वही जो आवै धाया।
पूरब से निज फौज कूं जलदी फुरमाया।
घासहरे को कुँवर भी फरचा करि आया।
खबर पाय मनसूर भी खुसियो से छाया।
तिसी वक्त मनसूर ने फरमान लिखाया।
रहमति दै कहि आफरीं इलकाब बधाया।
कुँवर बहादुर आवना करि मेरा साया।
तूरानी गलबा दिया मुझको अकुलाया।
इसी वक्त के वासते इखलास बँधाया।
चाहौ मेड़ी जिन्दगी तो आवो धाया।

इस फ़रमान के पाते हो सूरजमल घासहरे से ही १५००० सवार लिये हुये सपुत्र आ पहुँचे। मनसूर ने उनसे कहा कि "अब तो दिली दहपट्ट करनी है सही।"

जब यो कही मनसूर सूरज सो सबै।
समुझाइयो सु उजीर को बहुधा तबै।
तुम हौ पनाह सनाह या हिँदुवान कें।
नहिँ आपु लायक बात ए गुन आन के।
गहि एक के कुबिगार त्रासत देस के।
रहिहै यही कुकलंक पेस हमेस के।
अब तो यही जु सलाह है मिलि साहि सो।
करिकै दिलोपति हाथ जंग जुताहि सो।

फेरि मनसूर बोल्यो यही। सिंह सूजा कहा तैं कही?
टेक तूरानियों की रही। आब मेरी जिन्होने लही।
साहि भी है उन्ही का सही। होयगा क्यो हमारा वही?

आस मैं एक तेरी गही। आप उम्मीद मेरी दही।
एक फरजन्द जल्लालदी। दोम बीबी उसे पालदी।
आपने संग लीजै इन्हें। जिन्दगी चाहिये है जिन्हें।
गोद ये होहिँ तेरी बली। सीख दीजै मुझै जो भली।
जंग कैहो दिली सो करौं। नेस नाबूद बैरी अरौं।
नाहिँ तो सीस टोपी धरौं। हाल ही जाय मक्के मरौं।

इस दैन्य से निरुत्तर होकर सुजानसिंह ने हामी भरी कि अब अहमद शाह का स्वामिभाव नष्ट होगा, मुग़लो का मान मर्दन होगा, आपके शत्रु मरेंगे, बख़्शी कटैगा, और दिल्ली लुटैगी, किन्तु चग़ताई वंश की लाज रखने को उसी कुल से किसी को बादशाह बनाया जावै।

हम चाकर है तखत के सखती करी न जाय।
यह उपाय करिहौ अपुन तौ बल सबै बसाय।
चारि लाख बदनेस के हैदल पैदल त्यार।
ते नवाब के जानियो हुकुम बजावन हार।
अब दिन द्वै मैं रामदलु आयो जानौ पास।
श्री हरिदेव भली करैं क्यो तुम होत उदास?
यह सुनि कै मनसूर दोऊ कर ऊंचे करे।
फिरि मुख आयो नूर कह्यो बहादुर आफरी।
इस डाढी की लाज कुँवर बहादुर है तुम्हैं।
है यह काज दराज होवेगा तुझ हाथ से।
अब सवार तुम होहु जाइ मादगी कटक की।
कालिह बजावैं लोहु साहि तख्त बैठारि कै।

अनन्तर कामबख़्श के पौत्र को अकबर अदल की पदवी देकर शाह बनाया गया, और सब उमरावो ने मान दिया। मंसूर के साथ १२००० सवार हुये तथा सूरजमल के साथ १५००० पैदल और भी थे। उसी दिन तोपख़ाना छीना गया, अथच १२ पुरा लूटे गये। अनन्तर सूरजमल की सेना ने दिल्ली लूटी जिसमे हिन्दू

मुसलमान दोनो लुटे। बहुत सा धन और माल प्राप्त हुआ। इस लूट का वर्णन कवि ने बहुत कुछ किया है। उदाहरणार्थ कई पद यहां लिखे जाते है।

मुगल मलूकजादे सेख बे सलूक प्यादे
सैयद पठान अवसान भूले लापते।
आया रोज क्यामत मलामत से पाक हुये
रहैगा सलामत खोदाई आप आपते।

अस कस कीन्ह ख्वार दिली का नवाब ख्वार
चीन्हत न सार मनसूर जट्ट ल्यावा है।

महल सराय से रवाना बुआ बूबू करौ
मुझे अफसोस बड़ा बड़ी बीबी जानी का।
आलम मे मालुम चकत्ता का घराना यारो
जिसका हवाल है तनैया जैसा तानी का।
खने खाने बीच से हमाने लोग जाने लगे
आफत ही मानो हुआ ओज देहेकानी का।
रब की रजा है हमैं सहना बजा है
वक्त हिन्दू का गजा है आयां छोर तुरकानी का।
खारौ खतरानी कतरानी सतरानी फिरैं
बांभनी बिन्यानी तुरकानी थररानी हैं।
कायथी अरोरी थोरी बैसनि तमोरी गोरी
काछिनी किरानी औ भड़्यानी भहरानी है।

अनन्तर लूट बन्द हुई और दोनो ओर से युद्ध आरम्भ हुआ। दिल्ली का दुर्ग इन दोनो का तोड़ा न टूटा। तब ये वहा से कुछ दूर चले गये। बख़शी इनकी पराजय समझकर क़िले से बाहर आ

आकर तीन बार लडा और तीनो बार हारा। इधर इनसे क़िला न टूटा और उधर बादशाही दल बाहर के युद्धो मे पराजित रहा। तब बख़शी ग़ाज़िउद्दीन खा विजय से निराश होकर जयपुर के महाराज माधौसिंह और इन्दौर के मल्हारराव होलकर से सहायता मांगने पर विवश हुआ। वह मंसूर के स्थान पर वज़ीर हो चुका था, और बख़शी सम्सामुद्दौला हुआ था।

तब फरमान लिखाय बहुत अलकाब दै।
भाईपनौ जताय तेग सिरपाव दै।
अकबर मान समान आप दिल मानियो।
इसू वख़्त से सख़्त और नहिँ जानियो।
हस्त रोज के बीच जस्त करि आवना।
दस्त आपके पस्त हरीफ करावना।
यो फरमान लिखाय डाल चलवाय कै।
माधौसिंहहि पास दियो पठवाय कै।

फेरि दक्खिननि को लिख्यो आपु गाजदी खान।
सूरज औ मनसूर मिलि किया तख़्त कलिकान॥
जद सैं किबलेगाह को संग गये लै आप।
तद सैं इन्हो मुख़ालिफी हम से रक्खी थाप॥
अवध आगरा साहि ने तुमको दिया बताय।
नगद फौज का खर्च सो चामिल लेना आय॥
एक चाद के अन्दरौं तुम्हें आवना रास।
यह लिखि सुतुर सवार को भेजा दखिनिनु पास॥

जब सूरजमल और मनसूर ने माधवसिंह तथा मल्लार राव का बोलाया जाना सुना तब उनके आने के पूर्व हो युद्ध करके जीतना उचित समझा। इस युक्ति के पूरे न होने से कुछ दिनो मे माधवसिंह आगये।

प्रथम गाजदी खां मिल्यौ पुनि मसूर सुजान ।
मधुकर ने समुझाइ कै मतो सन्धि को ठान ॥
हम तुम सेवक साहि के हुकुम बजावन हार ।
आपुस के अहॅकार ते होत दिली संहार ॥
यो कहि कै आमेरपति सबको दियो मिलाय ।
साहि अहम्मद सो दुहू दीने बिदा कराय ॥
दिली नरनाह गज ग्राह मनसूर गह्यौ,
माधव ने आय ज्यो छुड़ायो गज ग्राह तैं ।

इस अवसर पर जैपुराधीश के तर्क मे उतना बल न था जितना कि उनके साथवाले १०,००० सवारो मे । दोनो पक्षियो का बल समप्राय था, केवल सुजानसिह के युद्ध कौशल से शाही दल बाहर के युद्धों मे पराजित हो जाता था। जयपुरी सेना शाही दल मे मिल जाने से वह प्रबल हो जाता। उधर बे मतलब को माधवसिह मनसूर से लड़ते नही। सो दोनो पक्षो को सन्धि करना की ठीक दिखा। सन्धि हो जाने से मल्लारराव होलकर को आगरा अवध मिलने का डौल न रहा ।

सन् १७५३ की घटना ।

मंसूर का युद्ध समाप्त होने से ग़ाज़िउद्दीन ने सुजान से बदला लेना ठीक समझकर उनपर आक्रमण के लिये मल्लारराव को उत्तेजित किया। उधर इन्दौर नरेश ने भी देखा कि सुजान ने दिल्ली खूब ही लूटी है, सो शायद उनसे करोड़ दो कड़ोर प्राप्त हो जावैं। बस वह भरतपुर पर चढ दौड़े, किन्तु वहा के वकील ने सुजान का दबना असम्भव बताया। इसी स्थान पर ग्रन्थ समाप्त हो जाता है। मल्लारराव तथा भरतपुरवाले कवि के छन्दो के साथ ग्रन्थ के उदाहरण समाप्त होगे ।

मल्लारराव का बचन।

गुज्ज, भुज्ज, द्रविड, तिलंग, बंग, गौर, गढ़ा,
मंडला, उड़ीसा लै बुंदेल औ बघेलखंड। '
झारखंड, मगध, मलार, गंगापार, डांग,
उमट उचाट झालवाह्न मैं न राख्यो चड।
हाड़ौती, ढुंढाहर, भदात्रर दिलीपति के,
सहित उजीर उमराय राय पाये दंड।
सेवा, सम्भा साह्न राजाराम के जलेबदार,
एक व्रज देस बदनेस ही रह्यो अदंड।

भरतपुर के कवि का बचन।

हारे देखि हाड़ा मन मारे कमधुज बंस,
कूरम पसारे पाँय सुनत नगारे के।
केते पुर जारे केते नृपन सँहारे,
तेई जोरि दल भारे व्रज भूमि पै हँकारे के।
रारे मधुसूदन सँवारे बदनेस प्यारे
व्रज रखवारे निज बस अवधारे के।
होत ललकारे सूर सूरज प्रताप भारे,
तारे से छिपैंगे सब सुभट सितारे के।

जान पड़ता है कि सूदन कवि का शरीरपात हो जाने से ग्रन्थ अपूर्ण रह गया, अथवा सम्भव है कि उनका भरतपूर से सम्बन्ध छूट गया हो या कोई और कारण हो। भरतपूर नरेश ने अपने चारो क़िलो को दृढ किया जिससे इनके राज्य पर तो महाराष्ट्रों का अधिकार हो गया किन्तु कोई भी दुर्ग वे छीन न सके। अन्त मे सन्धि द्वारा इन लोगो का पराभव बच गया और देश की भी पुनर्प्राप्ति हो गई। सूरजमल सन् १७६७ तक जीवित रहे। सूदन का वर्णन सन् १७४५ से १७५३ तक का है, और है बड़ा सजीव। इनका साहित्य बुरा नही है, परन्तु ग्रन्थ का ऐतिहासिक मूल्य बहुत

बढ़िया है, क्योकि कवि ने उस काल का सजीव चित्र ही सामने उपस्थित कर दिया है। १७३९ मे नादिरशाह ने दिल्ली पर अधिकार करके लूट एवं कत्लाम किया था। बादशाह दिल्ली का बल १७१७ से ही मृतप्राय था, और नादिरशाही आक्रमण से और भी ध्वस्त हो गया। पलासी का युद्ध १७५७ मे हुआ, और पानीपत का तीसरा युद्ध सन् १७६१ मे। अतएव उस काल तक अँगरेजो की शक्ति नही बढ़ी थी, न महाराष्ट्रो की घटी थी। ऐसे समय का सजीव चित्र उपस्थित करने से सूदन कवि धन्यवादार्ह है। सूदन तथा ऐसे अन्य कवियो ने हिन्दू शूरवीरो का सजीव वर्णन करके उस काल के हिन्दू समाज मे सामरिक शक्ति एवं उत्साह वर्द्धन किया। इस प्रकार भारतीय इतिहास के एक अंश का इन लोगो ने न केवल चित्र खीचा, वरन् हिन्दू-शक्ति अथच उत्साह वर्द्धन द्वारा इतिहास पर भारी प्रभाव भी डाला।

स्फुट विवरण।

इस काल की कुछ स्फुट घटनाये कहकर हम कवियो के द्वारा फिर देश का चित्र दिखलावेगे। औरंगजेब अपने बेटे का विवाह रूपनगर की राजकुमारी से करना चाहते थे, किन्तु उसने छिपे छिपे महाराणा राजसिह को पतिरूप मे वरण करके स्वयदत्ता की भांति उन्हे बोला भेजा। तब तक महाराणा का सम्राट् से बिगाड़ न था, किन्तु इस मामले में पडने से युद्ध बना बनाया था। सबसे बड़े जागीरदार चन्दावत थे, जिन्होने युद्ध मन्त्र दिया। राणाजी तथा चन्दावत दोनो अवस्था मे सयाने न थे, अतएव राणाजी ने अपने वयोवृद्ध राजकवि से मन्त्र लिया और उनकी भी युद्ध सम्मति होने पर ही संग्राम छेडा।

एक समय जयपुर नरेश ईश्वरीसिह का उनके प्रधान मंत्री केशवदास खत्री से बिगाड़ हो गया और उन्होने छिपे छिपे मन्त्री का बध

करा डाला, किन्तु इस मामले से इतना गड़बड़ मचा कि अन्त मे स्वयं उनके भी प्राण गये। इस घटना समूह का मूल मन्त्र निम्न ऐतिहासिक दोहे मे अकित है :—

तब छोरी ईश्वर नृपंति, राज करन की आस।
मन्त्री मोटा मारिया, खत्री केशवदास॥

झालावार नरेश ज़ालिमसिह ने एक बार कहा कि कवि लोग ख़ुशामदे होते है। इस पर कुछ उन्ही के माफीदार कवियो ने उनकी सच्ची समीक्षा पूर्ण छन्द बनाकर सुना दिये, जिससे उन बेचारो की माफ़िया जप्त हो गईं। कविगण सरस्वती के लाल हैं, सो शान अपनी सदा रखते है। ऐसे समयो पर वे हानि लाभ पर कम ध्यान देते थे। जयपुर नरेश महाराजा माधवसिह का वर्णन सूदन ने किया है। उन्ही के पुत्र महाराजा प्रतापसिह थे। सिन्धिया ने इन पर धावा किया। ऐसे समय मे जोधपुर ने जयपुर का साथ दिया। इस सम्बन्ध मे निम्न दोहा प्रचलित है :—

पति राखी परताप की नौ कोटे का नाथ।
अगला गूना (गुनाह) बकस दिय अबकी पकरो हाथ॥

इस दोहे से जोधपुरवालो की उचित से अधिक प्रशंसा हुई, किन्तु उसी के साथ जयपुर की निन्दा भी अनुचित हुई। इसी प्रकार का एक और दोहा बना, जो इन दोनो रियासतो मे वैमनस्य का मूल होकर दोनो के पतन एव होलकर के प्रभाव का कारण हुआ, क्योकि युद्ध के समय जयपुर ने जोधपुर को छोड़ दिया, जिससे राठौर पराजित हो गये। इन बातो से प्रकट है कि कई रियासतो मे युद्धार्थ मेल होना बहुत कठिन है। उसी के साथ यह घटना-चक्र चारणो के प्रभाव और भारी उत्तरदायित्व को भी दिखलाता है। पहले दोहे ने इतिहास के इस अश पर भारी प्रभाव डाला। दोहे इस प्रकार हैं।

ऊदल तिन अम्बर रा राखा राठूरान। यही छन्द क्रोध का कारण हुआ।

घोड़ा, जोडा, पागडो, मुटका खग मरवार ।
पांच रकम मे ले दिया, पाटन मे रठवार ॥

इस दोहे मे राठूरो की ईर्ष्या भव पराजय कथित है ।

साहित्यिक विकास ।

इस हिन्दू पुनरुत्थानवाले काल मे हिन्दी के अनेकानेक विभागो की जैसी अच्छी उन्नति हुई, वैसी अबतक नही हुई थी, न आगे वर्तमान काल तक हुई है । आज कल कविता जैसी अच्छी होती है और विषयो का फैलाव जैसा हुआ है, तथा हो रहा है, उससे आशा की जाती है कि वर्तमान काल साहित्य के लिये भी शायद हिन्दू उत्थानवाले समय से थोडा ही पीछे रह जावै । तो भी यह आशा ही आशा है, और जितनी साहित्योन्नति अभी तक हुई है, उसमे वह समय सर्वश्रेष्ठ है, और इस श्रेष्ठता की मात्रा थोड़ी नही बहुत है । इस काल के पूर्व ही भाषा परिपक्व हो चुकी थी, तथा अलंकृत भी होने लगी थी । इसके उत्तरार्द्ध मे भाषालंकारो की मात्रा आवश्यकता से कुछ अधिक बढकर भाव कुछ दबने लगे थे, किन्तु फिर भी सुकवियो ने अपने भाव नही दबने दिये और भाषा की सम्यक उन्नति का भी लाभ उठाकर उन्होने चमकती हुई अभूतपूर्व साहित्योन्नति अपनी रचनाओ मे दिखलाई । पूर्व माध्यमिक समय मे हमारे साहित्य मे श्रृङ्गार काव्य का अङ्कुर आकर सौरकाल मे विशेषतया तथा तुलसीकाल मे कुछ कुछ प्रस्फुटित हुआ था । उसने मोग़ल प्रभाव विस्तार के साथ दरबारी विलासिता से प्रकाश पाया, अथच फ़ारसी भावो को भी अपनाकर वह समृद्धि सम्पन्न हो चला । इस श्रृङ्गार प्रणाली ने सौरकाल मे जो धर्म का दामन पकडा था, वह तुलसीकाल ही मे छूट गया और नाममात्र को भगवान श्रीकृष्ण का नाम लेकर श्रृङ्गारी कवियो ने अभक्ति भावपूर्ण कोरे श्रृङ्गार का आदर किया । यह आदर मोग़ल प्रभाव विस्तार में और बढ़कर हिन्दू उत्थान

समय मे भी सुपुष्ट हुआ। यद्यपि इस काल मे हमारे साहित्य ने वीर काव्य, आचार्यता, कथा प्रणाली, विविध विषय, महाराजाओ द्वारा कवि सम्मान, एवं साहित्य रचना, मुसलमानो द्वारा मान, स्त्री कवियो की वृद्धि, खड़ी बोली का सूत्रपात्र, गद्य का कुछ अच्छा मान, एवं उर्दू की उन्नति देखी, तथापि शृङ्गार साहित्य का भी विकास इसने अच्छा क्या कुछ अनुचित वृद्धि के साथ किया। हमारे कवियो ने नायिका भेद, षटऋतु तथा नखशिख पर ग्रन्थ बनाना अपना कर्तव्य सा समझ लिया। षट्ऋतु एक बहुत अच्छा विषय है, किन्तु हमारे यहा प्रकृति निरीक्षण पर साधारण ध्यान रहा, अथच उसमे उद्दीपन का मसाला अधिक देखा गया। हम ऊपर कह आये हैं कि शृङ्गारिक वर्णन से साहित्य की लोकप्रियता बहुत बढ़ती है, जिससे ससार मे साहित्य प्रेमी बढ़कर उसके अन्य अङ्गो की भी वृद्धि होती हैं। इसीलिये इस लोकप्रिय एवं उन्नतिदाई विषय की हम निन्दा नही करते, केवल जो दशा है, वह कह देते हैं। साहित्य का मुख्य गुण है अलौकिक आनन्द प्रदान। यह बात शृङ्गार साहित्य से ही साधारण जन समुदाय को अधिकता से प्राप्त होती है। इन्ही कारणो से हमारा सदैव से सिद्धान्त रहा आया है कि वर्णन का विषय यद्यपि साहित्य गौरव का प्रधान साधन है, तथापि है कई साधनो मे से एक ही। कोई सुकवि साधारण विषय लेकर भी चमकती हुई रचना कर सकता है, तथा एक साधारण कवि परमोत्कृष्ट विषय पाकर भी पूर्णतया असफल रह सकता है। कवि को ससार का हित साधन अवश्य करना चाहिये, किन्तु उसका मुख्य धर्म है लोकोत्तरानन्द प्रदान, जिसके बिना उसकी रचना साहित्य कोटि के ही बाहर निकल जावेगी। गोस्वामी तुलसीदासजी ने शृङ्गार का निरादर करके भी लोकहित एवं अलौकिक आनन्द दोनो का पूरा साधन किया, जिससे वे हमारे सर्वोत्कृष्ट कवि और उपदेशक हैं। तथापि अन्य विषयो के उत्कृष्ट वर्णनो का भी हम

यथावत आदर करते हैं। इतना अवश्य ध्यान रखना चाहिये कि कोई कवि यदि शृङ्गारात्मक साहित्य रचना चाहता हो, तो भले ही रचै, किन्तु उसको धार्मिक साहित्य मानकर औरो को अथवा अपने ही को धोखा न देवै। हमारे यहां के कवियो ने केवल राधाकृष्ण के नाम जोड़कर कोरी शृङ्गारात्मिका रचना को धार्मिक साहित्य मानने का ढकोसला किया, जो सर्वथा अनुचित है। अब यह निन्द्य प्रथा उठती भी जाती है। फिर भी केवल इतनी भूल से हमारा परमोत्कृष्ट शृङ्गार साहित्य त्याज्य अथवा निन्द्य न मानना चाहिये। शृङ्गारपूर्ण प्रणाली के आवश्यकता से अधिक बल के साथ स्थापित होने से एक यह भी अनहोनी सी हुई कि हमारे यहा की कई स्त्रियो ने ऐसा शृङ्गारपूर्ण निर्लज्जता गर्भित साहित्य रचा, मानो वे स्वयं पुरुष हो। इस कृत्य को हम सोलहो आने बुरा कहते है। फिर भी बहुत थोड़ो स्त्रियो ने ऐसी भूल की तथा उनमे से बहुतो ने अपने योग्य ही रचना की। इनका वर्णन आगे आवेगा। हिन्दू उत्थान काल पर्यन्त हमारे यहां समुचित प्रकार से जीवन होड़ की स्थापना नही हुई थी और हमारा साहित्य परिश्रम, रोज़ाना काम काज, आदि के मामलो मे तब तक प्राय· कोरा सा रहा। इस काल तक हमारे साहित्य ने विशेषतया धर्म, शौर्य, उपदेश, समाज सङ्गठन, वीरोत्साहन, शौर्यपूर्ण घटनाओं का संरक्षण एव उद्घाटन, नीति-कथन, अथच लोकोत्तरानन्द दान पर ही विशेष ध्यान रक्खा था। हिन्दू साम्राज्य काल मे शौर्य का अच्छा प्रस्तार हुआ, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, और आगे भी कहा जावेगा। भक्ति काव्य इस काल होता तो रहा, किन्तु उसमे जीव न था। केवल गुरु गोविन्द सिंह का साहित्य श्रेष्ठ हुआ, किन्तु उसमे भक्ति कहने भर को थी, और वास्तव मे गुरु प्रभाव की आड़ मे वह राजनीति तथा समाज सङ्गठन का एक सफल एवं ज्वलन्त प्रयत्न था। दश पुश्तो से स्थापित गुरु पद के उठा देने में उन्होंने अपूर्व स्वार्थत्याग दिखलाया। अब

हम इस काल के विविध कथनीय विषयो पर अपनी सम्मति सूक्ष्म-तया लिखेगे। मिश्र-बन्धु विनोद मे हमने हिन्दू उत्थान काल के १०१४ कवियो का विवरण दिया है। इनका थोड़ा थोड़ा कथन करने से भी ग्रन्थ का आकार बहुत बढ जावेगा। प्राचीन कवियो मे जिस प्रतिभा के रचयिताओ का कुछ विशेष कथन हो आया है, वैसो का अब नाम तक लिखना कठिन है। अतएव हम इस काल के उत्कृष्ट कवियो का ही कथन करेगे, सो भी बहुत थोड़े शब्दो मे।

इस समय के भक्त कवियो मे भगवान हित, अक्षर अनन्य, रामप्रिया-शरण, सीताराम जानकी रसिक शरण, शिवनारायण, ललितकिशोरी, चाचा वृन्दाबन, रसिकअली, जगजीवनदास, दरिया साहब, रसिक गोविन्द, जत्तनलाल तथा ललकदास के नाम लिये जा सकते हैं। कलानिधि ने धार्मिक विषयो पर उत्कृष्ट ग्रन्थ रचे। आपने वाल्मी-कीय रामायण (बाल और उत्तर काड), ब्रह्मसूत्र तथा तैत्तिरीय, मांडूक्य, केन और प्रश्नोपनिषदो के अच्छे अनुवाद किये। इन्होंने अलङ्कार कलानिधि, साभर युद्ध, दुर्गाभक्ति तरङ्गिनी तथा वृत्त चन्द्रिका भी अन्य ग्रन्थो के अतिरिक्त लिखी। आपके ग्रन्थो के विषय बहुत अच्छे है। आप एक परम प्रशंसनीय कवि है। शिव-नारायण, ग़ाज़ीपुर के निवासी शिवनारायणी पन्थ के प्रवर्त्तक थे। धार्मिक विषयो पर आपके १२ ग्रन्थो के नाम विनोद में हमने दिये हैं। फिर भी इतना कहना पड़ता है कि यह समय अब पन्थों का नही रहा था। महात्मा जगजीवनदास (१७६१) सत्यनामी पन्थ के चलानेवाले थे। धार्मिक विषयो पर आपके चार ग्रन्थ विनोद मे लिखे है। दूलमदास, जलाली दास, देवीदास आदि आपकी गद्दी के महन्त और कवि है। दरिया साहब (१७७०) के १५ ग्रन्थ विनोद में है। आप अपने को कबीर साहब का अवतार मानते थे। आप बिहारी करकन्ध प्रान्त के साधु और कवि थे। चाचा वृन्दावन

तथा रसिक गोविन्द भी सुकवि भक्त थे। ललकदास का बालकांड इटौंजा ज़िला लखनऊ मे मिला था। यह तुलसीकृत रामायण के ढँग पर है। ईश्वरी प्रसाद, छत्रसिंह कायस्थ, जोधराज (हम्मीर-हठकार), नूर मुहम्मद (सूफीकवि जिनका वर्णन पूर्व माध्यमिक काल मे आ चुका है,) गुमान मिश्र, व्रजवासी दास (व्रजविलास कार), मंचित, मधुसूदन दास, सरयूराम (धर्माश्वमेध कार), नवलसिह, हरनारायण, मनियार, क्षेमकर्ण, मून, गणेश और हरनाथ इस कालके श्रेष्ठ कथा प्रासङ्गिक कवि है। इनके ग्रन्थो मे अच्छे साहित्य के साथ बढिया कथाये उपलब्ध हैं। इनके परिश्रम से हिन्दी साहित्य का कथा विभाग अच्छा पुष्ट हुआ है। इसी काल गोकुलनाथ, गोपीनाथ और मणिदेव ने मिलकर हिन्दी महाभारत सा भारी ग्रन्थ सुपाठ्य छन्दो में कहा। यदि हमसे कोई कहे कि प्रचीन हिन्दी साहित्य मे दो ही ग्रन्थ छोड़कर शेष सब नष्ट कर दिये जावेगे, तो हम तुलसीकृत रामायण तथा यही भाषा भारत बचा लेवैं। यह हमारे परमोपयोगी ग्रन्थ है। इस भाषा भारत से प्राचीन भारत का चित्र हमारे नेत्रो के सामने उपस्थित है। उपयोगिता की दृष्टि से इन दोनो ग्रन्थो के पीछे केशवकृत रामचन्द्रिका और भूषण ग्रन्थावली के नम्बर आते है। ये चार ग्रन्थ साहित्य की दृष्टि से तो अच्छे हैं ही, किन्तु उपयोगिता के लिये परमावश्यक है। यदि हमारा हिन्दू उत्थान काल एक इसी ग्रन्थ को बना लेता तो भी वह पूज्य समझा जाता। नेणसीमूता राजपूताने के सर्वश्रेष्ठ ऐतिहासिक हैं। आपका इतिहास बडा ही उपयोगी है। कुम्भकर्ण और केवल-राम भी इस काल मे इतिहास लेखक हो गये है। व्रजवासीदास का व्रजविलास उत्कृष्ट ग्रन्थ न होकर भी चलता बहुत है।

महाराजाओं में इन दिनो बहुत से कवि हुये है, और यदि राजाश्रित कवियो की सूची बनाई जावै तो वह बहुत लम्बी निकलै। महारा-जाओं या उनके प्रधानों में इस काल निम्न कवियो के नाम गिनाये

जा सकते हैं.—महाराजा छत्रशाल बुन्देलखंड, चतुरसिंह राणा (खडी बोली के कवि), महाराणा जयसिंह मेवाड़, गुरु गोविन्द सिंह (इनका वर्णन सिक्खो मे हो चुका है), महाराजा राजसिंह (कृष्णगढ, नागरीदास के पिता), महाराजा अजीतसिंह (मारवाड़), महाराजा नागरीदास (कृष्णगढ), पंचमसिंह (पन्ना महाराजा छत्रशाल के भतीजे), महाराजा बहादुरसिंह (कृष्णगढ़), राजा गुरुदत्तसिंह उपनाम भूपति (अमेठी नरेश), हितरामकृष्ण (किलेदार कालिजर, कई ग्रन्थ बनाये), शिवदास जयपुर (राजा आयामल्ल के भाई), लखपति (महाराव कच्छ), महाराजा महादाजी सिन्धिया (आप ग्वालियर के प्राय: सर्वोत्कृष्ट प्रबन्धकर्ता नरेश थे), राजारामसिंह (नरवलगढ), महाराजा दौलतराव सिन्धिया, महाराजा विक्रमादित्य (चरखारी), राजा जसवन्तसिंह (तेरवा), मानसिंह (महाराजा मारवाड), सुन्दरसिंह (महाराजा बनारस), जैसिंह (महाराजा रीवां), बलवानसिंह (महाराजा बनारस), और भगवन्तराव खीची (महाराजा असोथर)। इन कवियो मे नागरीदास और भूपति बहुत अच्छे कवि थे, और छत्रशाल तथा बलवानसिंह भी सुकवि कहे जा सकते है। भूपति सतसई के दोहे बिहारी सतसई से सामना करते हैं। बलवानसिंह का ग्रन्थ बहुत चलता है, और पांडित्यपूर्ण भी है। महाराजा छत्रशाल के यहा अनेकानेक सुकवि जाते थे। इनमे भूषण, लाल और हरिकेश बहुत ही बढ़िया कवि थे, जिनके वर्णन आगे आवैंगे। महाराजा छत्रशाल ऐसे बड़े गुणग्राही थे कि उमंग मे आकर एक बार आपने भूषण कवि की पालकी का डडा अपने कन्धे पर रख लिया था। आप पूरे शूर थे। आपके विषय मे भूषण तथा हरिकेस के छन्द हिन्दी साहित्य के शृङ्गार हैं। स्थानाभाव से केवल एक छन्द नीचे लिखा जाता है।

बालपने मे तहौवर खान को सेन समेत अँचै गयो भाई।
ज्वानी मे रुण्डी औ खुण्डी हने त्यो समुद्र अचै कछु थाह न लाई।

बैस बुढापे कि भूख बढी गयो बंगस बस समेत चबाई।
खाये मलिच्छन के छोकरा पै तबौ डोकरा को डकार न आई।

हमारे कवियो की लेखनी से ऐसे कटु छन्द निकलने से समझ पड़ता है कि देव मन्दिरो के प्रति मुस्लिम आघातो से उस काल हमारा समाज उनसे अत्यन्त क्रुद्ध था।

महाराजा भगवन्तराव खीची भी भारी शूर और कवियो के कल्पवृक्ष थे। आपकी प्रशंसा का भी एक छन्द यहां लिखा जाता है।

आजु महा दीननि को सूखि गो दया को सिन्धु,
आजु ही गरीबनि को सबगथ लूटि गो।
आजु दुजराजनि को परम अकाजु भयो,
आजु महराजनि को धीरज हू छूटि गो।
मल्ल कहै आजु सब मगन अनाथ भये,
आजु ही अनाथन को करम सो फूटि गो।
भूप भगवन्त सुरलोक को पयान कियो,
आजु कबिगन को कलपतरु टूटि गो।

भूषण ने भी लिखा है कि "भूप भगवन्त को पयान सुरलोक भयो अरराय टूटो कुल खम्भ हिन्दुआने को।" इन महाराज के यहां शम्भु मिश्र, मल्ल, भूधर, सारंग तथा अनेकानेक अन्य कविगण आते जाते थे। तत्कालीन राजनीतिक व्यवस्था पर भी आपका भारी प्रभाव पड़ा था।

नीति काव्य करनेवालो मे इस काल वृन्द और गिरिधर कविराय के नाम आते है। पहले ने दोहो मे रचना की और दूसरे ने कुण्डलियो में। रचना दोनो की अच्छी है, विशेषतया दूसरे की। देश मे भी गिरिधर का बहुत चलन है, और वृन्द का कुछ कुछ। गिरिधर की कुण्डलियाये लोकप्रिय विशेष है। यद्यपि उनमें साहित्य तादृश नही हैं, फिर भी मनोरमता की मात्रा बहुत अच्छी है और समाज पर उनका प्रभाव पड़ता आया है।

उदाहरण।

साईं ये न बिरोधिये, गुरु, पडित, कबि, यार।
बेटा, बनिता, पौरिया, यज्ञ करावन हार॥
यज्ञ करावन हार, राजमन्त्री जो होई।
बिप्र, पड़ोसी, बैद, आपुको तपै रसोई॥
कहि गिरिधर कबिराय बात चतुरन के ताईं।
इन तेरह ते तरह दिये बनि आवै साईं॥

नायिका भेद सम्बन्धी साहित्य रचनेवालो मे इस काल रामजी, ऋषिनाथ, यशोदा नंदन, गंजन, शिव, किशोर, दत्त, पुखी, शिवनाथ, तीर्थराज, दैवकीनन्दन, थान, भौन, और बेनी प्रवीन के नाम लिखे जा सकते हैं। ये सब बहुत बढ़िया कवि हैं, और इनकी रचना अब तक देश मे आदर के साथ पढ़ी जाती है। स्थानाभाव से इनकी रचनाओ के उदाहरण नही दिये जाते है, किन्तु जिन लोगो के ऊपर उदाहरण दिये गये है, उनमे से बहुतो की रचना इनके बराबर नही पहुँचती। विनोद मे इनके उदाहरण दिये भी गये हैं। सुकवियों मे इस समय नेवाज, पृथीसिह, बैताल, मोहनभट्ट (प्रसिद्ध कवि पद्माकर के पिता), आलम, शेख़, कवीन्द्र, घनआनन्द, कुमार, कृष्ण, हंसराज, दत्त, ठाकुर, बोधा, रामचन्द्र, चन्दन, जनगोपाल, भजन और घनश्याम के नाम आते है। ये सब अत्यन्त उत्कृष्ट कवि हैं, और इनकी रचनाओ से हमारे हिन्दी साहित्य की लोकप्रियता बहुत बढ़ी है, जिन्है सभी लोग बडे प्रेम से पढ़ते हैं। हमने भारतकार कवियो की ऊपर बहुत प्रशंसा की थी, किन्तु साहित्य प्रौढ़ता में वे लोग इन कवियो से बहुत पीछे छूट जाते है। भाषा भारतकार कवियो की महत्ता अच्छे प्रकार से रोचक तथा भारी एवं उपदेशपूर्ण कथा के कहने मे है। उपरोक्त कवियो के मुक्तक हिन्दी साहित्य के रत्न हैं, और ऐसी रचनाओ से हमारा साहित्य गौरवास्पद है। इन कवियो मे नेवाज, आलम, शेख, घन आनन्द, ठाकुर और बोधा बड़े

ही प्रेमी कवि है। आलम ब्राह्मण थे। कहते है कि एक बार इन्होने अपना पाग रँगने को शेख रँगरेजिन को दिया। उस पाग के एक कोने मे कही एक पर्चा बँधा था, जिसमे आलमकृत दोहे का निम्नचरण लिखा था :—"कनक छरी सी कामिनी काहे को कटि खीन।" शेख ने दोहा इस प्रकार पूरा कर दिया, "कटि को कंचन काटि बिधि, कुचन मध्य धरि दीन।" पाग रँग कर पूरा दोहा उसने उसी खूट मे बाध दिया, जिसमे आलम का दोहार्द्ध बँधा था। शेख मे रूप लावण्य भी अपार था। जब आलम ने दोहा पढा तब उस पर आशक्त होकर उससे विवाह कर लिया, यद्यपि ऐसा करने मे उन्हे मुसलमान होना पड़ा। उपरोक्त सभी प्रेमी कवियो की रचना बड़े मार्के की थी। बैताल के छप्पय छन्द बड़े सबल होते थे। रामचन्द्र पण्डित ने पार्वती जी के चरणो पर भक्ति भावपूर्ण चरणचन्द्रिका ग्रन्थ बनाया। इसमे शाक्त पूजको की भाति बाम मार्ग छू नहीं गया है, और सारी कविता उच्च भावों से पूर्ण है। स्त्री लेखिकाओ मे भी हिन्दू उत्थान अच्छी उन्नति दिखलाता है। इस काल हम कविरानी, शेख, प्रिया सखी, बनी ठनी, व्रजदासी, सहजोबाई, सुन्दरि कुँवरि, और छत्र कुँवरि के नाम पाते है। इन मे शेख का वर्णन ऊपर आ चुका है। उपरोक्त अन्य स्त्री कवियो मे कई भक्ति पक्ष की रचना करती थी, जैसा कि उनके लिये योग्य भी था। मुसलमान कवियों मे इस काल रहमतुल्ला, रहमान, मीर, अहमदुल्ला, महबूब, प्रीतम, याकूब, आज़म, रसलीन, और आलम के नाम आते है। आलम का कथन ऊपर हो गया है। रसलीन हमारे आचार्यों मे हैं। रहमतुल्ला, रहमान, अहमदुल्ला, महबूब, प्रीतम और याकूब भी सुकवि थे। अहमदुल्ला तथा उपरोक्त गजन कवि मोहम्मदशाह बादशाह के मंत्री कमरुद्दी खां के आश्रित कवि थे। इसी प्रकार अहमद बादशाह के राजकवि बखत राठौर बखतेश थे। और भी अनेकानेक सुकवि मुसलमान तथा हिन्दू शासको के कृपापात्र

थे। प्रीतम ने खटमल बाईसी नामक अच्छा हास्यरस पूर्ण ग्रन्थ बनाया।

उदाहरण।

कोऊ न उपाय भटकत जनि डोलै सुनै
खाट के नगर खटमल की दोहाई है।
बिधि हरिहर और इनते न कोई तेऊ
खाट पै न सोवैं खटमलन सो डरिकै।

जब धनी लोग कवियो का उचित मान नही करते थे, तब वे लोग कभी कभी उनकी निन्दा मे भँडौवा छन्दभी लिखते थे। इस काल ऐसे भंडाचार्यों मे देवी और बेनी प्रसिद्ध हैं। ~~प्रबन्धेश झा~~ इस काल के नाटककार हैं, तथा शिवसहाय ने लोकोक्तियां अच्छी कही। इन्ही को पखाने भी कहते हैं।

उदाहरण।

तिय तन झलक्यो जोबन भूप। चल्यो चहत सिसुता को रूप।
कहै पखानो जे बुधि धाम। उतरा सहना मरदक नाम।
बोले निठुर पिया बिन दोस। आपुहि तिय बैठी गहि रोस।
कहैं पखानो जेहि गहि मोन। बैल न कूदा कूदी गोन।

इसकाल के आचार्य कवियो मे प्रधान हैं कुलपति, सुखदेव, देव, कालिदास, सूरति मिश्र, श्रीपति, दास, सोमनाथ, मनीराम, गुरुदीन, म० बलवानसिंह, रघुनाथ, दूलह, बैरीसाल, रतन, भूषन, और जगतसिंह। ये सब भारी और प्रधान आचार्यों मे है। हमारी कविता में दश अंग कहलाते है। उपरोक्त आचार्यों ने इन्हीं अङ्गो पर प्रकाश डाला है। लिखा है सभों ने कई कई अङ्गो पर, किन्तु मुख्य मुख्य अङ्गो पर कई कई आचार्य प्रमुख माने जाते हैं। सुखदेव मिश्र और मनीराम मिश्र प्रधानतया पिंगलाचार्य हैं, श्रीपति गुण दूषणाचार्य, सोमनाथ और देव पदार्थ निर्णय के कहनेवाले, देव, कुलपति मिश्र और दास रस एवं भाव भेदो के आचार्य, महाराजा

बलवानसिह चित्रकाव्य के ज्ञाता, दूलह, रघुनाथ, बैरीसाल और भूषण अलङ्काराचार्य। और अन्य अङ्गो के कई आचार्य है। भारतीयो की इच्छा नियम बाहुल्य की प्रायः रहती है। अनुगामी होना वे बहुत पसन्द करते है। अपनी बुद्धि पर भरोसा करने मे उन्हे भूलकर जाने का भय बना रहता है। इसी से हमारे यहां उन्नति मे कमी आजाया करती है। जहा धार्मिक मामलो की आवश्यकता दूर से भी नही दिखती, वहां भी जूजू बनाकर धर्म प्राय· घुसेडा जाता है। दग्धाक्षर तथा गणागण के विचार इसी प्रकार के हैं। रगण के आदि मे आ जाने से मृत्यु क्यो हो जावैगी, सो समझ मे नही आता। इन्ही दो विषयो को छोडकर हमारे साहित्यिक नियम कवियो के लिये लाभदायक निकलेगे, क्योकि उनके जान लेने से किसी विषय के वर्णन मे कैसे कथन होने चाहिये, उसकी सूझ हमारे साहित्यिक नियमो से प्राय. हो जाती है। इन कारणों से जहां अन्य प्रकार के नियम स्वतन्त्रता के बाधक होने से कम से कम आवश्यक बुराई के विभाग मे आते है, वही हमारे साहित्यिक नियम सच्चे शिक्षाप्रद होकर हमारे आचार्यों को गुरु के स्थान पर मित्र बनाते है। हमारे साहित्याचार्यों ने भविष्य के कवियो को सहायताप्रद वर्णन करके प्रत्येक विषय के कथन को कुछ सुगम कर दिया है। इसके ऊपर उन्होने उदाहरणो आदि मे छन्द परमोत्कृष्ट लिखकर पाठको को साहित्यानन्द का भी स्वाद प्रदान किया है। बहुत से आचार्य बननेवाले कवियो के परिश्रम श्रद्धास्पद नही भी है, किन्तु उपरोक्त आचार्य सब के सब गौरवान्वित हैं। कवियो के कथनो मे हमने प्रायः सन् संवत देने का प्रयत्न इस कारण नही किया है कि भारी भारी समयो मे होनेवाले कवि उसकाल के कहे ही गये है, सो प्रत्येक कवि का पृथक् समय लिखना ऐतिहासिक ग्रन्थ के लिये अनावश्यक समझा गया, विशेषतया इस कारण से कि मिश्रबन्धु विनोद मे उन सब के समयों तथा ग्रन्थो के विवरण दिये ही जा चुके है। हमारे उपरोक्त

रचयितागण आचार्य होने के अतिरिक्त सुकवि भी हैं। इस काल में महाकवि देव और भूषण हुये तथा वीर कवि भूषण, लाल, सूदन, मुरलीधर और दलपतिराय। गोस्वामी तुलसीदास और सूरदास के पीछे हिन्दी मे हम सर्वोत्कृष्ट कवि देवदत्त उपनाम देव को ही समझते हैं। आपका जन्म समय १६७३ है और १७६८ तक आपका अस्तित्व मिला हैं। आपने औरङ्गजेब के शहजादे आज़मशाह, भवानीदत्त वैश्य, कुशलसिह, राजा उद्योतसिंह, राजा भोगीलाल, और पिहानी-वाले अकबर अली के नामो पर ग्रन्थ रचे है। सबसे अधिक प्रशंसा आपने भोगीलाल की की है। १६८९ मे आपने पहिला ग्रन्थ भाव विलास रचा, जिसमे कहा है कि उन्होने अपनी सोलहवी साल में वह बनाया। सुखसागर तरंग पिहानी वाले अकबरअली के वास्ते लिखा गया। अकबर अली का समय १७६८ के लगभग है। अतएव इनका रचना काल बहुत लम्बा है। आपके ग्रन्थों में राग रत्नाकर (राग रागिनियों पर), देवचरित्र (कृष्णचरित्र पर), प्रेम चन्द्रिका तथा जाति विलास (प्रेम पन्थ पर), रस विलास (मुख्यतया जातियो के वर्णन मे), काव्य रसायन (साहित्याचार्यता पर), वृक्ष विलास (अन्योक्ति गर्भित), देव माया प्रपञ्च नाटक (अर्द्ध नाटक), सुखसागर तरङ्ग (नायिका भेद), तथा सुन्दरी सिन्दूर बहुत उत्कृष्ट हैं। एक ही छन्द आप कई ग्रन्थो में भी रख दिया करते हैं। हाल मे हमने इनके सात सै छन्दो का एक संग्रह देव सतसई के नाम से बनाया है, जिसमे इनके परमोत्कृष्ट छन्द ही चुने गये हैं। आपकी भाषा शुद्ध ब्रजभाषा है, जो यमक, अनुप्रासादि से भली भाति सुशोभित होकर भावपूर्ण भी है। इनके बराबर श्रेष्ठ भाषा हिन्दी मे कोई कवि नही लिख सका है। आपकी रचना मे उत्कृष्ट छन्दो की भी मात्रा बहुत आधिक्य से है। प्राकृतिक वर्णन, सौदर्य कथन, प्रेमपूर्ण, उपमा गर्भित, चोज सम्पन्न छन्द आपके देखने योग्य हैं। अनेकानेक अनमिल विषयो पर आपने सफल रचना की है।

उदाहरण।

आखिन आंखि लगाये रहै सुनिये धुनि कानन को सुखकारी।
देव रही हिय मे घरु कै न रुकै, निसरै, बिसरै न बिसारी।
फूल मे बासु ज्यो, मूल सुबासु की, है फलि फूलि रही फुलवारी।
प्यारी उज्यारी हिये भरिपूरि सुदूरि न जीवन मूरि हमारी।

कुलकी सी करनी, कुलीन की सी कोमलता,
सील की सी संपति, सुसील कुलकामिनी।
दान को सो आदर, उदारताई सूर की सी,
गुन की लुनाई, गुनमती गज गामिनी।
ग्रीषम को सलिल, सिसिर को सो घाम, देव,
हेउत हसंती, जलदागम की दामिनी।
पून्यो को सो चन्द्रमा, प्रभात को सो सूरज,
सरद को सो बासर, बसन्त की सी जामिनी।

इस काल के दूसरे महाकवि भूषण है जो आचार्य तथा वीर कवि दोनों है, किन्तु फिर भी आपके कथन मे वीर काव्य की प्रधानता है। आपका साहित्य हमने भूषण ग्रन्थावली के रूप मे सटिप्पण प्रकाशित कराया है। इसकी रचना से अनेकानेक घटनाओ का उद्घाटन होता है, तथा तत्कालीन भारतीय दशा एवं हिन्दू प्रबलता का चित्र सामने आता है। वीर काव्य के जितने प्रधान गुण है, वे सब इस रचना मे मिलते हैं। भूषण ने शिवाजी, छत्रशाल आदि महापुरुषों के वर्णन करके तत्कालीन हिन्दू प्रताप को प्रोत्साहित किया, ऐतिहासिक घटनाओ का संरक्षण किया, तथा वीरो का मान एव उत्साह बढ़ाया। आपके छन्दो का उद्धरण कुछ अधिकता से करना होगा, जिससे उपरोक्त कथनो का समर्थन हो।

उदाहरण

साहिन के सिच्छक, सिपाहिन के पातसाह,
संगर में सिह के से जिनके सुभाव हैं।

भूषन भनत शिव सरजा कि धाक ते वै,

कांपत रहत चित गहत न चाव हैं ।

अफजल को अगति, सासता की अपगति,

बहलोल बिपति सो डरे उमराव है ।

पक्का मतो करिकै, मलिच्छ मनसब छोड़ि,

मक्का ही के मिसि उतरत दरिवाव हैं । (१)

लूट्यो खानदौरा जोरावर सफजंग,

अरु लह्यो कारतलबखा मनहु अमाल है ।

भूषन भनत लूट्यो पूना मे सइस्तखान,

गढ़न मे लूट्यो त्यो गढ़ोइन को जाल है ।

हेरि हेरि कूटि सलहेरि बीच सरदार,

घेरि घेरि लूट्यो सब कटक कराल है ।

मानो हय हाथी, उमराव करि साथी,

अवरङ्ग डरि सिवाजी पै भेजत रिसाल है ॥ (२)

श्रीनगर नयपाल जुमिला के छितिपाल

भेजत रिसाल चौर गढ़ कुही बाज की ।

मेवार ढुँढार मारवाड, औ बुँदेलखण्ड

झारखण्ड बांधौ धनी चाकरी इलाज की ।

भूषन जे पूरब पछांह नरनाह ते वै

ताकत पनाह दिलीपति सिरताज की ।

जगत को जैतवार जीत्यो अवरङ्गजेब

न्यारो रीति भूतल निहारी सिवराज की ॥ (३)

गढ़नेर गढ़ चांदा भागनेर बीजापुर

नृपन कि नारी रोय हाथनि मलति है ।

करनाट हबस फिरङ्ग हू बिलायत बलख

रूस अरि तिय छतियां दलति है ।

भूषन भनत साहि तनै सिवराज एते
मान तव धाक आगे दिसा उबलति है।
तेरी चमू चलिबे की चरचा चलेते
चक्रवर्तिन की चतुरङ्ग चमू विचलित है॥ (४)

बेदर कल्यान दै परेभा आदि कोट
साहि एदिल गँवायहै, नवाय निज सीस को।
भूषन भनत भाग नगरो कुतुबसाईं
दै करि गँवायो रामगिरि से गिरीस को।
भौंसला भुवाल, साहि तनै गढपाल
दिन दोऊ न लगायो गढ़ लेत पंचतीस को।
सरजा सिवाजी जयसाहि मिरजा को लीबे
सौ गुनी बड़ाई गढ दीने है दिलीस को॥ (५)

दारहि दारि मुरादहि मारिकै संगर साहिसुजै बिचलायो।
कै कर मैं सब दिल्लि कि दौलति औरउ देस घने अपनायो।
बैर कियो सरजा सिव सो यह नौरँग के न भयो मन भायो।
फौज पठाई हुती गढ़ लेन को गाठिहु के गढ कोट गँवायो। (६)

जेई चहौ तेई गहौ सरजा सिवाजी देस
संके दल दुवन के जे वै ब्रड़े उर के।
भूषन भनत भौसिला सो अब सनमुख
कोई न लरैया है धरैया धीर धुर के।
अफजलखान, रुसामै जमान, फत्तेखान खूटे,
कूटे, लूटे ए उजीर बिजैपुर के।
अमर सुजान, मोहकम, इखलासखान,
खाँडे छाँड़े डाँड़े उमराय दिलीसुर के। (७)

मोरँग जाहु कि जाहु कुमाऊ सिरीनगरै कि कबित्त बनाये।
बाँधव जाहु कि जाहु अमेरि कि जोधपुरै कि चितौरहि धाये।

जाहु कुतुब्ब कि एदिल पै कि दिलीसहु पै किन जाहु बोलाये।
भूषन गाय फिरौ महि मैं बनि है चित चाह सिवाहि रिझाये। (८)

लाज धरौ सिवजू सो लरौ सब सैयद सेख पठान पठाय कै।
भूषन ह्यां गढ कोटन हारे उहां तुम क्यो मठ तोरे रिसाय कै।
हिन्दुन के पति सो न बिसाति सतावत हिन्दु गरीबन पाय कै।
लीजै कलंक न दिल्लि के बालम आलम आलमगीर कहाय कै। (९)

ब्रह्म के आनन ते निकसे ते अत्यन्त पुनीत तिहूँ पुर मानी।
राम युधिष्ठर के बरने बलमीकिहु ब्यास के अक सोहानी।
भूषन यो कलिके कबिराजन राजन के गुन पाय नसानी।
पुन्य चरित्र सिवा सरजा सर न्हाय पवित्र भई पुनि बानी। (१०)

कूरम कमल, कमधुज है कदम फूल,
गौर है गुलाब, राना केतकी विराज है।
पाँडरि पँवार, जुही सोहत है चन्द्रावल,
सरस बुँदेला सो चमेली साज बाज है।
भूषन भनत मुचकुन्द बड़ गूजर है,
बघेले बसन्त सब कुसुम समाज है।
लेइ रस एतेन को बैठि न सकत अहै
अलि नवरंगजेब चम्पा सिवराज है। (११)

बिज्जपूर बिदनूर सूर सर धनुष न संधहिँ।
मंगल बिनु मल्लार नारि धम्मिल नहिँ बन्धहिँ।
गिरत गब्भ कोटै गरब्भ चिंजी चिंजा डर।
चाल कुण्ड दलकुण्ड गोलकुण्डा संका उर।
भूषन प्रताप सिवराज तुव इमि दच्छिन दिसि संचरहिँ।
मधुराधरेस धक धकत सो द्रविड़ निबिड़ डर दबि डरहिँ। (१२)

दारा की न दौर यह रारि नही खजुवे की
बांधिबो नही है कैंधो मीर सहबाल को।

मंठ विश्वनाथ को न, बास ग्राम गोकुल को,
देवी को न देहरा, न मन्दिर गोपाल को।
गाढे गढ़ लीन्हे अरु बैरी कतलाम कीन्हे
ठौर ठौर हासिल उगाहत है साल को।
बूडत है दिल्ली सो सम्हारै क्यो न दिल्लीपति
धक्का आनि लाग्यो सिवराज महाकाल को। (१३)

मोरँग कुमाउँ वो पलाऊ बाधे एक पल
कहां लौ गनाऊं जेऽब भूपन के गोत है।
भूषन भनत गिरि बिकट निवासी लोग
बावनी बवंजा नवकोट धुन्ध जोत है।
काबुल कँधार खुरासान जेर कीन्हो जिन
मुगल पठान सेख सैयदहु रोत है।
अब लगि जानत हे बड़े होत पातसाहि
सिवराज प्रकटे ते राजा बड़े होत है। (१४)

इन छन्दो मे भूषण ने तत्कालीन भारत की दशा साफ़ चित्रित कर दी है, और इनकी रचना से हिन्दुओ को पूरा प्रोत्साहन मिला। शिवाजी के विषय मे आपने कहा ही है कि "हिन्दु बचाय बचाय यही अमरेस चँदावत लौ कोइ टूटे"। आपके नायक सब कही "हिन्दुन की ढाल," "हिन्दुआन को अधार," "ढाल हिन्दुआने की" आदि है। जिस जिसने औरङ्गज़ेब का सामाना किया है, उस उसका यश गान आपने किया है, चाहे वह मोग़ल साम्राज्य का शत्रु हो या मित्र। आपने कहा ही है कि—

वे देखौ छत्ता पता ये देखौ छतसाल।
वे दिल्ली की ढाल यै दिल्ली ढाहन वाल।
इक हाड़ा बूंदी धनी मरद महेवा वाल।
सालत औरङ्गज़ेब को ये दोऊ छतसाल।

एक छत्रशाल मुगलो के शत्रु थे और एक मित्र, किन्तु देशद्रोही, औरङ्गजेब के दोनो शत्रु थे, सो भूषन ने दोनो के यश गान किये है। आप हमारे बहुत बड़े जातीय कवि थे, और यह आपही की रचना का प्रभाव है कि हिन्दी भाषी प्रान्तो मे शिवाजी का यश ग्राम ग्राम और घर घर मे फैला हुआ है। आपने उपरोक्त छन्द न० १० मे लिखा है कि हमारे कुछ पूर्वकालीन कवियो ने अनुचित विषयो के वर्णनो से सरस्वती को अपवित्र कर दिया था, सो भूषन शिवाजी का यश कह कर वाग्देवी को फिर से पुनीत करते हैं। मन्दिरो का टूटना, चौथ आदि का उगाहा जाना, हिन्दुओ पर मोगलभव अत्याचार आदि सभी विषयो पर आपने कथन किये हैं। हमने भूषण के छन्द जो ऊपर लिखे है, उनके चुनने मे साहित्यिक उत्तमता पर ध्यान न देकर ऐतिहासिक महत्व को प्रधान रक्खा है।

लाल कवि ने छत्रशाल की प्रशंसा मे छत्र प्रकाश नामक एक ख़ासा ग्रन्थ लिखा, जिसमे सन १७०७ तक की घटनाये लिखी गई हैं। ग्रन्थ साहित्यिक तथा ऐतिहासिक दोनो दृष्टियो से परमोत्कृष्ट है। आपने लिखा है कि बाईसवी वर्ष की आयु मे संवत १७२८ (सन् १६७१) मे छत्रशाल ने राज्यार्थ यत्न आरम्भ किया। बुन्देला क्षत्रियो का प्राचीन काल से इतिहास आपने लिखा है, जिसमे पञ्चम सिंह, ओड़छा स्थापन, महेवा आदि सबके कथन आये हैं। इस विचार से भी यह ग्रन्थ ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत उपयोगी है। आपने छत्रशाल तथा उनके पिता चम्पतिराय दोनों के हृदयग्राही बर्णन लिखे हैं, तथा समरकौशल, अनेकानेक युद्धो की मन्त्रणाओ, प्रयत्नो आदि के उद्घाटन बड़ी योग्यता पूर्वक किये है। भूषण के पीछे हमारे सर्वोत्कृष्ट वीर कवि आप ही हैं।

उदाहरण—चम्पति राय का वर्णन।

गनै कौन चम्पति की जीतैं। गनपति गनै तऊ जुग बीतैं।
साहिजहां उमडयो घनघोरा। चम्पति झंझा पौन झकोरा।

धनि चम्पति निरबल जिन थापे। धनि चम्पति जिन सबल उथापे।
धनि चम्पति सज्जन मन भाये। धनि चम्पति जिन जस बगराये।
धनि चम्पति की कठिन कृपानी। धनि चम्पति की रुचिर कहानी।

पञ्चम उदयाजीत के कुल को यहै सुभाव।
दलै दौरि दिल्लीस दल ज्यो दुरदन बनराव।

तब तौ चम्पति भयो सहाई। गिली भूमि भुजबल उगिलाई।
चम्पति राय कहा अब पैये। कैसे अपनो बस बचैये।
जब ते चम्पति कस्यो पयानो। तब ते पस्यो हीन हिँदुआनो।
लग्यो होन तुरकन को जोरा। को बांधै हिन्दुन को तोरा।
चम्पतिराय तेग कर लीन्हो। ओप बुँदेल बस कहँ दीन्ही।
भुजन पातसाही झकझोरी। गई भूमि जुरि जुद्ध बहोरी।

छत्रशाल का वर्णन।

जे भुमिया हम मे मिलि रैहै। तेई अमल देस को पैहैं।
जे न लागिहै सग हमारे। दोषु न लागै तिन के मारे।
जे उमराय चौथि भरि दैहै। तेई अमल देस को पैहैं।
जिनमे ऐड जुद्ध की पावो। तिन पै उमँगि अस्त्र अजमावो।

तेग छाइहै देस मे देस आइहै हाथ।
शत्रु भागिहैं मानि भै लोग लागिहैं साथ॥

लखत पुरुष लेच्छन सब जानै। पछी बोलत सगुन बखानै।
सतकबि कबित सुनत रस पागै। बिलसति मति अरथनि मैं आगै।
रुचि सो लखत तुरंग जे नीके। बिहँसि लेत मोजरा सब ही के।
कह्यो धन्य छिति छत्र छतारे। तुम कुलचन्द हिन्दु गन तारे।

चौकि चौंकि सब दिसि उठैं सूबा खान खुमान।
अब धौ धावैं कौन पर छत्रसाल बलवान॥

तिन मे छिति छत्री छबि छाये। चारिहु जुगन होत जे आये
भूमि भार भुज दण्डन थम्भे। पूरन करैं जे काज अरम्भे

गाय बेद दुजके रखवारे। जुद्ध जीति के देत नगारे।
साहस तजि उर आलस माँडै। भाग भरोसे उद्यम छाँडै।
ताहि तजै सम्पति जग ऐसे। तरुनी तजै वृद्ध पति जैसे।
दौरि देस मुगलन के मारौ। दपटि दिली के दल सहारौ।
ऐड एक सिवराज निबाही। करै आपने चित की चाही।
आठ पातसाही झकझोरे। सूबन पकरि डंड लै छोरे।

श्रीधर उपनाम मुरलीधर ने ६६ पृष्ठो का जंगनामा ग्रन्थ लिखा, जिसमे जहांदार और फ़र्रुखसियर का मोग़ल तख्त के लिये युद्ध अच्छी कविता मे वर्णित है, किन्तु ग्रन्थ का महत्व कम है, क्योंकि भूषन, लाल तथा सूदन की भाति मुरलीधर जातीय कवि न थे, वरन् एक घराऊ घटना मात्र का वर्णन करते थे। दलपतिराय तथा बंसीधर ने मिलकर सन् १७३५ मे अलङ्कार रत्नाकर ग्रन्थ रचा जिसमे उदयपुर के महाराणा जगतसिह का यश कीर्त्तन है। ये दोनो सुकवि थे। हरिकेश ने महाराजा छत्रशाल पन्ना नरेश का यश बड़े ही ओजपूर्ण छन्दो मे कहा है, किन्तु इनकी रचना थोड़ी ही मिलती है।

उदाहरण

दौरे काल किकर कराल करतारी देत,
दौरी काली किलकत छुधा के तरंग तैं।
कहै हरिकेस दात पीसत खबीस दौरे,
दौरे मंडलीक गीध गीदड़ उमंग तैं॥
चम्पति के नन्द छत्रसाल आजु कौन पर,
फरकाई भुज औ चढ़ाई भुव भंग तैं।
भंग डारि मुख तैं भुजानि तैं भुजंग डारि
दौरयो हर कूदि डारि गौरा अरधग तैं॥

उपरोक्त वीर कवियों की रचनाओ से प्रकट है कि इस काल जातीयतापूर्ण भावो से भरी हुई वीर कविता हमारे यहां अच्छी बनी, जिसका सम्यक् प्रभाव देश पर शौर्य वर्द्धन मे पड़ा। वीरो

का ऐसी रचना से अच्छा आदान प्रदान था, अर्थात् उनके कारण ऐसी कविता बनी, जिसके कारण नवीन वीरोत्पादन तथा सामरिक शक्ति वर्द्धन हुआ। वीर कवियो मे भूषण का मान शिवाजी तथा छत्रशाल दोनो ने बहुत किया। तत्कालीन (१७०३) कवि लोकनाथ ने लिखा है कि,—

"भूषन नेवाज्यो जैसे सिवा महाराज जू ने,
बारन दै बावन धरा पै जस छाव है।
दिल्ली शाह दिलिप भये है खानखाना जिन,
गंग से गुनी को लाखै मौज मन भाव है।
अब कबि राजन पै सकल समस्या हेत,
हाथी घोड़ा तोड़ा दै बढायो बहु नाव है।
बुद्ध जू दिवान लोकनाथ कविराज कहै,
दियो इकलौरा पुनि धौलपुर गाव है।"

इस हिन्दू पुनरुत्थान काल में मुख्य गद्य लेखको मे भगवान मिश्र, सुखदेव, रतनदास, सदासुख, इशाअल्ला, लल्लूजीलाल और सदलमिश्र के नाम आते हैं। भगवान मिश्र मैथिल थे, जिन्होंने १७०४ में एक शिलालेख लिखा।

उदाहरण।

सोमवंशी पांडव अर्जुन के सन्तान तुरुकान, हस्तिनापुर छाड़ि ओरंगल के राजा भये ते वंश महं काकती प्रताप रुद्र नाम राजा भये जे राजा शिव के अंस नउ लाख धनुक के ठाकुर जे के राज्य सुवर्न वर्षा भै ते राजा के भाई अन्नमराज बस्तर महं राजा भये ओरंगल छाड़ि कै।

इस भाषा मे खडी बोली का लौस बिलकुल नहीं है। मैनपुरी के सुखदेव कायस्थ ने १७३१ मे ३६० पृष्ठो की मानस रामायण गद्य पद्य में लिखी। १७६६ मे रतनदास ने चौरासीजी की टीका, ८२२ भारी पृष्ठों में सेवक बानी की टीका, तथा स्वरोदय की टीका गद्य में

बनाई। आप एक भारी गद्य लेखक थे। मुंशी सदासुखलाल का समय १७४६ से १८२४ तक था। आपने संस्कृत से प्रभावित खडी बोली मे सुखसागर नामक बड़ा ग्रन्थ लिखा। मुंशी इंशाअल्ला का शरीरान्त १८१८ मे हुवा। आपने ठेठ खडी बोली गद्य मे रानी केतकी की कथा कही। आपकी भाषा सानुप्रास तथा फ़ारसी से कुछ कुछ प्रभावित थी। इसे चाहै हिन्दी कहै चाहे उर्दू। उर्दू की कुछ कुछ उन्नति शाहजहां के समय से हो रही थी। धीरे धीरे उन्नत होते हुये उसने अपना रूप नया सा बना लिया था। दिल्ली की उर्दू मे फिर भी हिन्दी के शब्द और मोहावरे बेधड़क लिखे जाते थे, किन्तु जब दिल्ली बिगडी और उसके स्थान पर लखनऊ उर्दू का केन्द्र बन गया, तब लखनऊ की उर्दू ने हिन्दी का साथ पूर्णतया छोड़कर दिनो दिन फ़ारसी का अधिकाधिक सहारा लिया, जिससे वह हिन्दी से पृथक् भाषा सी हो गई है। लखनऊ के भी बिगडने पर हैदराबाद दक्षिण भी उर्दू का एक केन्द्र हुआ है, यद्यपि अभीतक लखनऊ की भाषा का ख़ासा नाम है। हिन्दी को हम लोग पहले भाषा कहते थे। दासजी ने लिखा भी है कि,

भाषा ब्रजभाषा मिलै भाषा कहियत सोय।
मिलै संसकृत पारसिहु पै अति प्रकट जु होय॥

मुसलमानो ने धीरे धीरे भाषा को हिन्दी कहना शुरु किया, जिससे हिन्दू भी इसी निर्दोष नाम का प्रयोग करने लगे। अब मुसलमान लोग हिन्दुस्तानी नाम अधिक पसन्द करते है। उर्दू कविता उठी तो हिन्दी के ही सहारे से, परन्तु अब हिन्दी संस्कृत से और उर्दू फारसी से अधिकाधिक मेल करती जाती है, जो होना न चाहिये। सरकार इन दोनो को मिलाकर उचित ही हिन्दुस्तानी का रूप देना चाहती है, किन्तु अभी तक इसमे साफल्य की आशा कम है। लल्लूजीलाल का समय १७६३ से १८२५ तक है। आप गुजराती ब्राह्मण आगरा निवासी कलकत्ते के फ़ोर्ट विलियम कालेज में

अध्यापक थे। शिक्षा विभाग के लिये आपने व्रजभाषा को खडी बोली से मिलाकर प्रेमसागर नामक गद्य ग्रन्थ बनाया। इन्ही के समयवाले सद्लमिश्र ने नासकेतोपाख्यान नामक एक छोटा सा गद्य ग्रन्थ शुद्धतर खडी बोली मे रचा। सदासुख, ईशाअल्ला, लल्लूजी-लाल तथा सद्लमिश्र वर्त्तमान गद्य के जन्मदाता समझे जाते हैं। पहले कविगण अपने अपने प्रान्त की भाषा का प्रयोग गद्य मे करते थे, और व्रजभाषा का थोडासा पुट उसमे रखते थे। धीरे धीरे मुसलमानी सभ्यता के उत्कर्ष से खडी बोली सभ्य भाषा मानी जाने लगी, और हर स्थान के भारतीय नगरो मे उसी का प्रयोग होने लगा। जब अँगरेजी प्रभाव विस्तार से गद्य ग्रन्थो की आवश्यकता पड़ी, तब खड़ी बोली ही सर्वमान्य भाषा सामने थी और बिना किसी झञ्झट के वह गद्य की सभ्य भाषा हो गई। गद्य का विषय आगे के कथनो मे यथासमय और भी अवेगा।

खड़ी बोली पद्य ने पुनरुत्थान काल मे सीतल, रसरङ्ग और भूधर नामक तीन कवि उत्पन्न किये। सीतल (१७२३) हरिदासवाली टट्टी सम्प्रदाय के महन्त थे। आपका गुलजार चमन खड़ी बोली पद्य मे एक बडा विचित्र और उत्कृष्ट ग्रन्थ है।

उदाहरण।

शिव विष्णु ईश बहु रूप तुई नभ तारा चारु सुधाकर है।
अम्बा धारातल शक्ति सुधा स्वाहा जल पवन दिवाकर हैं।
हम अशाअंश समझते है, सब खाक जाल से पाक रहैं।
सुन लालबिहारी ललित ललन हमतो तेरे ही चाकर है।

कारन कारज लै न्याय कहै जोतिष मत रबि गुरु ससी कहा।
ज़ाहिद ने हक्क हसन यूसुफ़ अरहन्त जैन छबि बसी कहा।
रत राज रूप रस प्रेम इश्क जानो छबि शोभा लसी कहा।
लाला हम तुमको वह जाना जो ब्रह्मतत्व त्वं असी कहा।

शीतल महाशय एक सुकवि थे। रसरंगजी मुसलमान थे। इनकी बानी व्रजभाषा तथा खडी बोली दोनो मे है। यह वैष्णव सम्प्रदाय मे अच्छे भक्त थे। भूधरदास जैन (१७२४) के पार्श्व पुराण ग्रन्थ की जैनो मे वैसी ही महिमा है, जैसी हिन्दुओ मे पुराणो की। आपने व्रजभाषा मे रचना की है, किन्तु कही कही खड़ी बोली का भी प्रयोग किया है।

हिन्दू पुनरुत्थान हमारे हिन्दी काव्य के लिये बड़े उत्कर्ष का काल था। इसमे साहित्य के आकार, प्रणालियो, माधुर्य तथा उत्तमता इन सभी मे बहुत सन्तोषप्रद विस्तार हुआ। कविता का प्रभाव महाराजाओ तथा समाज दोनो पर बहुत अच्छा पडा, आचार्यता की सन्तोषप्रद वृद्धि से साहित्य मर्म का ज्ञान बढ़ा, तथा रचना मे कवियो को सुगमता हुई, और शृङ्गार एवं वीर काव्यो के परमोत्कर्ष से काव्य की लोकप्रियता तथा प्रभाव की अच्छी वृद्धि हुई। हम देख आये है कि आठवी शताब्दी मे मुसलमानो ने हमारा दरवाज़ा खटखटाया, गेरहवी मे कुछ प्रवेश प्राप्त किया तथा बारहवी के अन्त मे देश ही अपना लिया। उत्तरी भारत मे प्राय. साढ़े चार शताब्दी तथा दक्षिण मे एक या डेढ शताब्दी मुसलमानो का प्रभाव रहा। उनके समय मे हिन्दुओ से केवल धार्मिक बिगाड़ था। हम दोनो की जो दो पृथक् ज्ञातीयताये थी, वे केवल धर्म के कारण। देश प्रेम का प्रश्न इस काल न उठा। मुसलमानो ने भारत मे आकर अपना देश ऐसा भुला दिया और भारत को ऐसा अपनाया कि काबुल पर भी यही से शासन किया, वरन् काबुल, कन्धार आदि जीतने को हिन्दू सेनापतियों की अधीनता मे हिन्दू सेनाये तक भेजीं। भारत ने उस काल अपने को किसी विदेश के अधीन नही जाना। जो कुछ गड़बड़ था वह धार्मिक विद्वेष मात्र से। यदि कोई हिन्दू मुसलमान हो जाता था तो वह किसी मुसलमान से किसी बात मे कम नही रह जाता

था। हिन्दू मुसलमानो मे कोई जातीय भेद न होकर केवल धार्मिक अन्तर था। देश के व्यापार पर जितना प्रेम हिन्दुओ को था, उतना ही मुसलमानो को। कारीगरी, व्यापार, गाने बजाने, नेउता पहानी, शादी विवाह, पहेनाव ओढ़ाव, रहन सहन आदि में हिन्दू मुसलमानो मे मानो कोई भेद ही न था। इस कारण भारत के व्यापारादि मे कोई क्षति न आई, और मुसलमान काल में बरकत बहुत अच्छी रही। हम इसी को अच्छा समझते रहे कि एक कमावै और दस खावैं। प्रकृति की भी कृपा हमारे देश पर बहुत रही तथा जनसख्या इतनी अधिक न थी कि देश पर उसका कोई भारी दबाव पड़ता। जीवन होड़ के कम होने से सासारिक उन्नति मे कमी अवश्य रही, किन्तु अन्य प्रकार से हमलोग पूर्णतया प्रसन्न रहे। धार्मिक अत्यचार कभी कभी तो अवश्य बढ़ जाते थे, किन्तु साधारणतया उनसे भी कोई विशेष कष्ट न था। रेल, तार आदि के अभाव से तथा केन्द्रीय शक्ति के अधिकतर शैथिल्य से इच्छा होते हुये भी धार्मिक अत्याचारो का परिधि दूर तक नही फैलता था। मुसलमान काल मे हमारे पौराणिक धर्म में कोई क्षति नही आई। आठवी से बारहवी शताब्दियो तक बौद्ध और जैन पंडितो को परास्त करने के लिये दक्षिण से तर्कवाद का प्रसार हुआ। इस तर्कवाद ने समय के साथ उत्तर मे भी पदार्पण किया, किन्तु इसका पूरा प्रभाव यहां की जनता पर चौदहवी और पन्द्रहवी शताब्दियो मे पडा। तोभी उस काल इस तर्कवाद मे श्रद्धागर्भित भक्तिवाद मिल गया, तथा सोलहवी शताब्दी मे तर्कवाद त्यक्त सा होकर भक्तिवाद का साम्राज्य फैला। सूफ़ीवाद निकला तो किन्तु इसका विशेष प्रचार न मुसलमानो मे हुआ न हिन्दुओ मे। उत्तरी भक्तिवाद सोलहवी सत्रहवी शताब्दियो मे दक्षिण मे भी यहां से बढ़कर फैल गया। प्रतिमा का बल यथावत रहा, तथा शान्ति स्थापन से तीर्थ-यात्रा, रामलीला, कृष्णलीला, रास आदि के प्रचार बढ़े। इतना

सब होते हुये भी नाटक का उदय न हुआ। भाषाओ मे प्रधानता व्रजभाषा की हुई, किन्तु अवधी का भी मान बढ़ा तथा खड़ी बोली का भी।

ब्रटिश साम्राज्य स्थापन (१८१८-३३)

व्यापार के सम्बन्ध मे योरोपियनों का आगमन यहां वैस्को डी गामा के साथ प्रारम्भ हुआ। पुर्तगीज़, डच, फरासीसी और अँगरेज़ लोग यहां समय समय पर आये और व्यापार करने लगे। अँगरेजो का आगमन जहांगीर बादशाह के समय मे हुआ। वे लोग क्रमशः बम्बई, मद्रास और कलकत्ते मे स्थापित हुए। शिवाजी ने जब दो बार सूरत लूटी, तब व्यापारी मात्र होकर भी इन्हे उनका सामना करने को तैयार होना पड़ा था। देश की दशा ही कुछ ऐसी थी कि या तो योरोपियन लोग सन्धि विग्रह आदि मे पड़ते या देश छोडकर चले जाते। उन्होने स्वभावश पहिली बात पसन्द की। धीरे धीरे उन लोगो का प्रभाव बढने लगा। आपस में भी इनके सन्धि विग्रह होते रहे, जिससे समय पर फ़रासीसियों, डचो, तथा पोर्चुगीज़ो के छोटे छोटे उपनिवेष मात्र रह गये, और अँगरेज़ो का साम्राज्य भारत मे स्थापित हुआ। सबसे पहिला बडा युद्ध इनका सिराजुद्दौला से पलासी पर सन् १७५७ मे हुआ। १७६४ मे बङ्गाल और औध के नवाब मिलकर अँगरेजो से बक्सर पर पराजित हुये। क्रमश मदरास, बम्बई, कलकत्ता आदि मे अंगरेज़ी अदालते, कालेज, गिरजाघर, कारखाने आदि बने। धीरे धीरे सन्धि विग्रह करते हुये १८१८ मे पेशवा को पराजित करके इन लोगोने अपने को भारत का सम्राट पाया। अनन्तर अन्य प्रान्त तथा देश जीतकर इन्होने १८८६ तक अपना पूरा साम्राज्य स्थापित किया। इसमे पंजाब और बर्मा भी आ गये। हिन्दू मुसलमानों ने धार्मिक झगड़ो तथा उत्तराधिकार के झमेलो मे

जो भारी समय खोया था, उसी के अन्दर उन्नति करके योरोप इनके सामने खड़ा हो गया। वह यदि बलशाली युवा पुरुष था, तो ये मानो बच्चे थे। भारतीय लोग क्षणभर को उसके वार न सम्हाल सके। अँगरेज़ो ने साम्राज्य स्थापित करके भारतीयो को धार्मिक, सामाजिक आदि सभी बातो मे पूर्ण स्वतन्त्रता दी, तथा इन के बीच मे न्याय भी शुद्धता पूर्वक वितरण किया। इन बातो से इनको उस काल अँगरेज़ी राज्य स्थापन मे पूर्ण सन्तोष हुआ, और अपने साहित्य मे इतने भारी परिवर्त्तन के प्रतिकूल हम कुछ भी नही पाते। देश-मूलक जातीयता का इन्हे ज्ञान न था और धर्ममूलक जातीयता मे कोई क्षति नही पडती थी। इतना भारी परिवर्त्तन अँगरेज़ो के साथ ही साथ अवश्य हो गया था, कि ग्राम्य पञ्चायतो के स्थान पर अदालतो द्वारा न्याय वितरण होने लगा। इससे कुछ न कुछ असन्तोष अवश्य हुआ होगा, किन्तु उसका कोई कहने योग्य कथन अप्राप्य है। पादड़ियो द्वारा ईसाई मत प्रचार का प्रयत्न होता था, किन्तु शान्तिपूर्वक। बल का प्रयोग इस मे बिलकुल न था। इस कारण देश मे इस विषय पर कोई असन्तोष न था। शिक्षा का मान अँगरेजो द्वारा हो रहा था, और रेल, तार, डाक आदि का प्रबन्ध क्रमशः बढकर सभ्यता की वृद्धि मे योग दे रहा था। मुसलमानी काल मे भी कुछ सडके, सराये, धर्मशाले आदि बने थे, किन्तु अँगरेज़ी समय मे इन बातो मे बहुत अधिक उन्नति हो रही थी।

बृटिश साम्राज्य स्थापन काल मे १२० कवियो के नाम मिश्रबन्धु विनोद मे है। यह ग्रन्थ हम तीन भाइयों का बनाया हुआ है। इस काल के वीर कवि चन्द्रशेखर बाजपेयी और पद्माकर थे, नायिकाभेद रचयिता पद्माकर, महराज, रामसहाय दास और ग्वाल, आचार्य प्रतापसाहि, बाबा दीनदयाल गिरि और गुरुदत्त शुक्ल, सग्रहकार श्रीधर तथा द्विज कवि मन्नालाल, और भक्त महन्त जुगुलानन्य शरण। पद्माकर की रचना कई महाशय बहुत पसन्द

करते है और हम भी उसे अच्छी समझते है। आपकी कविता मे अनुप्रास का विशेष बल है, और कही कही उसके कारण भाव शैथिल्य देख पड़ने लगता है। फिर भी कुल मिलाकर आप एक सुकवि है। महराज के छन्द थोडे से मिलते है, किन्तु है उत्कृष्ट। रामसहाय दास ने बिहारी सतसई की भांति रामसतसई रची। इसके दोहे बहुत बढिया है। ग्वाल, पद्माकर और दत्त कवि की नोक झोक रहा करती थी। ग्वाल भी सुकवि है। प्रतापसाहिने व्यंग्यार्थ कौमुदी नामक एक अच्छा ग्रन्थ बनाया। आपके भाव तो अच्छे है ही, भाषा भी बहुत ही श्रेष्ठ है। आप मतिराम के अवतार कहे जा सकते है। बाबा दीनदयाल तथा गुरुदत्त शुक्ल ने अन्योक्तिया कुछ अच्छी कही। सूर्यमल बूंदीवाले ने वंशभास्कर ग्रन्थ मे बूंदी राज्य तथा अनेक अन्य विषयो का छन्दोबद्ध वर्णन किया। ग्रन्थ २५०० पृष्ठो का हैं। संग्रह ग्रन्थों का चलन इसी काल से चलता है। इनसे ग्रन्थहीन कवियो की रचनाओ का संरक्षण होता है। महन्त जुगुलानन्य शरण ने रामचन्द्र की भक्ति एवं अन्य विषयो के बहुतेरे ग्रन्थ लिखे। पद्माकर ने वीर एवं भक्तिकाव्य भी लिखा, किन्तु इनके वीर काव्य मे जातीयता नही है। चन्द्रशेखर बाजपेयी का हम्मीर हठ एक बहुत ही बढिया जातीयता पूर्ण वीर काव्य है।

उदाहरण।

आलम नेवाज सिरताज पातसाहिन के
गाजते दराज कोप नजरि तिहारी है।
जाके डर डिगत अडोल गढधारी
डगमगत पहार और डुलत महि सारी है।
रंक जैसो रहत ससंकित सुरेस भयो
देस देस पति मे अतंक अतिभारी है।
भारी गढ़ जारी करे जंग को तयारी
धाक माने ना तिहारी या हमीर हठ धारी है।

मारे गढ़ चक्कवै हमीर चहुआन चक्र
डारे गोल गरद मिलाय महा मानी के।
लोटै रेत खेत एकै पोटैं लेत देत
एकै चोटन समेत लड़े लाड़िले पठानी के।
सारे डर धारे, राह बसन हथ्यार डारे,
बाहन सम्हारे कौन भरे परेसानी के।
भाजे जात दिल्ली के अलाउदीन वारे दल
जैसे मीन जाल ते परत दिसि पानी के।
भागे मीरजादे पीरजादे औ अमीरजादे
भागे खानजादे प्रान मरत बचाय कै।
भागि गज बाजी रथ पथ न सम्हारैं
परैं गोलन पै गोल सूर सहमि सकाय कै।
भाग्यो सुलतान जान बचत न जानि बेगि
बलित बितुंड पै बिराजि बिलखाय कै।
जैसे लगै जङ्गल मे ग्रीषम की आगि
चलै भागि मृग, महिष, बराह बिललाय कै।

इन छन्दो मे से पहला छन्द अलाउद्दीन की प्रशंसा का है, और अन्तिम दोनो सुलतानी दल भागने के। न दिल्ली दल भागा, न उसे भारी कठिनता पड़ी, किन्तु कवि ने शौर्य्य का प्रोत्साहन कर ही दिया। इस काल के अन्य कवियो का साहित्य भी वैसा ही है जैसा ऊपर कहा गया है। विषय अवश्य वैसा ही है, हां उत्तमता मे भेद है। जैसा वर्णन हिन्दू पुनरुत्थानवाले साहित्य का है वैसा ही इस काल का समझना चाहिये। यह छोटा ही सा समय है, सो साहित्यिक विषय मे कुछ अधिक वक्तव्य नही रहता। राजे महाराजे भी इस काल रचना करते थे, किन्तु साहित्य प्रौढ़ता की कमी से उनके नाम नही दिये गये हैं।

परिवर्त्तन काल (१८३३—१८६६)

परिवर्त्तन काल मे पञ्जाब, सितारा, नागपुर, झांसी, बरार और अवध सरकार के हाथ मे आये। उधर पेशवा के उत्तराधिकारी नाना राव अँगरेजो के प्रतिकूल थे ही, सो बहुत से भूतपूर्व शासक वृटिश राज्य के शत्रु हुये। कुछ साधारण लोग भी इसी गोष्ठी मे मिले, और यह प्रगट किया गया कि कारतूस मे सूअर तथा गोमास का मेल है। इस गुल के खिलने से धर्म ह्रास समझ कर बहुत से सिपाहियो ने विद्रोह का झगडा खडा किया तथा राज्यच्युत कई महापुरुष भी इसमे मिले। पञ्जाब से जब सरकार की लडाई हुई थी, तब हिन्दुस्तानी सिपाही सरकार की ओर से सिक्खो से लडे थे। राजविद्रोह बहुत करके हिन्दुस्तानियो ने किया था, सो पुराना बदला निकालने को तथा सम्भवत अन्य कारणो से भी सिक्ख लोग इस काल सरकार के सहायक बने। राजविद्रोह साल डेढ साल मे शान्त हो गया, और सन् १८५८ मे साम्राज्ञी की ओर से एक घोषणा की गई कि सरकार हिन्दुस्तानी तथा अँगरेजो को बराबर मानैगी। १८६१ मे सरकार ने भारतीय आईन सभा भी स्थापित की जिससे भारतीयो के विचार बिना झगडो के ही सरकार को ज्ञात होते रहै। इस सभा के अधिकार समय समय पर बढ़ते आये है। इन बातो के कथन यथा समय होगे। यद्यपि इसी परिवर्त्तन काल से भारत मे जीवन होड भली भाति स्थापित नही हुई थी, तथापि विलायत मे जीवन होड भव जैसी सस्थाये प्रस्तुत थी, उस प्रकार की यहां भी बनने लगी, जिससे तथा अन्यान्य कारणों से देश मे परिवर्त्तन उपस्थित हो ही गया। इससे साहित्य भी न छूट रहा। हमारा परिवर्त्तन कालीन साहित्य दो प्रकार का था, एक तो नवीन पथ का और दूसरा प्राचीन पद्धतिवाला। पहले प्राचीन प्रथा के रचयिताओ के कथन करके हम नवीन प्रणाली पर आवेगे।

प्राचीन प्रथा ।

इस काल के भक्त कवियो मे देव काष्ठ जिह्वा, महन्त रघुनाथदास, प्रताप कुँवरि, बिरंजी कुँवरि, ललित किशोरीजी, ललिता माधुरीजी और महन्त सीताराम शरण है। ललित किशोरी और ललित माधुरी ने १९ वी शताब्दी मे लोगो को सौरकाल की कविता का स्वाद चखाया। अन्य भक्तजन भी साधारणतया अच्छे कवि थे, किन्तु कुल मिलाकर इस काल की भक्ति कविता ने देश पर कोई भारी प्रभाव न डाला। नायिका भेद सम्बन्धी साहित्य का द्विज देव, असनी के शंकर, शंकर दरियाबादी, पजनेस, सेवक, सरदार, लेखराज, औध, लछिराम, महाराजा मानसिह और बलदेव द्विज ने निर्माण किया। इनमे द्विज देव, पजनेस, सेवक, लेखराज, और सरदार सुकवि थे। अन्य कविगण भी अच्छे थे। कुल मिलाकर परिवर्त्तन काल मे प्राय· ४०० कवियो के नाम हैं। स्फुट कविताकार नवीन हुये, जिन्होने बहुत सा धन उपहार मे पाया। कथा प्रासङ्गिक साहित्यिकों में उमादास, निहाल, जीवनलाल, सूरजमल, माधव, महाराजा विश्वनाथसिह रीवां, महाराजा रघुराजसिह रीवां, तथा रघुनाथदास रामसनेही के नाम आते हैं। कविता की संख्या इस काल भी अच्छी थी, किन्तु शृङ्गार एव कथा विभाग की रचना उत्कृष्ट कम हुई। आचार्य कोई हुआ ही नही। कृष्णानन्द ने रागसागरोद्भव रागकल्पद्रुम नामक एक संग्रह ग्रन्थ बनाया, जिसमे अच्छे पद हैं। सूफीमत के कासिम ने हस जवाहिर कहा, जिसका कथन पूर्व माध्यमिक काल मे आ गया है। खडी बोली के प्राचीन प्रथानुयायी गणेशप्रसाद फ़र्रुखाबादी एक सुकवि हुये, जिनकी रचना बहुत उड़ती हुई है।

उदाहरण।

जोबन पर जिस्के शम्शो क़मर वारी है।
हर गुल्शन मे उस गुल की गुल्ज़ारी है।

ज़ंजीर ज़ुल्फ जाना ने लटकाली है।
काली है फ़िदा जिसपर नागिन काली है।
अबरू कमान कुदरत ने परकाली है।
वह आंख आख आहू ने झपका ली है।

बदन ससि मदन भरी प्यारी। अदा की बांकी व्रजनारी।
सीस धरि गोरस की गगरी। रूप रस जोबन की अगरी।
बजा छमछम पायल पगरी। गई ग्वालिन गोकुल नगरी।

विविध विषयो पर साहित्य रचयिताओ मे इस काल भारतेन्दु के पिता गिरिधर दासजी, गुलाब बूंदी, गदाधर भट्ट, भगवान शरण, मुरारि दान और लखनेस गिनाये जा सकते है। मुरारिदान का वंशभास्कर एक उत्कृष्ट ग्रन्थ है। लखनेस की रचना मे मुक्तककार तथा कथा प्रासगिक दोनो प्रकार के कवियों की कृतियो का स्वाद मिलता है। इस काल प्राचीन प्रथा के ग्रन्थकारो मे वीर काव्य का प्राय· अभाव सा रहा। टीकाकारो मे प्राचीन काल मे कृष्ण और सूरति मिश्र मुख्य थे, तथा परिवर्तन काल मे सरदार और गुलाब का प्राधान्य रहा। इस काल व्रजभाषा की रचना में कुछ कमी आई और खड़ी बोली गद्य मे पूर्णतया प्रतिष्ठित हुई, तथा पद्य काव्य मे भी उसने स्थान पाया। जीवन होड सम्बन्धी संस्थाओ के मान पाने से देश मे गद्य का आदर बढा और इस प्रकार साहित्य मे परिवर्त्तन काल उपस्थित हो गया। कुल मिलाकर अलंकृत काल के सामने साहित्य प्रौढता मे परिवर्त्तन काल बहुत गिरा हुआ है, किन्तु अन्य कारणो से पूजार्ह है।

नवीन प्रथा।

नवीन प्रथा के लेखको में स्वामी दयानन्द सरस्वती, ईसाई लेखक गण, राजा शिवप्रसाद, राजा लक्ष्मणसिह, डाकृर हार्नली, नवीनचन्द्र

राय और बालकृष्ण भट्ट इस काल प्रधान हैं। स्वामी दयानन्द परिवर्त्तन काल के ऋषि थे, जिनकी गणना शंकराचार्य, स्वामी रामानन्द, बाबा नानक, गोस्वामी तुलसीदास आदि महात्माओ मे होती है। आपने ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, सत्यार्थ प्रकाश, आदि सोलह ग्रन्थ बनाकर भारत मे हिन्दू धर्म का एक नवीन संस्करण उपस्थित किया और १८७५ मे बंबई मे आर्यसमाज स्थापित करके जातीयता का मान बढाया। आपको जातीयता इतनी प्रिय थी कि विदेशियो के दिये हुये हिन्दू नाम का तिरस्कार करके आपने आर्य नाम पसंद किया, यद्यपि सब हिन्दू प्रकट ही आर्य नही हैं। आपने प्रतिमा, तीर्थादि का खण्डन करके विशुद्ध वैदिक मत स्थापित करने का प्रयत्न किया। सारे भारतवर्ष मे घूम घूम कर इस औदीच्य बाल ब्रह्मचारी ब्राह्मण ने हिन्दूमत को शुद्ध बनाने का निरतर प्रयत्न किया। प्राचीन काल मे जो बाते हमारे समाज के लिये ठीक क्या आवश्यक थी, किन्तु समय के साथ अब अनावश्यक क्या हानिकारिणी हो गई हैं, उन सब का निराकरण करके आपने वैदिक धर्म का जातीयता से अच्छा मिश्रण किया। जाति पांति को दूर हटाकर आपने गुण कर्मानुसार ही ब्राह्मणत्व आदि को माना। आपके मत का प्रभाव पञ्जाब मे विशेष पडा है। जो बहुतेरे हिन्दू ईसाई बन रहे थे, वे स्वामी दयानन्द तथा राजा राममोहन राय के प्रयत्नो से हिन्दू मत मे रुक गये। आर्य्य तथा ब्रह्म समाजो का यह भारी ऋण भारतीय सभ्यता पर है। स्वामीजी की भाषा विशुद्ध हिन्दी खड़ी बोली है और आपके उपदेश समयानुकूल तथा परमोच्च है। जिन जिन विश्वासों के कारण भारत मे आलस्य एवं अनुचित व्यय की वृद्धि है, उन सब का आपने खंडन किया। आपके धर्म मे केवल वेदो का माहात्म्य ऐसा है जो विश्वास से सम्बद्ध है। शेष विचार आपके प्रायः सब तर्कवाद पर अवलम्बित हैं। आपके प्रादुर्भाव से देश का भारी कल्याण हुआ। तार्किक मत चलाकर

अनेकानेक पण्डितो का तर्क मे आपने मान मर्दन भी किया। आर्य समाज के नियमो मे हिन्दी प्रचार भी एक है। आपकी भाषा उन्नत एवं समयानुकूल कुछ कुछ संस्कृत शब्द मिश्रित है। आपका समय १८२४ से १८८३ तक है। आपके प्रयत्नो से बाममार्ग पूर्ण पूजा, तथा मुस्लिम पीरो, क़बरो आदि का मान हिन्दू समाज मे कम हुआ।

लल्लूजीलाल, सदल मिश्र आदि के पीछे विशुद्ध हिन्दी का बीडा ईसाई उपदेशको ने उठाया। हिन्दू मुसलमान दोनो के विचारो एव कल्याण पर ध्यान देकर सरकार हिन्दी उर्दू मिली भाषा चलानी चाहती थी। सरकारी दफ्तरो मे पहले उर्दू का ही अधिक प्रचार हुआ, किन्तु ईसाई उपदेशको को सीधे सीधे जनता से काम पडता था। इसलिये उन लोगो ने ईसाई धर्म पुस्तको तथा मिशन की स्कूली किताबो मे जनता की भाषा विशुद्ध हिन्दी का मान किया। इस प्रकार हमारे उपरोक्त चार लेखको के पीछे ईसाइयो ही के द्वारा उस काल शुद्ध हिन्दी गद्य का प्रचार बढा। अनन्तर सरकारी शिक्षा विभाग मे हिन्दी उर्दू का झगडा चला, और कुछ मुसलमानों ने यह प्रयत्न किया कि केवल उर्दू देश भाषा मानी जावे। तब काशी निवासी राजा शिवप्रसाद ने युक्तप्रान्त मे तथा उपरोक्त नवीन बाबू ने पंजाब मे हिन्दी का पक्ष लेकर इसे भी स्कूलो मे स्थापित किया। नवीन बाबू के द्वारा पंजाब मे स्त्री शिक्षा का भी बीज बोया गया। राजा साहब ने खडी बोली मे कई पुस्तके लिखकर स्कूली शिक्षण विभाग का कलेवर भरा। पहले तो आप कुछ कुछ विशुद्ध खडी बोली लिखते थे, किन्तु समय के साथ आपकी रुचि हिन्दी उर्दू मिश्रित खिचड़ी भाषा की ओर अधिक झुकती गई। यह बात चाहे इच्छा से हो या अफसरो के दबाव से या समय की गति देखकर, बहरहाल बात ऐसी हुई अवश्य। आपका समय १८२३ से १८९५ तक है। राजा लक्ष्मणसिंह आगरेवाले का समय १८२६ से १८९६ तक है। राजा शिवप्रसाद इन्स्पेक्टर मदारिस तथा राजा लक्ष्मणसिंह डेपुटी

कलेक्टर थे। आपने गद्य पद्य मे कालिदास कृत शकुन्तला नाटक का अनुवाद किया। इसमे पद्यांश बहुत थोडा है। राजा साहब ने कुछ और भी ग्रन्थ शुद्ध खडी बोली मे लिखे। उर्दू मिश्रित खिचड़ी भाषा को हटाकर आपने संस्कृत शब्द युक्त भाषा का मान किया। यही बात स्वामी दयानन्द की भी है। सन् १८७५ के इधर उधर श्रीयुत श्रद्धाराम फुल्लौरी ने पजाब मे हिन्दी का अच्छा प्रचार किया। आपने सस्कृत, बंगला और अँगरेजी से कई अनुवाद किये, व्याख्यान दिये तथा लेखों मे अँगरेजी के विराम चिन्हो का प्रयोग हिन्दी मे भी जारी किया। आप धार्मिक उपदेशक तथा लेखक थे। आपका शरीरान्त १८८१ मे हुआ। मरते समय आपने कहा था कि आजतक हिन्दी मे दो लेखक है, किन्तु आज से एक ही रह जावेगा। प्रयोजन यह था कि भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र और स्वय फुल्लौरीजी मे से अकेले भारतेन्दुजी रहे जाते थे। बालकृष्ण भट्ट का जन्मकाल १८४४ था और दस पन्द्रह वर्ष हुये जबकि आपका शरीरान्त हुआ। आप संस्कृत के अच्छे विद्वान तथा शुद्ध सस्कृत शब्द मिश्रित हिन्दी के उत्कृष्ट लेखक थे। १८७७ मे भट्टजी ने हिन्दी प्रदीप नाम्नी मासिक पत्रिका निकाली। डाक्टर रुडाल्फ़ हार्नली का जन्म १८४१ मे आगरे मे हुआ। आप अध्यापक तथा पीछे पुरातत्व विभाग मे थे। उत्तरीय भारतवर्षीय भाषा समुदाय नामक आपका लेख बहुत प्रसिद्ध है, जिसमे यह सिद्ध किया गया है कि हिन्दी अनार्य भाषाओ की शाखा नही है, वरन् संस्कृत और प्राकृत से निकली है। आपने और भी कई विद्वत्तापूर्ण कार्य किये है। परिवर्त्तन काल मे व्रज और खडी भाषाओ का प्रचार अधिकता से रहा। कुल मिलाकर यह कहना पड़ेगा कि पूर्व माध्यमिक, प्रौढ माध्यमिक, तथा अलंकृत कालों मे जैसा साहित्यिक उत्कर्ष दिनो दिन बढ़ता आया था और जैसे ग्रन्थ दिनों दिन बनते आते थे, वह बात परिवर्त्तन काल मे न रही। स्वामी दयानन्द सरस्वती को छोड़कर इन दिनो का कोई रचयिता स्थायी साहित्य

न उत्पन्न कर सका। प्राचीन प्रणालीवाले पुराने भावो का चर्वित चर्वण करते रहे, और नवीन प्रथावाले अपनी प्रणाली स्थापित करने मे ऐसे संलग्न रहे कि बढिया साहित्य बनाने मे नितान्त असमर्थ हुये। समय के साथ भाषा का गाम्भीर्य अवश्य वृद्धिगत होता गया तथा नव्य प्रणाली दृढतर होती गई और नवीन उन्नतिशील भाव बढते गये, किन्तु साहित्यिक गौरव का अभाव सा रहा। परिवर्त्तन काल की कृतियो का प्रभाव हिन्दी साहित्य के इतिहास पर तो अच्छा पड़ा, किन्तु वह साहित्य गरिमा मे शून्यप्राय है। सदासुखलाल और सदलमिश्र सस्कृत शब्द मिश्रित पूर्वीपन युक्त हिन्दी लिखते थे, इंशाअल्ला उर्दू मिश्रित और लल्लूजीलाल व्रजभाषा मिश्रित। आगे चलकर ईसाई उपदेशको ने सदासुखलाल तथा सदलमिश्र का अनुसरण करके विशुद्ध खडी बोली लिखी, जिसमे सस्कृत का भी अधिक मेल न था। राजा शिवप्रसाद ने इशाअल्ला की अनुप्रासपूर्ण प्रथा तो छोड़ दी, किन्तु उर्दू मिश्रित प्रणाली को सत्कारा। स्वामी दयानन्द तथा राजा लक्ष्मणसिह ने सस्कृत शब्द युक्त प्रणाली का ही आदर किया। फुल्लौरीजी पंजाबी ढग लिये हुये अच्छी हिन्दी लिखते थे। बालकृष्ण भट्ट उत्पन्न तो परिवर्त्तन काल मे हुये तथा इनकी कुछ रचना इसी काल मे होने से इनका कथन इसी मे किया गया है, किन्तु वास्तव मे इनका विकास वर्त्तमान काल मे हुआ। इनकी भाषा उर्दू तथा सस्कृत शब्द मिश्रित विशुद्ध हिन्दी है। अतएव देखा जाता है कि हिन्दी गद्य की भाषा का प्रश्न परिवर्त्तन काल ही मे निर्णीत हो गया था। स्वामी दयानन्द यद्यपि मुख्यतया धर्मोपदेशक थे, तथापि लेखक भी साधारण न थे। धर्मोपदेशक हमारे यहां प्रायः दो प्रकार के होते आये हैं, एक तो गौतम बुद्ध, महावीर तीर्थकर, गोरखनाथ, कबीरदास, दादूदयाल आदि की भांति मत प्रचारक और दूसरे स्वामी शङ्कराचार्य, रामानुजाचार्य, रामानन्द, तुलसीदास आदि की भांति धर्म सुधारक और उपदेशक मात्र। बाबा नानक थे तो दूसरी ही प्रणाली के किन्तु

दशों गुरुओ का सम्मिलित प्रभाव नव्यमत स्थापन की ओर ढुलक गया। स्वामी दयानन्द देश प्रेम पूर्ण नव्यमत संस्थापको मे ही थे। इसी प्रकार बंगाल मे राजा राममोहनराय तथा केशवचन्द्र सेन ने आर्य समाज की भांति परिवर्त्तन काल ही में ब्रह्म समाज स्थापित किया। ये दोनो मत है तो अच्छे किन्तु हमारे समाज पर पौराणिक मत का ऐसा भारी प्रभाव है कि नवीन धर्मों का सिक्का अभीतक जमा नहीं है। भारत मे नवीन मत चलाना बहुत कठिन है। जब बुद्ध भगवान का प्रयत्न इतर देशो मे सबल होकर भी भारत मे सफल न हुआ, तब औरो की क्या कही जावै? उन्होने वैदिक मत का खडन अवश्य कर डाला, किन्तु उसका स्थानापन्न पौराणिक मत बहुत उत्कृष्ट निकला, जो अब तक चल रहा है, और है भी बहुत बढ़िया। समय की गति से इसकी कई संस्थाये हानिकारिणी हो गई है, और उठ भी रही है। पौराणिक मत ने वैदिक मत का काटना कहा नही. यद्यपि वास्तव मे उसे काट अवश्य दिया। स्वामी दयानन्द ने उसके पुनर्स्थापन का प्रयत्न किया तथा पौराणिक मत की अनुचित प्रणालियो के उठाने मे चित्त लगाया। ब्रह्मसमाज ने भक्तिपूर्ण अद्वैतवाद को अपनाकर वेदो की मुख्यता न बढ़ाई, तथा हानिकारिणी सस्थाओ को निन्द्य ठहराया। अब तक ये दोनो समाज संसार पर कोई विशेष प्रभाव स्थापित नही कर सके हैं, तथा पौराणिक मत की अनुचित रीतियो का तिरस्कार केवल सामाजिक प्रश्नो के रूप मे हो रहा है, एव उनका वल टूटता जाता है। परिवर्त्तन काल ने इन सबो मे हमारी उन्नति की।

वर्त्तमान काल (१८६९ से अब तक)

परिवर्त्तन काल के पीछे भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का रचना काल महत्तामण्डित हुआ। आपने प्राचीन प्रथा का गीत काव्य, नायिका भेद गर्भित छन्दादि अवश्य कहे, जो गरिमा मे साधारण है, किन्तु

मुख्यता यह है कि नवीन प्रणाली को आपसे भारी बल मिला। जातीयता पूर्ण साहित्य हमारे यहां पहले पहल आपही ने पूर्ण बल के साथ बनाया। आपके नाटको मे कई विषयो पर रचना हुई तथा गद्य को भी आपसे अच्छी दीप्ति प्राप्त हुई। आपका समय १८५० से १८८४ तक है। आप एक बड़े ही जिन्दा दिल पुरुष थे। नाटको मे आपने कई मौलिक रचे और कितने ही अनुवाद। इन्ही के समय से हमारी जातीयता जाति से हटकर देश प्रेम की ओर चलने लगी, और हिन्दीसाहित्य ने मानो नये मार्ग देखे। ऐतिहासिको मे इस काल मुन्शी देवीप्रसाद जोधपुरवाले तथा राय बहादुर महामहोपाध्याय पं० गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझा अजमेर निवासी प्रमुख है। मुन्शीजी ने विशेषतया मुसलमानी काल के कई हिन्दू और मुसलमान महापुरुषो के छोटे बड़े जीवन-चरित्र लिखे तथा हिन्दी साहित्य के इतिहास पर भी कुछ परिश्रम किया। ओझाजी पुरातत्व विभाग के पदाधिकारी तथा भारतीय इतिहास के प्रेमी है। आप ने इस विषय पर परिश्रम करके कई उत्कृष्ट ग्रन्थ लिखे है। प्राचीन प्रथा के कवियों मे इस काल रसिकेश, ललित, हनुमान, राय देवीप्रसाद पूर्ण और बाबू जगन्नाथदास रत्नाकर गिनाये जा सकते है। रत्नाकरजी ने बिहारी और सूरदास पर भी श्रम किया। पं० गोविन्दनारायण मिश्र और प० महावीर प्रसाद द्विवेदी ने हिन्दी भाषा को सस्कृत करने का भारी प्रयत्न किया, अर्थात् उसे नियमबद्ध बनाना चाहा। मिश्रजी ने विभक्ति प्रत्यय पर एक ग्रन्थ रचा। आप संस्कृत के कुछ नियमो को हिन्दीपर लागू करना चाहते है, अर्थात् मानो रामस्य सस्कृत का एक शब्द होने से रामका को भी दो शब्द न मानकर आप एक ही मानना चाहते है। द्विवेदीजी की इच्छा है कि हिन्दी लेखकगण शब्दो के प्रयोगो तथा रूपो मे संस्कृत नियमो का उलङ्घन न करे। इन बातो से साहित्यिक हिन्दी संस्कृत की भांति जटिल होकर मृत भाषा हो जावैगी, ऐसा भय है।

जैसे सस्कृत, प्राकृत, आदि वाले सैकडो कविगण के ग्रन्थ और यश व्याकरण भव काठिन्य के कारण उन भाषाओ के मृत हो जाने से लुप्त हो गये, उसी प्रकार हिन्दी के कवियो और ग्रन्थो की दशा होगी, ऐसा समझ पड़ता है। इसलिये भाषा की सजीवता स्थिर रखने को उसमे स्वच्छन्दता स्थापित रखनी आवश्यक है। सब से बड़ी बात ध्यान देने योग्य यह है कि भाषा भावो की वाहन मात्र है। यदि उसी का जानना इतना कठिन हो जावै कि संस्कृत की भाति बिना दश वर्ष प्रयत्न किये वह ज्ञात ही न हो सकै, तो संसार अपने समय का इतना भारी टैक्स उसे न देकर किसी दूसरी भाषा का ही प्रयोग करैगा। यदि आपकी रेल मे सभी गाडिया औवल दर्जे ही की होगी, तो यात्री इतना बडा महसूल देने के स्थान पर किसी दूसरी सवारी से ही काम लेगे। इसी लिये लोकप्रियता के विचार से आवश्यक है कि भाषा सुगम से सुगम हो। दुर्गम भाषा सीखने के स्थान पर लोग किसी और ही भाषा का प्रयोग करैंगे।

कथा प्रासङ्गिक रचयिताओ मे इस काल सहजराम और नन्दराम प्रमुख है। पं० गौरीदत्त कोषकार और हिन्दी के लिये उमगपूर्ण काम करनेवालो मे थे तथा बाबू अयोध्याप्रसाद जी खत्री खड़ी बोली के अवतार ही थे। आप जब मिलते थे, तब खड़ी बोली के अधिकाधिक प्रचार का ही विषय छेड़ते थे। ठाकुर शिवसिंह सेगर काथा निवासी ने शिवसिह सरोज रचकर प्रायः १००० हिन्दी कवियो के समालोचना तथा जीवन चरित्र गर्भित कथन किये। सबसे पहले प्राचीन कवि कालिदास त्रिवेदी ने हज़ारा नामक ग्रन्थ रचकर प्रायः २१२ कवियो की रचनाये सुरक्षित की। तदनन्तर कई अन्य कवियो और लेखको ने प्राचीन कवियो के नाम अथवा छन्द लिखकर इस विषय मे सहायता दी। इसके पीछे हिन्दी साहित्य के वर्णन मे हम तीनो भाइयों (प० गणेशबिहारी मिश्र, रायबहादुर प० श्यामबिहारी मिश्र तथा मैं) ने मिश्रबन्धु विनोद नामक ग्रन्थ बनाया, जिसमे अब प्रायः

४५०० हिन्दी लेखको के नामो और ग्रन्थो के समालोचना और जीवन-चरित्र गर्भित कथन है । इधर रायबहादुर बाबू श्यामसुन्दरदास, श्रीयुत सूर्य्यकान्त शास्त्री, प० रामचन्द्र शुक्ल, तथा पं० रामशङ्कर शुक्ल ने भी इसी विषय पर ग्रन्थ लिखे है। प० अयोध्यासिंह उपाध्याय ने भी इस विषय पर एक ग्रन्थ बनाया है, यद्यपि अभी वह अमुद्रित है। साहित्य इतिहास के साथ समालोचना की भी परिपाटी हिन्दी मे चल निकली है। इस विषय पर कई सुलेखको ने ग्रन्थ बनाये है, तथा हिन्दी के पत्र पत्रिकाये भी इस काम को करती है। फिर भी अभी हमारा समालोचना विभाग बहुत अपूर्ण है। समालोचना के प्रबल पडने से साहित्य को उन्नति अच्छी हो सकती है, क्योकि उसके द्वारा अच्छे ग्रन्थो का मान बढता तथा बुरो का चलन कम होता है।

कुछ योरोपियन लेखको ने भी हिन्दी पर परिश्रम किया है। इनमे फ्रेडरिक पिन्काट, ग्रीव्ज़ साहब तथा डाक्टर सर ग्रियर्सन प्रमुख है। पिन्काट साहब (जन्म १८३६) ने हिन्दी पर काम किया है और ग्रीव्ज़ साहब (जन्म १८६०) ने भी ऐसा ही किया तथा हिन्दी साहित्य का एक छोटा सा इतिहास भी ॲंगरेजो मे लिखा है। डाक्टर ग्रियर्सन साहब ॲंगरेजो मे हिन्दी पर बडे भारी कार्यकर्त्ता हैं। माडर्न वर्नैक्युलर लिटरेचर आव् हिन्दुस्तान मे आपने हिन्दी कवियो का समालोचना गर्भित इतिहास सरोज के आधार पर तथा अपनी ओर से भी भारी खोज करके लिखा है, अथच लिग्विस्टिक सर्वे आव इण्डिया मे प्रचुर परिश्रम करके भारतीय भाषाओ का विद्वत्तापूर्ण वर्णन किया है, जिसमे आपने सिद्ध किया है कि हिन्दी राष्ट्र भाषा है। कई अन्य योरोपियन सज्जन भी हिन्दी पर विशेष ध्यान देते है। नाटककार इस काल कई हो गये है, और है। हमारा यह विभाग पूर्ण तो नही है किन्तु पहले के देखते वर्त्तमान काल ने इसकी उन्नति बहुत अच्छी की है। इस काल के प्राचीन नाटककारो मे भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र, चौधरी बदरीनारायण, श्रीनिवासदास आदि

के नाम आते है। जीवित लेखको मे जयशंकर प्रसाद, गोविन्द वल्लभ पन्त आदि कई महाशयो ने उत्कृष्ट नाटक ग्रन्थ रचे है। बाबू शिवनन्दन सहाय तथा बाबू व्रजनन्दन सहाय ने अच्छे अच्छे जीवनचरित्रो से हिन्दी को अलकृत किया है। कई अन्य भी जीवन-चरित्रकार हैं। लाला सीताराम ने संस्कृत के कई प्राचीन कवियो की रचनाओ का हिन्दी पद्य एवं गद्य मे अनुवाद किया है। भाषणो की प्रथा भी आर्यसमाज तथा सनातन धर्म महामण्डल के सहारे बलवती होकर अच्छी विस्तृत हुई है। आजकल सैकडो महाशय हिन्दी मे धारा प्रवाह से व्याख्यान देते है। प दीनदयालु शर्मा, पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र, प० गणेश दत्त शर्मा आदि महामण्डल के उपदेश देनेवालो मे है या थे। इन लोगो का आर्य समाजियो से भारी मतभेद रहता है। उपन्यास लेखको मे बाबू देवकीनन्दन खत्री, बाबू गोपालराम गहमर निवासी, गोस्वामी किशोरीलालजी, उग्रजी, बाबू प्रेमचन्द जी आदि प्रमुख है। देवकीनन्दनजी ने ऐयारी पूर्ण असम्भव उपन्यास लिखे, जो है तो मनोरञ्जक, किन्तु शिक्षापूर्ण न होने तथा असम्भव घटना गर्भित होने से श्लाघ्य नही है। प्रचार इनका कुछ दिन ऐसा हुआ कि बहुतो ने केवल इन्ही को पढने के लिये हिन्दी सीखी थी।

नवीन प्रथा के कवियो मे पं० श्रीधर पाठक, प० अयोध्यासिह उपाध्याय, बाबू मैथिलीशरण गुप्त, निरालाजी, तथा प० सुमित्रानन्दनजी पन्त प्रधान हैं। इन सभो ने खडी बोली मे रचना की है। अन्तिम दोनो महाशय छायावादी भी है, तथा अनेकानेक अन्य छायावादी कवि है। कुछ लोग इसी छायावाद को घास लेटी साहित्य कहते है। प्रयोजन उसकी निन्दा से है। हमारी समझ मे यदि छायावादी कविता अर्थाव्यक्त दोष से बचाई जावै, तो कुछ बुरी न कही जा सकेगी। दोष इतना ही है कि बहुतेरे छायावादी ऐसे दूर के भाव लाते हैं जो उनके शब्दो से व्यक्त ही नही होते। यो भी छायावाद एक प्रकार का अन्योक्ति अलङ्कार है जो सर्वथा आदरणीय है।

उपाध्यायजी ने कई प्रकार का गद्य एव पद्य लिखा है। पाठकजी ने व्रजभाषा मे भी उत्कृष्ट रचना की है। गुप्तजी ने खडी बोली मे कई बड़े बड़े ग्रन्थ बनाये हैं। निराला जी तथा पन्त जी भी उत्कृष्ट कवि हैं। वर्त्तमान काल के उत्कृष्ट गद्य लेखको मे ठाकुर गदाधर सिह सचेडीवाले, प० गंगाप्रसाद अग्निहोत्री, बाबू श्यामसुन्दर दास, चतुर-सेनजी शास्त्री, पं० भुवनेश्वर मिश्र आदि के नाम गिनाये जा सकते हैं। कई अन्य भी ऐसे ही सुलेखक है। आजकल विषयो का फैलाव हिन्दी मे बहुत अच्छा हुआ है। राजनीतिक लेखको मे इस काल राजा रामपाल सिंह काला काकड़ (१८४८-१६१०), महात्मा श्रद्धानन्द मुशीराम (१८५८ जन्म काल), महामना मालवीय जी, लाला लाजपति राय आदि हुये। राजा साहब ने प्रचुर हानि सहकर दैनिक हिन्दु-स्तान पत्र निकाला तथा कई अन्य लोकहित-साधक कार्य किये। महात्मा श्रद्धानन्द ने कागडो मे आर्यसमाज सम्बन्धिनी गुरुकुल संस्था स्थापित को, जिसमे सरकारी विश्वविद्यालयो से स्वतन्त्र, प्राचीन प्रथा पर नवोन प्रकार से अध्यापन होता है। इस सस्था से निकले हुये ब्रह्मचारी प्रायः देशप्रेमी होते है। इनके स्वदेश प्रेम के विचार आर्यसमाजवाले सिद्धान्तो के अनुसार उच्च कोटि के होते हैं, जिनमे मतभेद सम्भव है, किन्तु इन लोगो का स्वार्थत्याग तथा देशप्रेम सर्वथा मान्य है। यह एक बहुत ही लाभदायिनी संस्था है, जिससे देश का भविष्य बहुत कुछ समुज्वल हो सकता है। इन महात्मा जी ने खरे मुसलमानों तक को हिन्दू बनाने मे भी सफलता के साथ प्रचुर परिश्रम किया और इसी आरम्भ मे एक कट्टर मुसलमान युवक के हाथ से इनका बध हुआ। मुसलमान बने हुये हिन्दुओ को फिर हिन्दू बनाने मे छत्रपति शिवाजी ने भी उदारतापूर्ण कार्य्य किया था। कुछ दिनो इस बात का बहुत बल रहा किन्तु अब ढिलाई देख पड़ती है। गुरुकुल की संस्था अब भी पूर्ण उद्योग के साथ चल रही है। इसके स्थापन

एव सञ्चालन मे कई और महाशयो ने भी भारी परिश्रम किया है और कर रहे है। इसकी कई शाखाये भी यत्र तत्र स्थापित है। इसके ढगपर सनातन धर्मियो ने ऋषिकुल नाम्नी संस्थाये स्थापित की है, जिनकी पूर्ण लोक महिमा अभी स्थिर होनी शेष है। भारतधर्म महामण्डल की कृतिया अभीतक प्राय वैसी ही समझी जाती है, जैसी कुछ दिन कांग्रेस के प्रतिकूल ऐंटी कांग्रेस की थी। यदि करना चाहै तो इनके लिये भी बहुत कुछ क्षेत्र है, किन्तु कुछ लोगो का विचार है कि अभीतक महामण्डल ने तादृश लोक हितसाधन नही किया है, जैसा कि आर्यसमाज ने।

समाज भी प्राय तीस वर्ष तक आर्यधर्म के रूप मे जातीयता एवं समाज संशोधन मे बहुत तेज़ी से चला और इसमे अनेकानेक बडे ही साहसी, स्वार्थत्यागी तथा देशप्रेमी लोग काम करते रहे। पीछे से देश सेवा की ओर समाज का ध्यान अधिक बढ़ जाने से सामाजिक सुधार एवं धार्मिक प्रयत्नो की ओर तुलनात्मिका दृष्टि से ध्यान कुछ कम हो गया, और धार्मिक प्रयत्नोवाले मंचो से जातीय काम करने मे कुछ जाति पांति की बू समझकर तथा उन धार्मिक संस्थाओ से असम्बद्ध महाशयो को जातीय काम मे खीचने अथच उनका पूरा सहयोग प्राप्त करने के निमित्त, लोग सीधा सादा जातीय कार्य्य ही करने लगे, जिससे धार्मिक व्यवसायो मे कुछ शिथिलता सी देखे पड़ने लगी है। फिर भी उत्तरी भारत मे आज दिन भी आर्यसमाज बहुत कुछ काम कर रहा है। देश प्रेमी अथच स्वार्थत्यागी आर्य समाजियों में पञ्जाबी महाशयो की संख्या आनुषङ्गिक दृष्टि से बहुत थी और है। उपदेश एवं अन्य कार्यों के अतिरिक्त आर्यसमाज ने कई कालेज, कन्या स्कूल आदि भी पञ्जाब और युक्तप्रान्त मे खोल रक्खे है, जिनसे प्रचुर लोक हित साधन होता है। लाला लाजपतिराय आर्यसमाज के एक प्रकृष्ट कार्यकर्त्ता थे, तथा राजनीति सम्बन्धी कामों मे बहुत लगे रहे थे। इनकी नीति गरमदल की सी थी। महामना मालवीय जी ७० वर्ष के वृद्ध एक बड़े

प्राचीन और प्रतिष्ठित ब्राह्मण कार्यकर्त्ता है। आप हिन्दी गद्य लेखक, पत्र सम्पादक, और भारी देश सेवक है। आप भारतवर्ष के सबसे बड़े भिक्षुक माने गये है। सारे भारतवर्ष मे घूम घूमकर आपने धन एकत्रित किया जिससे तथा कुछ सरकारी सहायता से काशी मे सुविशाल हिन्दू शिश्वविद्यालय स्थापित किया है, जिसमे प्रायः छै सहस्त्र उच्च कक्षाओ के बालक शिक्षा पा रहे हैं। आपकी नीति नरम और गरम के बीच मे समझी जाती है। बडे विश्वासी हिन्दू होकर भी आप हरिजनो की उन्नति मे यथावकाश योग देते है। अनेकानेक अन्य महाशय भी राजनीतिक कार्य किया करते है, जिन सबके कथन यहां अनावश्यक है, तथा मुख्य मुख्य नेताओ के यथावकाश आ भो जावेगे। भारत मे कई विश्वविद्यालय खुल गये है जिनसे देश मे विद्या का अच्छा प्रचार है। इनसे हिन्दी हित भी कुछ न कुछ होता ही रहता है। आशा है कि भविष्य मे इसकी मात्रा समुचित हो जावैगी तथा शिल्प व्यापार का शिक्षण बढैगा।

आजकल ससार पर मुख्य साहित्यिक प्रभाव पत्रो का है। अतएव उनके वर्णन करने के पूर्व राजनीतिक एवं अन्य प्रमुख संस्थाओ का दिग्दर्शन आवश्यक है। पहले हम राजनीतिक सभाओ का कथन करते है। ऊपर कहा जा चुका है कि १८६१ मे प्रथम भारतीय आईन सभा चली। अनन्तर १८६१-२ मे उसका परिवर्द्धन हुआ तथा प्रांतीय सभाये भी स्थापित हुई। १९१० में मार्लो मिंटो संशोधन आये जिनके द्वारा कौंसिल स्टेट भी जमी, तथा राजनीतिक सभाओ के अधिकार वर्द्धमान हुये। १९२१ मे माटेग्यू चेम्सफोर्ड नामक सुधार किये गये जिनसे इन सभाओ के अधिकार और भी उन्नत हुये। इन दिनो चार पांच साल से फिर इस गहन विषय पर विचार हो रहा है तथा विलायत मे तीन गोलमेज की सभाये हुई है, जिनमें प्रमुख अँगरेजों और कुछ भारतीयो ने मिलकर सुधार विषयक बहुत से विचार पुष्ट किये हैं, किन्तु जिनका कार्यरूप

मे परिणत होना अभी भविष्य की गोद मे है। उनके विषय में विविध राजनोतिक दलो अथच व्यक्तियो मे खासी खीच तान चल रही है। जब १८१८ तथा १८४६ और १८५८ की घटनाओ से ॲंगरेजी बल भारत मे दृढता के साथ स्थापित हुआ, तब से प्राय: पचास वर्षो तक हिन्दू मुसलमानो मे कोई राजनीतिक झगडा न उठा, ॲंगरेजी राज्य का बल अखण्ड समझा जाता रहा और भारतीय दोनो जातिया बहुत करके दबी रहीं। १९०६ के कुछ पूर्व कई राजनीतिक आन्दोलन सबल रूप मे उठे तथा मुसलमानो का जो विचार था कि प्रतिनिधि निर्वाचन मे हिन्दू बहु सख्या के कारण हमारी जाति उचित भाग नही पाती है, वह फूट निकला और उनका एक जत्था बडे लाट साहब के सामने इसी अभिप्राय से उपस्थित हुआ। वहा से उस डेपुटेशन का अच्छा आश्वासन हुआ। अनन्तर १९१७ में हिन्दू मुसलमानो का इस प्रश्न पर समझौता हुआ, किन्तु मांटफ़ोर्ड रिपोर्ट मे यह कहा गया कि इस प्रकार के समझौते के कार्य रूप मे परिणत होने से दो जातियो का पृथक्करण होगा जिससे भविष्यत् भारतीय जातीयता मे क्षति आवैगी। यद्यपि यह विचार ठीक था, तथापि हिन्दुओ ने समझा कि हम यदि ऐसे अवसर पर उच्चाधि-कारियो के सहारे अपने माने हुये समझौते से पीछे हटते है, तो मुसलमान भाइयो को हमारे ऊपर उचित ही अविश्वास होगा। अतएव हिन्दुओ ने उसे न छोडा और वह दोनो दलो की स्वीकृति से कार्यरूप मे आ गया। अनन्तर जब १९२७ मे राजनीतिक सुधार का प्रश्न फिर से उठा, तब कुछ मुसलमानो ने कहा कि १९१७ मे हम नासमझी कर गये थे, सो यह जटिल प्रश्न फिर से उठाया जाना चाहिये। कुछ हिन्दुओ का विचार है कि इस प्रकार से एक बार लाभ उठाकर फिर से झगडा करना मुसलमानो के लिये अनुचित है और कुछ सोचते है कि उनके कथन मे थोडा बहुत तथ्याश भी हो सकता है। जब कई प्रयत्न करने पर भी यह प्रश्न आपस के समझौतों से

निर्णीत न हो सका, तब विलायत मे सरकार ने इसका निर्णय कर दिया। इस आज्ञा से बहुत लोग असन्तुष्ट है और कुछ थोडे से लोग यह भी समझते है कि किसी प्रकार झगडा तै होना ही ठीक है। इन्ही दिनो हिन्दुओ मे नीच समझी जानेवाली जातियो का भी असन्तोष प्रकट हुआ। इन्हे अब हरिजन कहने लगे है। यह मामला आईन सभाओ के लिये महात्मा गांधी के अनशन व्रत से निर्णीत हो गया है, किन्तु उनके हिन्दू देव मन्दिरो मे जाने तथा अन्य सामाजिक अधिकारो के विषय मे बहुत कुछ कार्य शेष है, जिसके विषय मे सुधारको तथा प्राचीन प्रथानुयायी हिन्दुओ मे भारी मतभेद है।

सन् १८८५ मे ह्यूम, वेडरबर्न तथा नौरोजी महाशयो ने सोचा कि राजनीतिक विषयो पर मतैक्य प्राप्त करने के लिये कोई संस्था आवश्यक है। प्रचुर प्रयत्न करके इन महाशयो ने १८८७ मे भारतीय जातीय कांग्रेस नाम से एक संस्था स्थापित की जिसकी बैठकै तीन दिन प्रति वर्ष होने लगी। कुछ दिनो तक सरकार की भी इससे गुप्त या प्रकट सहानुभूति रही, किन्तु पीछे से शीघ्रता पूर्वक इसकी मांगैं बढ़ती गईं, जिससे सरकार से इसका कोई विशिष्ट सम्बन्ध न रहा। १९०५ मे बंग देश के दो ऐसे प्रान्त बनाये गये जो बंगालियो को बहुत नापसन्द थे। इस पर उन लोगो ने घोर आन्दोलन मचाया। अन्य प्रान्तवाले राजनीतिको ने भी उनका थोडा बहुत साथ दिया। इस आन्दोलन से कांग्रेस का बल बढा। सन् १९११ मे सम्राट् के दिल्लीवाले मुकुट धारण के दरबार मे बग बिच्छेद का झगडा समुचित रीत्या निर्णीत हो गया। सन् १९०७ तक कांग्रेस बहुत करके नरम दल के हाथ मे रही। इसके नेता समय समय पर श्रीमान् दादा भाई नौरोजी, सर फ़ीरोजशाह मेहटा, और अन्त मे गोखले महाशय रहे। उधर लोकमान्य तिलक के नेतृत्व मे भारत मे एक गरम दल कुछ साल से स्थापित हुआ था, और १९०७ के पीछे कांग्रेस मे इसी का प्रभाव हो गया। दोनों दलो में १९०७ की सूरत सभा मे कुछ झगडा भी हो

गया। गोखले महाशय के भी विचार मिलते प्राय पूर्णतया गरम दल के सिद्धान्तो से थे, किन्तु भेद बहुत करके इतना था कि आप ऐसे काम नही करना चाहते थे जो राज नियमो के प्रतिकूल हो। चाहते दोनो नरम गरम दल प्राय. एक ही बात थे, किन्तु नरम दलवाले थोडी भी सरकारी कृपा से प्रसन्न हो जाते थे तथा स्वराज्य-वाले दिन के बहुत देर से आने मे अधिक अप्रसन्न न थे। कुछ लोग हॅसी मे कहा करते थे कि गरम दल का अर्थ है वह नरम दल जो जल्दी मे हो। ॲगरेजी पत्र पायोनियर ने एक बार कहा था कि चिकनी बातोवाले आईन सभा के सदस्य से लेकर दुर्दान्त बम्ब प्रहारक तक का है वास्तव मे एक ही कुटुम्ब। बात भी कुछ अशो मे ठीक थी। ध्येय दोनो के एक ही थे। भेद बहुत करके कार्य प्रणाली मात्र का था। तिलक महाशय पत्रो मे कुछ ही ढका हुआ राजविद्रोह लिखते थे, किन्तु कहते यही थे कि हम भी राजभक्त प्रजा है। यही हाल उनके कई अनुयायियो का था। अपने लेखो के कारण उनको कुछ बार जेल भी जाना पडा था। आपने मराठी मे श्रीभगवद्गीता की एक परमोत्कृष्ट टीका लिखी, जिसका अभिप्राय था कि गीता के अनुसार ज्ञानयोग से कर्मयोग उत्तर है। तिलक महाशय के पीछे राजनीतिक नेताओ मे महात्मा गाधी का प्रभाव सबसे बडा है। यह प्रभाव १९२१ तक खूब रहा, किन्तु पीछे पांच छै साल तक कुछ कम रहकर १९२७ के इधर उधर से पुनर्बार भारी है। आपके अनुयायियो मे पडित मोतीलाल नेहरू, देशबन्धुदास, पटेल भाई, बाबू राजेन्द्रप्रसाद आदि कई प्रभावशाली पुरुष हुये तथा कुछ अब भी हैं। इन लोगो ने तिलक महाशय के ढगो से आगे बढकर यह कहना भी छोड़ दिया कि हम राजद्रोही नही हैं, वरन् ये न्यायालयो मे अभियोगो से अपनी रक्षा भी नही करते। गोलमेज़ की सभाओ मे जो बाते निर्णीत हुई है, उनपर इन्होने अभी तक अन्तिम सम्मति नही दी है। इन सभाओ मे सर सपरू, श्रीयुत जयकर आदि ने सराहनीय श्रम किया है।

उपरोक्त विवरण से प्रकट है कि कुछ वर्षों से हिन्दू समाज का ध्यान धार्मिक जातीयता से उचट कर राजनीतिक पर लग गया है। इसका मुख्य सूत्रपात्र साम्राज्ञी की १८५८ वाली घोषणा से हुआ, जिसमे विलायती और भारतीय प्रजा को समान मानने का बचन दिया गया। पहले तो इस पर किसी ने विशेष ध्यान नही दिया, किन्तु पीछे से कुछ लोगो को समझ पडा कि विविध प्रजाओ मे समता का व्यवहार कथन मे तो आया, किन्तु कार्यरूप मे परिणत न हुआ। अधिकतर समाज पहले इन विचारो से असम्बद्ध थी और अपने प्राचीन धार्मिक सिद्धान्तो, गोरक्षा, मोहर्रम दशहरा के कभी कदास होनेवाले झगडो आदि मे मस्त थी, किन्तु थोडे से शिक्षा गृहीत भारतीयो को समझ पडने लगा कि वास्तव मे हमारे ऊपर सम्राट का निजी शासन न होकर ब्रिटेन की प्रजा द्वारा नियोजित अफ़सरो भर का है। इस प्रकार व्यक्तिगत शासन के स्थान पर उन लोगो को एक देश पर दूसरे देश भर का शासन देख पडने लगा। यही विचार बहुत करके राजनीतिक जातीयता की उत्पत्ति का कारण हुआ। कांग्रेस ने इसे बढ़ाया तथा नौरोजी महाशय ने एक साल अपने सभापतित्व मे प्राचीन नियम समुदाय के आधार पर यह मत प्रकट किया कि भारतीयो को वास्तव मे नियमानुसार स्वराज्य मिल चुका है, किन्तु शासको की दुर्नीति मात्र से वह कार्य रूप मे प्राप्त नही होता। समय पर ऐसे विचारो के बल पकडने पर १९१७ मे सम्राट् ने भी लक्ष्यरूप से मान लिया कि भारत मे प्रतिनिधि शासन का प्रचार समय पर होगा। इसी कथन के अनुसार १९२१ मे राज्यप्रणाली मे कुछ उन्नति हुई, किन्तु कुछ लोगो का विचार है कि इस १९१७ वाले बचन का भी यथावत पालन नही होता है। १८५८ के पीछे इसी प्रकार के विचार तथा आदर्श देश मे चल रहे है। कोई इनके अनुकूल सम्मति प्रकट करता है और कोई प्रतिकूल। अँगरेज़ो द्वारा धर्म, स्त्री समाज, आदि पर कोई

अत्याचार नहीं होता। प्राचीन काल मे जो कष्ट थे या समझे जाते थे, वे अब शान्त हो चुके है। आज दिन यदि उच्च समाज मे धार्मिक झगडा भी होता है, तो साधारण धार्मिक प्रश्नो पर न होकर धर्म की आड़ मे राजनीतिक बल वर्द्धन का प्रयोजन प्राय. रहता है। अब तो वास्तविक खटपत व्यापारिक तथा राजनीतिक है।

हमारी हिन्दी सम्बन्धी मुख्य संस्थाओ मे काशी नागरी प्रचारिणी सभा, आरा नागरी प्रचारिणी सभा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, आदि है। सम्मेलन का स्थान प्रयाग है। उसके मुख्य कार्य है हिन्दी विद्यापीठ स्थापन, विश्व-विद्यालयो की भाति हिन्दी मे परीक्षाये चलाकर मानपत्र वितरण, हिन्दी प्रचार तथा प्रतिवर्ष एक महती सभा का कही न कही सगठन। अच्छे ग्रन्थो के रचयिताओ को इसके द्वारा मगलाप्रसाद पारितोषिक आदि भी मिलते हैं। परीक्षाओ का जो काम सम्मेलन द्वारा होता है, वह बड़े महत्व का है। हिन्दी प्रचार से मद्रास तथा आसाम प्रान्तो मे अच्छा काम हुआ है और जारी है। मद्रास में चार प्रान्तीय भाषाये चलती है, जिन सब को सब मद्रासी भी नही समझ पाते। इस झगडे को दूर करने के लिये वे लोग हिन्दी का अपने मे प्रचार कर रहे है। काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने भी कई अच्छे काम किये है, जिनमे पृथ्वीराज रासो का मुद्रण, हिन्दी शब्दसागर कोष का निर्माण, प्राचीन हिन्दी ग्रन्थो की खोज, तथा सरकारी दफ्तरो मे नाम मात्र को नागरी प्रचार मुख्य हैं। यह प्रचार का कार्य अभी है बहुत अधूरा क्या नही के बराबर। सभा और पुस्तके प्रकाशित कर रही है तथा अन्य प्रकार से भी हिन्दी हित मे प्रयत्नशील रहती है। आरा नागरी प्रचारिणी सभा ने भी इसी प्रकार के अच्छे कार्य किये है, तथा कई अन्य सभाये यत्र तत्र स्थापित है। इन सब का प्रभाव हिन्दी प्रचार मे अच्छा पड़ रहा है। कई सरकारी विश्वविद्यालयो की एम्० ए०, बी० ए० आदि

परीक्षाओ तक मे हिन्दी को मान मिल चुका है। हिन्दुस्तानी एकेडेमी सरकार की कृपा से अलाहाबाद मे स्थापित है, और हिन्दी उर्दू की उत्कृष्ट पुस्तके प्रकाशित करने, पारितोषिक देने, तथा अन्य भलाइयो मे प्रयत्नशील रहती है। श्रीमान् शारदाचरण मित्र, भूतपूर्व हाईकोर्टके जज बगाल, ने भी नागरी लिपि के प्रचार मे अच्छा प्रयत्न किया। आपका सिद्धान्त था कि यदि बंगला, मराठो, गुजराती, पञ्जाबी, तामिल, तेलेगू आदि भाषाये नागरी लिपि मे लिखी जाने लगे, तो भारत मे एक लिपि विस्तार के साथ एक भाषा का भी प्रचार समय पर होकर हिन्दी अपने उचित राष्ट्रभाषावाले उच्चासन पर आसीन हो जावै। इस अभिप्राय से आपने कई वर्ष देवनागर नामक मासिक पत्र निकाला, जिससे अच्छो देश सेवा हुई। शोक है कि यह उपयोगी पत्र बन्द हो गया है। आजकल बिहार, मध्यप्रदेश, तथा कई देशी रियासतो के न्यायालयो मे नागरी लिपि का मान है। युक्तप्रान्त ने भी इस विषय को छुआ है, किन्तु नाम मात्र को।

अब हम अपने पत्र पत्रिकाओ का कुछ विवरण देते है। भारत का पहला पत्र कलकत्ता गजट था। स्वतन्त्ररूप से यहां १७८० मे हिकीज बगाल गजट निकला। ईसाइयो ने समाचार दर्पण १८१८ मे निकाला, तथा १८२२ मे बम्बई समाचार निकला। १८३३ मे उर्दू का पहला पत्र निकला जिसका नाम शायद उर्दू अखबार था। इसके पीछे उर्दू के कई पत्र निकले और अब भी निकल अथवा चल रहे हैं। हिन्दी का पहला पत्र बनारस समाचार १८४५ मे राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द ने निकाला। इसकी भाषा लोगो मे निन्द्य मानी गई। १८६८ मे भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने कवि बचन सुधा नाम्नी पत्रिका निकाली। १८७१, १८७२, और १८७६ मे क्रमशः अलमोडा समाचार, बिहार बन्धु, तथा भारतबन्धु नामक साप्ताहिक पत्र निकले। अनन्तर मित्र विलास, सार सुधानिधि, उचित वक्ता, भारत मित्र, वेकटेश्वर आदि का क्रमशः उदय हुआ। आजकल प्रताप,

आज, विश्वमित्र आदि अच्छे अच्छे दैनिक हिन्दी पत्र है, सैनिक, कर्मवीर, भारत, अभ्युदय, तरुण राजस्थान आदि साप्ताहिक पत्र हैं, तथा सुधा, कल्याण, विशालभारत, माधुरी, वीणा, त्यागभूमि, सरस्वती आदि उत्कृष्ट मासिक पत्रिकाये है। अब हिन्दी में साहित्य, राजनीति, धर्म, बालको, व्यापार, देशी राज्यो आदि के विषय मे पृथक् पृथक् पत्र पत्रिकाये प्रकाशित होती हैं। हिन्दी पत्रिकाये तो कुछ कुछ उच्च कोटि की है, यद्यपि अँगरेजी पत्रिकाओ की परमोच्च श्रेणी को नही पाती, किन्तु दैनिक पत्रो को अभी बहुत उन्नति करनी शेष है। उनमे से प्रताप तो अपने तार मँगाता है, किन्तु अन्य दैनिक शायद ऐसा नही कर पाते, और उनके अन्य पत्रो से तार सकलन करने के कारण समाचार बासी हो जाते हैं। प्रताप भी अपना मूल्य बहुत सस्ता किये हुये है, जिससे उसमे भी काफी समाचार नही निकलते तथा लेखादि मे उतनी गम्भीरता नही होती जितनी कि उच्च श्रेणी के अँगरेजी पत्रो मे। पत्रकार का धर्म है कि सभी प्रश्नो पर दोनो पक्षो के विचार ऐसे ढग से लिखे कि पाठक को बहुत थोडे शब्दो मे विषय का समुचित ज्ञान हो जावै। पत्रकार को अपनी सम्मति अवश्य लिखनी चाहिये किन्तु ऐसे शब्दो मे [illegible] कि वर्ण्य विषय पर पाठक को ज्ञानवृद्धि थोडी हो और पत्रकार बार बार अपनी सम्मति ही थेपा करे। गम्भीरता पत्रकारो के लिये परमावश्यक है। अंगरेजी दैनिक पत्रो मे टाइम्स आव् इडिया, बाम्बे क्रानिकल, हिन्दू, स्टेट्समैन, ट्रिब्यून, अमृतबाजार पत्रिका, लिबर्टी, लीडर, सर्चलाइट, आदि ऐसी उच्च श्रेणी के है, कि इनके लेख पढकर चित्त प्रसन्न हो जाता है। हिन्दुस्तान टाइम्स भी अच्छा है। इनके भी लेखो मे कभी कभी ज्ञानप्रद कम तथा सम्मतिप्रद विशेष समझ पड़ते है। बहुतो से इसके शीर्षक बढिया आते है। उपरोक्त अगरेजी पत्रो मे तीन दलो के पत्र है, किन्तु अपना प्रयोजन यहा किसी दल के सिद्धान्तो पर मत प्रकाशन का न होकर उनके ढगो की

समीक्षा मात्र से है। यही सिद्धान्त ग्रन्थ के सभी वर्णनो मे चला है। यदि हिन्दी के पत्र मूल्य बढाकर उच्च कोटि के दैनिक निकालें, तो जनता मे शायद उनका तथा हिन्दी भाषा दोनो का मान बढे, किन्तु इसमे धन सम्बन्धी हानि की सम्भावना विशेष है। अभी तक जो दशा है, उसका फल यह है कि हिन्दी पत्रो का प्रभाव, नगरो तथा अँगरेजी पढे विद्वानो पर शून्यप्राय है, किन्तु नगरो के बाहर ग्राम्य जनता पर विशेष है। पहले हिन्दी पत्र सनातन धर्म, सामाजिक सुधार की प्रतिकूलता, तथा भली बुरी सभी प्राचीन प्रथाओ के समर्थन मात्र मे प्रायः अपना पूरा कलेवर भरते थे। समय के साथ इनमे कुछ कमी आ गई और राजनीतिक विषयो की प्रधानता हुई है, तथा होती जाती है। दैनिक, साप्ताहिक, अर्द्ध-साप्ताहिक, आदि पत्रो की संज्ञा स्थायी साहित्य मे नहीं है। इनका काम आन्हिक ज्ञान एव प्रभाव वृद्धि मात्र का है। मासिक पत्र स्थायी और अस्थायी लेखो के बीच मे है, तथा पुस्तके स्थायी साहित्य का अग है। अस्थायी साहित्य तथा उपदेशको का प्रभाव अशिक्षित जनता पर जितना पडता है, उतना स्थायी का नहीं पडता। बहुत से हिन्दी और उर्दू पत्र लोगो की [illegible]चित प्रशसा तथा निन्दा करके अपना कालक्षेप करते है। वे एक प्रकार के चोर या सीने ज़ोर है, जो जबरदस्ती धनवानो को दिन दहाडे उनकी बुराइयो के प्रकटीकरण की धमकी द्वारा लूटते है। इनका वर्णन साहित्य से असम्बद्ध है, और यह एक प्रकार का रोज़गार है, जिसे अँगरेज़ी मे ब्लैकमेल कहते है। हिन्दी पत्रो मे प्राचीन विचारो का अत्यधिक मान कुछ कम हुआ है, किन्तु है अब भी। हमारे प्राचीन प्रथानुयायी पत्रकार प्राचीनो के विचार अपनी ही सम्मति समझते है और नवीन सिद्धान्तो की शत्रुता अपना परम धर्म मानते है। बड़े आदमियो के सभी विचारो के समर्थन को ही वह पाण्डित्य की सीमा मान बैठे है। ऐसी संकीर्णता कुछ कम हो गई है किन्तु अब भी बहुत अंशो मे प्रस्तुत है।

मुसलमानी काल मे भारत पर बहुत करके आन्तरिक घटनाओ का ही प्रभाव पडता था। वाह्य घटनाओ का प्राय: इतना ही फल था कि यदि कोई बाहरी शक्ति अधिक वलवती हुई, तो उसने देश को लूटा या जीता। ऐसी भारी घटनाये हमारे लम्बे इतिहास मे सात ही आठ हुई है। इनके अतिरिक्त देश अपने ही मे मस्त रहा और बाहर से उसने बहुत करके मानो सम्बन्ध ही न रक्खा। अँगरेजी राज्य के आरम्भ से ठगी, डकैती आदि पूर्ण बल से बन्द की गई, रेल, तार, डाक आदि का क्रमशः प्रभाव बढता गया, तथा आन्तरिक एवं वाह्य यात्राये भी समय के साथ अधिकाधिक होती गई। अँगरेजी सभ्यता का सबसे बडा चिन्ह रेल है, जिसकी सामयिक गर्जना से अँगरेजी भारी प्रभाव की दिन मे कई बार घोषणा हुआ करती है। आज दिन विज्ञान की उन्नति ने दूरी का हनन कर डाला है, और सारे ससार के नगर मानो एक ही देश के नगर हो गये है। हमारे नवयुवक अधिकाधिक सख्या मे विद्याप्राप्ति, परिभ्रमण आदि को बाहर जाया करते है। व्यापारार्थ भी देशी भाई बाहर बहुधा जाते है, तथा बाहरवाले यहा आते है। लाखो भारतीय सज्जन बाहर के देशो मे बसे हुए है। अतएव उन से हमारा बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया है और वह दिनो दिन बढता जाता है। योरोपियनो मे देशप्रेम की मात्रा बहुत अधिक है। उनमें प्रत्येक जाति और देश के लोगो का मान उनकी देशीय राजनीतिक स्थिति के अनुसार बहुधा होता है। इस कारण भारतीयो को बाहर जाने से अपने देश की परतन्त्रता बहुत अखर जाती है, जिससे भारत मे लौटने पर वे लोग जान तक देकर भारतीय राजनीतिक स्थिति सुधारने मे प्राय: लगते है। ऐसे लोगो की सख्या पूरे बाहर जानेवालो मे कितनी भी हो, किन्तु ऐसे उद्यमी है बहुतेरे।

जब १८९५-६ मे चीन का बाहरी शक्तियों से युद्ध हुआ, तब हमारे भारतीय सैनिक भी उन युद्धकर्त्ताओ मे थे। इनका पराक्रम देखकर

कुछ वाह्य सेनिको ने हमारे सैनिको से कहा कि हो तो यार तुम भी अच्छे, फिर अपनी राजनीतिक स्थिति तथा देशीय दशा क्यो नही सुधार पाते? यही मसल हमारे लोगो को स्मरण आई कि 'मनई कैसे हाथ पायँ औ मनई कैसी काया। चारि मास चौमासा बरसा मन्दिर क्यो नहिँ छाया'? अनन्तर जापान ने जो चीन और रूस को पराजित किया, उससे हमारे सैनिको तथा लोगो के भी उत्साह बढे। इधर १९१४ से १८ वाले महायुद्ध मे इन्होने भी फ्रास, टरकी, मेसोपोटैमिया आदि मे युद्ध किया। इस महायुद्ध से ससार मे मानो युगान्तर हो गया। अनेकानेक राजो, महाराजो की गद्दिया ताशो के घरो सी उलट गईं। आत्म निश्चित राज्य प्रणाली के मन्त्र की ससार मे घोषणा हुई। अमेरिकाको नवीन देश मिल सकते थे, किन्तु उसने शासनभार के उत्तरदायित्व को समझकर उन्हे न लिया और सुख से औरो को लेने दिया। प्रत्येक शासक शक्ति का कर्त्तव्य सा समझा जाने लगा कि शासितो के लाभार्थ ही शासन हो। भारत मे भी १९१७ मे प्रतिनिधि शासन के अन्तिम ध्येय की घोषणा हुई। लोगो मे [illegible]ी सनसनी फैली। काग्रेस वाले मुँह फैलाने लगे। रूस मे ज़ार के समाप्त होने से प्रजातन्त्र राज्य तो हुआ ही, अथच सम्पत्ति देश भर की मानी जाकर साम्यवाद निकला, जिसका प्रयोजन यह है कि देश भर के प्रत्येक पुरुष को जो आय अथवा सारी सम्पत्ति है, वह सब की सब पचायती होकर सबकी समझी जावै, और उससे सभी की उचित आवश्यकताओ की पूर्ति हो। सम्पत्ति, व्यक्ति और समाज सम्बन्धी नये विचार स्थापित होने लगे। ये सब थे विलायत मे भी, किन्तु कार्यरूप मे पहले पहल रूस मे गत महायुद्ध के पीछे चले। सारा रूस मानो सम्मिलित हिन्दू कुटुम्ब हो गया। लोगो का विचार था कि इस प्रथा मे प्रत्येक मनुष्य मानो अमानी का मज़दूर होगा, क्योकि जब अपने खेतो आदि की

हानि लाभ से वह असम्बद्ध है, तब उसके लिये यत्नशील काहे को हो? रूस ने अब तक के प्रयत्नो से कलो, कारखानो आदि का तो कुछ अच्छा प्रबन्ध किया है, ऐसा समझ पड़ता है, किन्तु खेती का काम वहां ठीक ठीक नही चल रहा है। वहां के प्रबन्ध-कर्त्ता खेती भी सम्हालने के प्रयत्न में है। उनकी यह भी इच्छा सुनी जाती है कि जहा जहां पूंजीपतियो का प्रभाव है, वहा वहां सस्ती वस्तुये बेच बेचकर उनका कारबार बिगाड़ दिया जावै। भारत जो विदेश से व्यापार करता था, वह बहुत करके अपनी खेती के बल पर, अर्थात् हम लोग खेती की उपज से बाहरवालो का माल खरीदते थे। अब अमेरिका, रूस, आस्ट्रेलिया और कनाडा मे इतना अधिक गेहू होने लगा है कि उन्हें उसकी उपज कम करने का प्रयत्न करना पड रहा है। इससे भारतीय गोधूम्र व्यापार मे क्षति आती है। हमारी कच्ची रुई का व्यापार भी गडबड मे है। अंग्रेज़ी राज्य स्थापित होने के पीछे ही बंगाल का भारी रुई व्यापार रक्षा के अभाव मे नष्ट हो गया, किन्तु पीछे से पटसन तथा भारतीय कलो का कपडा व्यापार बढा, जो अच्छी दशा मे है। अनेकानेक विदेशो मे जो भारतीय लोग बसे हैं, उनके साथ उन देशों का व्यवहार सदा अच्छा नही रहा है। इस विषय पर बहुत झगड़े उठते रहे जिनमे सरकार ने भारतीयो का बहुत कुछ पक्ष लिया। इस प्रकार केनिया तथा दक्षिणी अफ़रीका को छोडकर शेष देशो मे भारतीय प्रश्न निर्णीत सा हो गया है, और इन दोनो देशो मे भी ऐसा ही हो रहा है। साम्यवाद के सिद्धान्त रूस से बढ़कर भारत मे भी फैल रहे है, जिससे लोगो का न केवल राज्य प्रणाली मे उन्नति के लिये सरकार से झगड़ा है, वरन् पूंजीपतियो का भी साधारण प्रजा से विरोध होगा, ऐसा भय है। किसानो, ज़िमीदारों, मिल संचालको तथा मज़दूरों आदि के झगड़े चल ही रहे हैं। दो तीन साल के भीतर किसानो द्वारा लगान अदा न होने का झमेला

शक्ति प्रयोग से विजय की आशा नहीं करता। उनका विचार है कि यदि भविष्य मे फिर महायुद्ध हुआ, तो सरकार को दबकर हमैं स्वराज्य देनी ही होगी। उधर अन्यों को समझ पडता है कि महा-युद्ध का बाप आजावै, तो भी संगठनाभाव से भारतीय समाज मे इतनी शक्ति नही है कि सरकार को दबाकर कुछ कर सकै। वे सोचते हैं कि काग्रेस मतवाले नेताओं के लाख प्रयत्न करने पर भी भारतीय सैनिक सरकार को युद्ध में सहायता करेगे, क्योंकि और नही तो बहुतेरी भारतीय जातियो का लड़ना रोजगार ही है, और वेतन ही के लिये वे युद्ध मे जाने को सन्नद्ध होगे। कांग्रेस पक्षी यह भी समझते हैं कि आगे के युद्ध में जो कुछ हो सकेगा, वह तो गोश्रृङ्ग पर सर्षप मात्र है, जो न जाने कहा गिरे, किन्तु आज भी व्यापारी माल के बहिष्कार से अँगरेजो को इतनी हानि पहुँचाई जा सकती है और असहयोग द्वारा राजसंचालन इतना कठिन किया जा सकता है कि झकमार कर सरकार स्वराज्य देगी। यह सब बातैं अन्ततोगत्वा सरकार की भलमन्सी पर निर्भर हैं, क्योकि सोचा जाता है कि हज़ारों लाखो का बध सरकार कभी न करैगी, चाहै देश छोड ही देना क्यो न पड़ै। ऐसा करने से अपयश भी बहुत सम्भव है। यह कहना कठिन है कि लोगो के विचारो मे कहा तक सार है। हमारी बृटिश सरकार के अनेकानेक उपनिवेष हैं, जिनमे से बहुतो को वह सुख-पूर्वक स्वराज्य दे चुकी है, तथा कुछ इतरों को देना चाहती है, किन्तु भेद इतना है कि वहा योरोपीय जनता का प्राधान्य होने से सरकार का उनसे अधिक मतभेद नही है। इधर भारत का सरकार से एक तो जाति एवं धर्म का भारी भेद है, दूसरे अन्य देशो से सरकार का जैसा व्यवहार है, भारत के उन देशोवाले व्यवहार दूसरे प्रकार के होगे, ऐसा भय है। फिर भी मुख्य बात यह है कि भारत में जन संख्या भारी होने से ब्रिटेन का उससे व्यापारादि से अनेक प्रकार का लाभ है। भारत के हाथ मे बल आ जाने से उस व्यापार मे

क्षति आ जावैगी, जिससे ब्रिटेन को भारी हानि हो सकती है। इसी प्रकार के अनेकानेक प्रश्न है, जिन पर ध्यान देकर तब कुछ हो सकता है। वोटावा मे इन दिनो जो व्यापार सभा हुई थी, उसका भी प्रयोजन सरकार की उपनिवेशो से व्यापार वृद्धि है। इसमे भारत को हानि हुई है ऐसा कही कही समझा जाता है।

भारत मे बहुत दिनो से शान्ति होने से जन संख्या बहुत बढ़ गई है, किन्तु व्यापार मे वृद्धि के स्थान पर कमी है। इससे बहुत से भारतीयो को व्यापारिक दिक्कते है और लोगो को काम नही मिल रहा है। शिक्षालयो की भारी वृद्धि से शिक्षित लोगो को संख्या देश मे बहुत बढी है। वे लोग खेती करना चाहते नही और अन्य कार्य पाते नही। इससे बेकारी की भारी वृद्धि हुई है। जिन जिन के पास कारणवश खाने को काफी नही है, वे सब स्वाभाविक रीति से असन्तुष्ट है। अतएव आजकल भारत मे जो अशान्ति फैली हुई है, उसके दो विभाग है, अर्थात् एक तो विद्वान सम्पन्न लोगो का जो अपने को योग्य देखकर भी अपना प्रभाव देश विदेशो मे कम पाकर वर्त्तमान राजनीतिक व्यवस्था से असन्तुष्ट है, और दूसरे भूखे लोग जो जठराग्नि की अशान्ति से भात हा भात पुकारते है। पहली श्रेणी मे बहुतेरे व्यापार शून्य विद्वान् भी सम्मिलित है। जैसी दशा भारत मे आजकल संसार शक्तियो के कारण है, वैसी भूतकाल मे कभी हुई नहीं। सासारिक सभ्यता के बहुत बढ जाने से प्रत्येक देश के भले बुरे कार्यों के फलो का परिधि बहुत बढकर, उस देश की सीमाओ के आगे निकल कर, संसार व्यापी सा हो गया है। इसलिये इस बढ़ी हुई अशान्ति के आगे राज्य, सम्पत्ति, धर्म, सम्बन्ध, आदि किसी का भविष्य संशयहीन नही देख पड़ रहा है। इन अभूतपूर्व बढ़े हुये झमेलो का क्या परिणाम निकलेगा, सो कोई समझ नही सकता। गत महायुद्ध के पहले देश कुछ और था, और अब कुछ और ही दिखता है। पहले तो बड़े दिनों की छुट्टियो मे कांग्रेस जाकर लोग मेला सा देख आते

थे, किन्तु अब न केवल सरकार के अधिकारो पर दात लगा हुआ है, वरन् सम्पत्ति, कौटुम्बिक गुरुता, धर्म, भाषा, आदि सभी मे काया कलप सा देख पड़ता है। वकीलो, डाक्टरो, शिक्षित व्यापारियों आदि के प्राधान्य से, विशेषतया वकीलो के कारण देश मे नये विचार और आचार परम शीघ्रता से फैल रहे है। जिन कुछ बातो को लोग पहले बहुत बुरी समझते थे, वही अब श्रेष्ठाचार मे आ गई है, और उनके करनेवालो का समाज मान करने लगा है। जाति पाति का बल कम हो रहा है। ब्राह्मणो को प्रणाम करनेवाले नगरो मे देख ही नही पडते। सारांश यह कि बहुत बातो मे नया समाज सा स्थापित हो रहा है। इतना सब होते हुये भी यह और समझ पडता है कि हिन्दू जाति मुख्यतया धीरे चलनेवाली है। वह जल्दी से आख बन्द करके अँधेरे मे कूदनेवाली नही। मुसलमान लोग अनेक कारणो से सरकार के पक्ष मे है, और देश प्रेमपूर्ण परिवर्त्तन की ओर झुके हुये नही दिखते। उनमे भी कुछ लोगो की रुचि इस ओर आती देख पड़ती है, किन्तु उनका कार्यक्रम बदलने की ओर कम है। साम्यवाद आदि जड पकडते हिन्दुओ मे भी नही समझ पडते।

सासारिक विषयो का इतना वर्णन करके अब हम फिर अपने साहित्य पर आते है। हमारा हिन्दी साहित्य इस काल दो प्रणालियो पर चल रहा है, अर्थात् नव्य और प्राचीन। प्राचीन प्रथा व्रजभाषा के सहारे चलती है, किन्तु उसमें भी शृङ्गार कविता कम हो गई है, और जातीय भावपूर्ण विचार अधिकता से आने लगे हैं। आजकल के कवि-सम्मेलनो में जाकर कभी कभी बडा आश्चर्य सा हो जाता है, कि देखने मे ग्राम्य जीवनवाले, अँगरेज़ी भाषा न जानते हुये ब्राह्मण लोग तक हरिजनो आदि के पक्ष मे छन्द पढ़ जाते हैं, और वर्तमान जातीय विचारो के प्रतिकूल तो कभी कोई नहीं बोलता। साधारण जन समुदाय की कार्यवाही अनुदार आशय पूर्ण बहुधा देख पडती है, किन्तु आजकल की साहित्यिक

रचनाओ मे अनुदार आशयो का समर्थन कही नही मिलता। कुछ दिन समस्यापूर्त्ति की चाल बहुत चली थी, और ऐसे कई पत्र भी निकलते थे। अब यह बात नही है। जहा कही कवि सम्मेलनो आदि मे समस्याये दी जाती हैं, वहा भी कोई उनकी बहुत परवाह नही करता है, और भावो की प्रबलता रहती है। शृङ्गारात्मक मुक्तक छन्द कुछ अवश्य बनते है, किन्तु ऐसे ग्रन्थो का बनना अब बन्द सा हो गया है। अब तो कविगण प्राचीन बुराइयो के छोडने, उपरोक्त राजनीतिक झमेलो, वीररस, देशप्रेम आदि मे लगे हुये है, और उनकी कृतियो का प्रभाव बहुत करके देशप्रेम वर्द्धन मे पडता है।

नव्य प्रणाली के कवि गण प्राय. खडी बोली मे रचना करते है। इनके साहित्य मे नये विचार अधिक प्रचुरता से आते है। इन लोगो ने शृङ्गार काव्य को छोड ही सा दिया है। वर्ड्सवर्थ, शेली, कबीर, टैगोर आदि महाशयो के से विचार इनमे बहुत अधिकता से पाये जाते है। प्रकृति निरीक्षण की भी इनमे अच्छी प्रणाली है। देश प्रेम, जातीय प्रेम, सासारिक उन्नति, आदि पर भी नव्य विचार आते है। खडी बोली के कविगण मे से कई महाशय छायावाद की ओर भी चल रहे हैं। बहुत लोगो ने इस छायावादी साहित्य की निन्दा की है, किन्तु हम प्रत्येक उत्कृष्ट रचना को स्तुत्य समझते हैं। कही कही छायावादी रचनाये असमर्थ दूषण से नही बचती। वे अवश्य निन्द्य है। छायावादी कवियो को भी उचित है कि ऐसी दूर की कौडी न लावे, जिसके लिये पाठक को घण्टे भर मूड मारना पडे, क्योकि उनको भी समझे रहना चाहिये कि आत्मगौरव की मात्रा उचित से आगे बढ जाने से गर्हित अभिमान हो जाती है। उनको जानना चाहिये कि उनके लिये कोई अपने दो दो घण्टे एक एक पृष्ठ के लिये न खोवैगा। कुछ दिन हुये हमारा विचार था कि यह समय गद्य का है, और आजकल पद्य रचना करके प्राचीनो के आगे यश प्राप्ति कठिन है। आजकल की रचनाओ को

देखकर समझ पड़ने लगा है कि वर्त्तमान काल मे भी प्राचीनो के समान अच्छे कविगण प्रस्तुत हो रहे हैं। गद्य लेखन की परिपाटी अब खासी परिष्कृत हो चुकी है। अब सैकड़ो ऐसे लेखक प्रस्तुत है, जिनकी भाषा त्रुटिहीन और श्लाघ्य है। भाव भी अच्छे से अच्छे आ रहे है। यथावकाश कविगण सब प्रकार के विषयो को हिन्दी मे ला रहे है। कुछ दिनो तक अँगरेजी, बंगला, सस्कृत, गुजराती, मराठी आदि से अनुवादित ग्रन्थो की धूम रही। अब मौलिक रचनाओ का मान हो गया है। बहुतेरे लोग अब भी बिना कहे भारी भारी लेखको से चोरी कर लेते है, किन्तु यह कोई प्रणाली नही, वरन् उन उन लेखको की रंकता मात्र है। सक्षेप मे साहित्य आजकल अच्छी उन्नति कर रहा है और समाज पर उसका प्रभाव भी पूरा पूरा पडता है। सिक्ख सम्प्रदाय का महत्व, राजपूताना, बुन्देलखण्ड, अवध आदि के इतिहास, तुलसी, रामानन्द, कबीर आदि के उपदेश, मुसलमान काल मे समाज संगठन तथा उसका संरक्षण, वर्त्तमान काल मे उन्नत विचारो का वितरण और जाति एवं देशप्रेम वर्द्धन, ये सब हिन्दी साहित्य के ही भारतीय इतिहास पर प्रभाव है। ज्यो ज्यो समाज मे विद्वत्ता और योग्यता की वृद्धि होती जावैगी, त्यो त्यो हमारा साहित्य भी ऊँचे से ऊँचा होकर दिनो दिन देश सेवा करैगा।

महात्मा गाधी तथा कांग्रेस की राजनीति एव कार्य्य प्रणाली के विषय में मतभेद सम्भव है, किन्तु इतना सर्वमान्य सा है कि महात्मा के प्रभाव से देश मे सत्य, उत्साह, विशुद्धाचरण, आत्मबलि तथा देशसेवा के भावो की अभूतपूर्व एव आश्चर्य्यजनक जागृति हुई है। इन्ही गुणो को काग्रेस ने भी बढाया है। वर्त्तमान भारत की आचार परिष्कृति मे ही महात्मा का मुख्य माहात्म्य है।

अब १९३१ की मनुष्य गणना से हिन्दी प्रभाव सम्बन्धी दो चार निष्कर्ष दिखला कर हम इस ग्रन्थ को समाप्त करेंगे। उस वर्ष भारतीय मनुष्य गणना का जोड़ ३५, २९, ८६, ८७६ था। इसका प्रान्तवार फोड नीचे लिखा जाता है।

प्रान्त	हिन्दू	मुसलमान	सिक्ख	ईसाई	अन्य	जोड
पूरा भारत	२३,८३,३०,९१७	७,७७,४३,९२८	४३,०६,४४२	५९,६१,७९४	—	३५,२९,८६,८७६
सरकारी भारत	१७,६९,३४,४३५	६,७०,८५,५१०	३१,९२,१६९	३५,३१,७०३	—	२७,१२,७३,१०७
रियासती भारत	६,१३,९६,४८२	१,०६,५८,४१८	११,१४,२७३	२४,३०,०९१	—	८,१७,१३,७६९
बंगाल	२,१५,३७,९२१	२,७५,३०,३२१	—	१,८०,५७२	बौद्ध ३,१५,८०१	५,०१,२२,५५०
युक्तप्रान्त	४,०९,०५,५२३	७१,८१,९२७	४६,५००	२,०५,००९	जैन ६७,९५४	४,८४,०८,७६३
मद्रास	४,०३,९२,९००	३३,१६,०८३	—	१७,७०३२८	—	४,६५ ७५,६७०
बिहार, उड़ीसा	३,१०,१०,६८०	४२,६४,७७६	—	३ ४१,७१०	—	३,७६,७६,५७६
पंजाब	६३,२८,५८८	१,३३ ३२,४६०	३०,६४,१४४	४,१४,७८८	४१,००७	२,३५ ८०,८५२

बंबई सिन्ध	१,६६,१६,६७६	४४,५७,१३३	२०,७२३	३,१७,०४२	*	२,१८,५४,८४१
मध्यदेश, बरार	१,३४,६०,१०५	६,८२,८५४	—	५०,५८४	—	१,५५,०७,७२३
बर्मा	५,७४,६६७	६,०६ ८४१	जैन ७०,८६५	—	बौद्ध १,३३,८६,५३६	१,४६,४५६६६
आसाम	४६,३१,७६०	२७,५५,६१४	२४६७	२,०२,५८६	१७,५६१	८६,२२,२५१
वायव्य सीमा	१,४२,६७७	२२,२७,३०३	४२,५१०	१२,२१३	—	२४,२५,०७६
दिल्ली	३,६६,८६३	२,०६,६६०	६,४३७	१६,६८६	५,३४५	६,३६,२४६
अजमेर मरवारा	४,३४,५०६	६७,१३३	३४१	६ ६४७	१६,४६७	५,६०,२६२
बलूचिस्तान	४१,४३२	४,०५,३०६	८,३६८	८,०४४	—	४,६३,५०८
कुर्ग	१,४६,००७	१३,७०७	—	३४३०	—	१,६३,३२७

* पारसी २९,५४३ यहूदी १७,४४३ बौद्ध १,८९० जैन १,९९,९७९

इस विवरण पत्र से निम्न बातें प्रकट है :—

(१) पूरे भारत तथा सरकारी भारत मे हिन्दू मुसलमानो का पडता प्रायः तीन एक का सम है तथा अन्य नगण्य है।

(२) बंगाल मे मुसलमान हिन्दुओ से कुछ अधिक है तथा शेष नगण्य है।

(३) पञ्जाब मे मुसलमान इतरो से प्रायः ड्योढे है तथा हिन्दू सिक्खो से दूने से कुछ अधिक है।

(४) युक्तप्रान्त और बिहार मे हिन्दू मुसलमानो से छगुने से अधिक हैं तथा शेष नगण्य है।

(५) मदरास, मध्यदेश और बम्बई हिन्दू प्रान्त है। बम्बई मे कई अन्य जातियां भी काफी संख्या मे है यद्यपि पड़ते मे नगण्य है।

(६) बर्मा बौद्ध देश है, जहां हिन्दू मुसलमान काफी सख्याओ मे बसते है किन्तु पडता मे नगण्य है। वहां हिन्दू मुस्लिम प्रश्न न होकर बर्मीज तथा भारतीय का है।

(७) आसाम मे हिन्दू मुस्लिम कुछ कुछ दो तिहाई तथा एक तिहाई के पडते मे है। यही दशा दिल्ली की है।

(८) कुर्ग हिन्दू प्रान्त है तथा अजमेर मरवारा प्रायः पंचमांश मुस्लिम है।

(९) बलूचिस्तान और वायव्य सीमा मुसलमानी देश है जिनमे प्रायः दशमांश हिन्दू हैं।

(१०) सिक्खो का देश पञ्जाब ही है, किन्तु रियासती भारत, युक्तप्रान्त वायव्य सीमा, बलूचिस्तान, बम्बई, दिल्ली तथा आसाम मे भी वे हज़ारो को संख्या मे बसते है। सिक्ख लोग हिन्दुओ से पार्थक्य नही चाहते, किन्तु यदि मुसलमानो का मान हिन्दुओ के सामने अल्प संख्या वाद के कारण कही भी बढ़े, तो उसी वाद पर सिक्ख भी मुसलमानो की प्रतिस्पर्द्धा में मान वृद्धि चाहते है। इन लोगों के प्रश्न मे केवल पञ्जाब में भारी गर्मा गर्मी है। हिन्दुओं से

इनका कोई कहने योग्य सामाजिक या राजनीतिक वैमनस्य नही है।

(११) ईसाई लोग पूरे भारत मे केवल प्रायः साठ लाख हैं, जिनमे से प्राय· साढे पैंतीस लाख बृटिश भारत में है और शेष रियासतो मे। रियासतो मे ये लोग ठेठ दक्षिण में बहुतायत से हैं, बृटिश प्रान्तो में केवल मद्रास मे प्रायः १८ लाख हैं और बिहार उडीसा, युक्तप्रान्त, बंगाल, पञ्जाब, आसाम, तथा बम्बई मे प्राय· ४ से २ लाख तक की संख्याओ मे और अन्यत्र हजारो मे। पहले बंगाल मे भद्रलोग भी अँगरेजी पढकर ईसाई होने लगे थे, किन्तु राजा राममोहन राय तथा श्रीयुत केशबचन्द्र सेन की शिक्षाओ से यह धारा बन्द हो गई। अब बहुत करके केवल निम्न श्रेणी के हिन्दू लोग ईसाई हो रहे है। पञ्जाब मे यह धारा स्वामी दयानन्द सरस्वती के उपदेशो से स्थगित हुई। मद्रास मे जातिपाँति का भारी बल है तथा इसी के साथ अछूतो का विशेष निरादर है, यहां तक कि उनकी छाया का भी स्पर्श नही हो सकता। इस कारण से वे लोग हिन्दू रहने मे कोई महत्ता नही देखते है। आशा है कि आज कल के अछूतोद्धारवाले परिश्रम से न केवल यह धारा अवरुद्ध होगी, वरन् बहुतेरे खोये हुये हमारे भाई वापस भी मिलेंगे। मुसलमानों मे धार्मिक् जोश् इतना है कि बहुत ही कम मुस्लिम ईसाई हुये हैं। हिन्दुओ मे भी सवर्णों का यही हाल है, किन्तु अवर्णो के निरादर से उनकी हिन्दू धर्म मे स्थिति संशयाकीर्ण है। यदि उनका भी सामाजिक आदर होने लगै, तो हिन्दू धर्म मे अच्छा संगठन हो जावै। जितने ईसाई लोग है उनमे से ९५ प्रतिशत से अधिक यही हमारे अनादृत भाई होंगे जो हमसे रुष्ट होकर चले गये हैं।

(१२) जैन अब हिन्दू ही है। ये लोग युक्तप्रान्त, मध्य भारत, राजपूताना, बर्मा, और बम्बई मे बहुसंख्यक हैं। बौद्ध बंगाल, बर्मा और बम्बई में पाये जाते हैं। इनका हिन्दुओ से ऐसा मेल है, कि

बंगाल बम्बई मे अब ये हिन्दू ही से है, केवल बर्मा मे इनका पृथक् प्रश्न भारत से साझे या अलग होने का चल रहा है।

(१३) पारसी और यहूदी बम्बई मे है। यहूदी योरोपियनो से है और पारसी देशभक्त होने से प्रेम पात्र माने जाते है, यद्यपि थोडी सख्या मे होने से बम्बई मे लोग कभी कभी इनमे बिरादरी प्रेम की अनुचित मात्रा भी सूंघने लगते है। फिर भी यह बहुत नही है और इनका देशप्रेम इन्है बहुत प्रीति भाजन बनाये हुये है, सो इनके विषय मे कोई खटकनेवाला राजनीतिक या सामाजिक प्रश्न सामने नही आता है।

(१४) मुसलमानो का प्रश्न पूरी गर्मा गर्मी से पञ्जाब मे चलता है जहा का तृकोणात्मक प्रश्न है। बंगाल में भी कुछ झगडा है। सिन्ध, वायव्य सीमा तथा बलूचिस्तान मे मुस्लिम बहु संख्या काफी बडी है, सो वहा कोई भारी प्रश्न नही है, केवल सिन्धी हिन्दू बम्बई से अलग होना नही चाहते। सिन्ध आदि के अतिरिक्त मुस्लिम बहु सख्या केवल बंगाल और पञ्जाब मे है। यह प्रश्न विचारणीय है कि इन्ही दो प्रान्तो मे यह संख्या क्यो बढी, तथा युक्तप्रान्त एवं बिहार मे क्यो न बढी ? यदि उडीसा का पड़ता निकाल डाला जावै, तो युक्तप्रान्त और बिहार मे हिन्दू मुस्लिम पडता प्रायः एकसा है। यह तो प्रकट है कि मध्य तथा दक्षिणी एव ठेठ दक्षिणी भारत मे मुसलमानी प्रभाव कभी नही बढा, सो वहा इनकी संख्या उचित ही कम है। सिन्ध में सबसे पुराना मुसलमानी राज्य रहा है, सो वहा हिन्दू केवल २७ प्रतिशत है। तोभी व्यापार, धन, प्रभाव आदि मे उनका मान बहुत ही अधिक है। वायव्य सीमा की भी यही दशा है और बंगाल तथा पञ्जाब मे भी कई अंशो मे यही बात है। वायव्य सीमा मे हिन्दू और सिक्ख महत्ता में एक से है। बिहार मे शिया मुसलमान प्रभावशाली हैं और युक्तप्रान्त मे सुन्नी। शिया लोगो का हिन्दुओ से सामाजिक तथा राजनीतिक विरोध बहुत कम है।

(१५) देखने मे समझ पडता है कि युक्तप्रान्त पौराणिक धर्म का केन्द्र था। यहा तीर्थ अवतार आदि सब से अधिक और प्रभावशाली है, तथा अछूतो के अपेक्षाकृत कम अनादर से हिन्दू समाज के संगठन मे शैथिल्य अन्य प्रान्तो के देखते हुये कम है। महात्मा तुलसीदास के उपदेशो का प्रभाव भी यहा बहुत है। इन कारणो से युक्तप्रान्त के मुसलमानी शासन के केन्द्र होने पर भी यहां मुसलमानो का प्रभाव तादृश न पड सका। बिहार मे भी उपरोक्त अन्तिम दो कारण प्रस्तुत हैं। वहा मुसलमानी केन्द्र के न होने से मुस्लिम दबाव भी कम पड़ता था, सो प्रथम दो कारणों की कमी होते हुये भी कुल मिलाकर फल युक्तप्रान्त से ही मिल गया। पञ्जाब में गोस्वामी जी का सा कोई उपदेशक न था। सिक्ख गुरुओ कृत जातिपाति की निन्दा से, जाति के संगठन द्वारा युक्तप्रान्त को जो लाभ हुवा था, सो पञ्जाब को न मिला। वहा कोई अच्छा हिन्दू उपदेशक न हुआ, यहां तक कि ब्राह्मणो का प्रभाव सिक्खो, खत्रियो तथा आरोड़ा हिन्दुओ के सामने कुछ भी नही रहा आया है। इन कारणों से पञ्जाबी हिन्दू समाज विधर्मियो का दबाव न सवरण कर सका और हिन्दुत्व की महत्ता संख्या मे खो बैठा। हिन्दू वहां ज़िमीदार भी अपेक्षाकृत दृष्टि से कम है, यद्यपि व्यापार, शिल्प आदि मे उनका प्रभाव अच्छा है। बगाल मे संस्कृतपन तथा जाति सम्बन्धो उच्चता बहुत अधिक थी, जिससे निम्न श्रेणी का हिन्दू समाज सामाजिक अनादर से असन्तुष्ट था और भाषा मे सस्कृत प्रभाव बाहुल्य के कारण शेष समाज के मानसिक विचारो से भी प्रभावित नही होता था। अतएव बङ्गाल के एक दूरस्थ मुस्लिम प्रान्त होने पर भी थोड़े ही से दबाव पर हिन्दू समाज अपना बृहदश खो बैठा। आसामी हिन्दू धर्म नया ही था, सो उसपर भी मुस्लिम प्रभाव सुगमता पूर्वक पड़ गया, यद्यपि उसके बहुत दूरस्थ होने तथा निम्न श्रेणीवाले निरादर के अपेक्षाकृत अभाव तथा भाषा सम्बन्धी वैषम्य मे कमी के कारण

बंगाल के सामने मुस्लिम विचारो से वह कम प्रभावित हुआ। बर्मा में धार्मिक जोश के कारण मुसलमानो की संख्या कम नही होती, क्योंकि बरमीज़ स्त्रियो को मुसलमान बना कर ही वे उनसे विवाह करते है, किन्तु हिन्दू लोग अपने पुराने बहिष्कार सम्बन्धी विश्वासो के कारण बरमीज़ स्त्रियो को हिन्दू नही बनाते और उनसे उत्पन्न सन्तानो को भी अहिन्दू समझते है, जिससे वहा हिन्दू संख्या समुचित रीत्या नही बढ़ती और जो कुछ है भी, उस के घटने की शंका है। इन्ही कारणो से आजकल सारे भारत मे नव शिक्षा प्राप्त हिन्दू जातिपाँति को तोड़कर, तथा इतरो को हिन्दू बनाकर अपनी संख्या बढाना चाहते हैं। यदि यह बातें हमारें यहा चल गईं और अछूत निरादर हट गया, तो हिन्दू संगठन बढ़ जावैगा, नहीं तो पचास वर्षों के भीतर हिन्दू संख्या बहुत गिर जावैगी, ऐसा भय है। पुराना इतिहास देखने से समझ पडता है कि जैसे एक बार सबल पडकर जाति ने हमारी रक्षा की थी, वैसे ही अब निर्बल पडकर वह हमैं बचावैगी। आज कल का हमारा साहित्य ऐसे विचार बहुतायत से उपस्थित कर रहा है।

समाप्त।